द्विभाषी राष्ट्रसेवक

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 ❖ अंक : 8/9 ❖ नवंबर/दिसंबर, 2023

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 **अंक : 8/9** **नवंबर/दिसंबर, 2023**

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

डॉ. किरण हजारिका
सम कुलपति, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-68

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : ₹100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : इंटरनेट से साभार

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		*4*
1.	एक गुमनाम कहानीकार जानकीवल्लभ शास्त्री	✍ डॉ. अमरेंद्र त्रिपाठी	5
2.	विस्थापन की समस्या और हिंदी उपन्यास	✍ डॉ. शगुन अग्रवाल	9
3.	समकालीन भारतीय नेपाली कविता और सुधा एम. राई की रचना दृष्टि	✍ डॉ. प्रदीप त्रिपाठी	19
4.	भारत रत्न भूपेन हजारिका और बाबा नागार्जुन के काव्य में सामाजिक चेतना	✍ सुनील साहनी	23
5.	दलित स्त्री जीवन का यथार्थ दस्तावेज : हिंदी दलित कहानी	✍ अनामिका	30
6.	मुक्तिबोध का अंतर्द्वंद्व : जैनेन्द्र कुमार के पुरस्कृत उपन्यास मुक्तिबोध के संदर्भ में	✍ अर्पणा कुमारी	35
7.	महाभारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधित चिंतन	✍ उज्ज्वल दास	41
8.	राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता के रस-स्रोत लोकगीत	✍ शेषांक चौधरी	49
9.	भारतीय जाति व्यवस्था में अन्य पिछड़े वर्ग की स्थिति	✍ अविनाश जाटव ✍ प्रो. नीता बोरा शर्मा	54
10.	फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में निर्मित ध्वनि चित्र	✍ दिगंत बोरा	60
11.	महात्मा गाँधी : शैक्षिक विचार और उनकी प्रासंगिकता	✍ धर्मवीर	65
	অসমীয়া বিভাগ		
12.	‘ টাই-আহোম ভাষাৰ সৰ্বনাম শব্দৰ প্ৰকাৰ আৰু গঠন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন’	✍ উদয়ন বড়া	70
13.	মামণি ৰয়ছমৰ ‘পৰশু পাতৰৰ নাদ’ আৰু আৰ. কে. নাৰায়ণৰ ‘ইঞ্জিন ট্ৰাব’ল’ ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা	✍ ড° গকুল কুমাৰ দাস	77
14.	অসমৰ মেচ জনগোষ্ঠী ঃ এটি ঐতিহাসিক অৱলোকন	✍ ফণীধৰ মেচ	83
15.	অসমীয়া আৰু ইংৰাজী অভিধানৰ শব্দসম্ভাৰ ঃ গঠন, উৎস আৰু পৰিৱৰ্তনৰ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ বনশ্ৰী হাজৰিকা	90
16.	পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদী দৃষ্টিভঙ্গীৰ আধাৰত নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন	✍হিৰণ্য কুমাৰ বৰা	97
17.	স্থাননাম আৰু প্ৰব্ৰজন (নলবাৰী জিলাৰ স্থাননামৰ বিশেষ উল্লিখন সহ)	✍ ভাস্কৰজ্যোতি ডেকা	105
18.	কালিকাপুৰাণত প্ৰতিফলিত অসম ঃ এক আলোকপাত	✍ অৰুণ শৰ্মা	111
19.	বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক চেতনা	✍ কস্তুৰী বৰা	117
20.	অসমীয়া ভাষাৰ ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰত সামাজিক প্ৰেক্ষাপটৰ ভূমিকা ঃ এটি প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানভিত্তিক অধ্যয়ন	✍ ভায়োলিনা ডেকা ✍ ড° দীপামণি হালৈ মহন্ত	126
21.	লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ ‘গঙা চিলনীৰ পাখি’ উপন্যাসৰ আলোচনা	✍ বনজিৎ শৰ্মা	134
22.	গীত	✍ উমেশচন্দ্ৰ চৌধাৰী	139

संपादकीय

हिंदी कविता की भाषा

'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना का उद्देश्य यही रहा है कि पूर्वोत्तर भारत में हिंदी का प्रचार-प्रसार हो। एक तरह से यह संस्था पूरी तरह से हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार से जुड़ गई। इस संस्था ने फरवरी 1951 में समिति के मुखपत्र 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' का प्रकाशन आरंभ किया। पूर्वोत्तर भारत का यह पहला हिंदी-असमीया मुखपत्र था। फरवरी 1951 से अनवरत इसका प्रकाशन हो रहा है। चूँकि यह संस्था पूर्णत: भाषा, समाज, साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार से जुड़ी हुई है, इसलिए इस बार हिंदी कविता की भाषा पर संपादकीय लिखना उचित लग रहा है। भावों की अभिव्यक्ति के तमाम संसाधनों में भाषा एक सशक्त माध्यम है। इस क्रम में रचनाकार की भाषा सामान्य जन की भाषा की तुलना में संप्रेषणीयता के स्तर पर कई गुना अधिक शक्तिशाली होती है। अपनी अभिव्यक्ति को अर्थपूर्ण बनाने के क्रम में रचनाकार किन-किन कोनों-अंतरों में भटकता है, यह कहना अत्यधिक कठिन है। रचनाकार की अनुभूति जितनी अधिक सामाजिक यथार्थ से जुड़ी होगी, उसकी भाषा उतनी ही ऊर्जा-संपन्न होगी। हिंदी कविता की समृद्ध विकास-परंपरा इस बात का प्रमाण है। विद्यापति से लेकर वीरेन डंगवाल तक की सुदीर्घ कविता की भाषा-परंपरा इस बात का प्रमाण है कि कालजय और ठोस रचनाकार रूढ़ और जर्जर भाषा का त्याग कर नए भाषिक आयाम स्थापित करते हैं।

सन् उन्नीस सौ पचहत्तर के आसपास हिंदी कविता के कथ्य और शिल्प में भारी परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने आरंभ हो गए हो, जो क्रमश: विकसित होकर एक नए काव्यानुभव काव्य-वस्तु की एक नई सौंदर्य चेतना काव्यरूप की एक नई दीप्ति के साथ समकालीन काव्य-परिदृश्य पर एक नई दस्तक दे रहे हैं। एक कालखंड में चार पीढ़ियों का एक साथ सर्जनरत होना अपने-आप में सुखद अनुभव है। निश्चित रूप से इन कवियों का रचनात्मक बोध और रचना-पद्धति इतनी ताजगी से युक्त एवं ऊर्जावान है कि वयस्क होती कविता अपनी संपूर्ण संभावनओं के साथ अपनी ओर आकर्षित करती है। इनकी रचना-प्रक्रिया की जमीन अधिक उर्वर और बेहतर सृजन की संभावनाओं से युक्त है। ये सभी रचनाकार एक ऐसी वैचारिक और भावात्मक तैयारी के साथ सामने आए हैं, जिसमें जीवन के प्रति एक अकुंठ रागात्मकता दिखाई पड़ती है। कविता एक बार पुन: घर-गृहस्थी, जंगल, पेड़, नदी, गुफा, तालाब, मेंड़, खेत-खलिहान, मछली, सागर, घर, माँ, पिता, बहन, बेटी, आग, भूख, रोशनी, तवा, चूल्हा, रोटी जैसे आत्मीय प्रसंगों की ओर लौट रही है। यह 'पीछे देखूँ' वाली स्थिति नहीं है बल्कि अपनी जमीन का पुनराविष्कार है। बिना इस भव्यताबोध के कि पुराना स्वर्णिम था। भाषा, विचार और संस्कृति की गहरी पहचान लिए हुए ही कविता एक बार पुन: अपने आदिम हथियारों, सामानों, कबीलों, जंगलों, कटते पेड़ों, शिकारों, उत्तेजनाओं और अन्यान्य व्यापारों को नए सिरे से समझने-बूझने का प्रयत्न करती है। इस क्रम में कविताओं का तेवर अपेक्षाकृत अधिक ऐंद्रीयता प्राप्त कर रहा है।

यह पहला अवसर है जब समकालीन परिवेश को, उसके अनुभवों को समूचे संदर्भ के साथ सशक्त भाषा में अभिव्यक्ति मिली। पहली बार भाषा को उसकी मूल्यवत्ता प्राप्त हुई। भाषा में निहित अर्थ से अतिरिक्त अर्थ-संप्रेषण की कामना से रचनाकारों ने एक-एक शब्द को अर्थपूर्ण सिद्ध करने के क्रम में समूचे संदर्भ को पकड़ने की कोशिश की। इस क्रम में रचनाकार की सोच, अनुभूति तथा जीवन दृष्टि व्यापक रूप से प्रभावित हुई। इन तीनों को परिवर्तित और संवर्धित करने में युग की मानसिकता व संवेदना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह समकालीन कवियों के संदर्भ-फलक की व्यापकता एवं गहराई के कारण भाषा पहले के दौरा की भाषा से पूरी तरह अलग जमीन तैयार करती है। कविता की भाषा में परिवर्तन की यह प्रक्रिया अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और धूमिल से ही प्रारंभ हो गई थी। इसे क्रमश: और भी ठोस आकार दिया राजेश जोशी, अरुण कमल, भगवत रावत, कुमार अंबुज, विनोद दास, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई, देवी प्रसाद मिश्र, वीरेन डंगवाल आदि रचनाकारों ने। इन रचनाकारों के हाथों में पड़कर भाषा इस काल के गहरे सरोकारों से जुड़ी। इसमें आम आदमी की बोलचाल की भाषा, उसकी शैली और उसकी संवेदनाओं का समावेश हुआ। बिंब, प्रतीक, मिथक, द्वंद्व, रूपक, उपमान, लयात्मकता आदि काव्यभाषा के निकष संतुलित और सार्थक रूप से प्रयुक्त हुए। भाषा-प्रयोग में कहीं भी किसी प्रकार की हड़बड़ी नहीं दिखलाई देती है। यहाँ तक कि आक्रोश तथा विद्रोह जैसी प्रवृत्ति भी शांत-संयत परंतु मारक तथा तिलमिला देने वाली भाषा में व्यक्त हुई हुई है। यही इस काल की सबसे बड़ी विशेषता है। कविता की इन्हीं विशेषताओं ने मुझे भाषा पर संपादकीय लिखने के लिए प्रेरित किया।

अंत में इस अंक के लेखकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

एक गुमनाम कहानीकार जानकीवल्लभ शास्त्री

डॉ अमरेन्द्र त्रिपाठी

सह-आचार्य, हिंदी विभाग
इलाहबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
7697425204
amarrgu@gmail.com

हिंदी साहित्य में अक्सर यह हुआ है कि किसी एक विधा के सफल लेखक द्वारा अन्य विधाओं में किए गए लेखन पर पाठकों-आलोचकों का ध्यान कम गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, अज्ञेय या मुक्तिबोध की तरह यदि भिन्न-भिन्न विधाओं में समान गति-लय से विचरण करने की क्षमता लेखक में है, तब तो उसको 'इग्नोर' कर पाना कठिन है। पर अगर किसी विधा में शिखर पर विराजमान लेखक अन्य विधा में गाहे-बगाहे कुछ लिखता है तो उस पर ध्यान नहीं ही जा पाता है। हिंदी साहित्य-जगत के प्रसिद्ध कवि-गीतकार जानकीवल्लभ शास्त्री के साथ भी ऐसा ही हुआ। एक कवि के रूप में उनकी पहचान राष्ट्रीय स्तर की रही, लेकिन लगभग पंद्रह वर्षों के अंतराल में लिखे गए उनके तीन कहानी-संग्रहों को खास मान्यता नहीं मिल पाई। स्वयं शास्त्रीजी इन कहानियों की कलात्मक श्रेष्ठता को लेकर आश्वस्त नहीं थे, *'ये कहानियाँ हिंदी के कथा-साहित्य का भंडार भरेंगी, युग-पूजित धुरंधर कलाकारों का स्नेह-आदर प्राप्त करेंगी, इतने बड़े भ्रम का मैं कायल नहीं; ऐसी गगनचुंबी आशा मेरे संकुचित मन में नहीं मँडरा रही।'*[1]

यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उनके कथाकार व्यक्तित्व का विकास उनके कवि-मन के विस्तार के साथ-साथ ही हुआ, जिसका असर उनकी कहानियों पर भी है। भावुकता इनकी कहानियों का मूलाधार है, जो स्त्री-पुरुष संबंधों का नया आकाश खोलती है। कुल तीन कहानी-संग्रहों- 'कानन' (1939 ई), 'अपर्णा' (1941 ई), 'लीला कमल' (1955 ई)- के द्वारा शास्त्रीजी ने स्त्री-जीवन के कारुणिक आख्यान के साथ-साथ पारिवारिक जीवन के मूल, स्त्री-पुरुष के रिश्तों को नया मोड़ देने का प्रयास किया है, जिस पर हिंदी जगत में कम ध्यान दिया गया है। वर्ष 2014 में प्रकाशित 'बरगद के साए में' शास्त्रीजी के शुरुआती दो कहानी-संग्रहों- 'कानन' और 'अपर्णा' की समस्त कहानियों का क्रमवार संकलन है, पर इसमें संकलित अंतिम तीन कहानियाँ बिल्कुल नई हैं, जो

उनके किसी भी पूर्ववर्ती संग्रह में शामिल नहीं हैं। 'कानन' की एक कहानी 'भाई बहन' का नाम बदलकर नए संग्रह में 'एक थी शांति' कर दिया गया है, शेष कहानियों का शीर्षक समान है।

'बरगद के साए में' कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियाँ सन 1942 के पहले ही लिखी और प्रकाशित हो चुकी थीं। वह समय देश में आजादी की लड़ाई के साथ-साथ समाज-सुधार का भी था। आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज, गाँधीवाद और मार्क्सवाद जैसी विभिन्न चिंतन-धाराओं द्वारा उस समय लोगों की सोच में तेजी से बदलाव की कोशिशें हो रही थीं। इस दौर के समाज-सुधार का ज्यादा बल स्त्री पर था। बाल-विवाह, विधवा जीवन, स्त्री-अशिक्षा, सती-प्रथा जैसी स्त्री-जीवन की तमाम समस्याओं पर लोग अपने तरीके से लिख-बोल रहे थे। बंगाल इस मामले में देश का नेतृत्व कर रहा था। कलकत्ता में स्त्री के जीवन में बदलाव का न केवल दम भरा जाता था, बल्कि वहाँ की स्त्रियाँ देश के अन्य इलाकों की तुलना में ज्यादा समझदार और स्वतंत्र हो गई थीं। शास्त्रीजी के युवाकाल का अधिकांश कलकत्ता में बीता, जिस कारण स्त्री को लेकर उनकी सोच में बदलाव हुआ। उनकी चाहत थी कि बंगाल की तरह ही बिहार के साथ-साथ तमाम हिंदीभाषी समाज भी स्त्री को घर और सोच के कारागृह से मुक्त करे। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भावुक गीतकार जानकीवल्लभ शास्त्री ने कहानी लेखन की ओर यह कहते हुए कदम बढ़ाया कि, *'मेरी कोशिश तो महज औसत दर्जे के पाठकों के लिए है, जो सिफारिशी कला को बला समझकर टाल जाते हैं; जिन्हें दिल बहलाव के साथ-साथ थके-माँदे दिल पर चुपके से एक प्रभाव छोड़ जाने वाली कहानियाँ ही रफ्ता-रफ्ता थपकियाँ दे-देकर सुलातीं, ख्वाब बनकर मूँदी पलकों के पालने पर पैंगे भरातीं और खुले में पर खोले पंछी की प्रभाती तान बनकर सुबह मीठी नींद से जगा जाती हैं।'*[2]

शास्त्रीजी ने अपनी कहानियाँ भले ही 'औसत दर्जे' के पाठकों के लिए लिखी हों लेकिन वह औसत दर्जे की नहीं हैं, कम-से-कम कथ्य के स्तर पर। वैसे भी साहित्य का अधिकांश पाठक-वर्ग, जो समाज का बड़ा हिस्सा होता है, औसत दर्जे का ही होता है। तो शास्त्रीजी का उद्देश्य बेहतर कहानियाँ लिखना नहीं, बल्कि अपनी कहानियों के माध्यम से बेहतर समाज बनाना था। यही कारण है हिंदी साहित्य के किसी भी इतिहास में जानकीवल्लभ शास्त्री का नाम एक कहानीकार के रूप में दर्ज नहीं है।

'बरगद के साए में' कहानी-संग्रह में कुल तेईस कहानियाँ हैं, जिनमें से पंद्रह कहानियाँ सीधे-सीधे किसी स्त्री के जीवन से संबंधित हैं। इन कहानियों में स्त्री-जीवन के अनेकानेक संकटों को भिन्न-भिन्न कथा-परिदृश्यों में बाँधकर प्रस्तुत किया गया है। संग्रह की पहली कहानी 'कानन' है, जिसमें विवाहित युवक ललित समाजिक दबाव में हुए अपने विवाह से असंतुष्ट होकर अपनी सहपाठी कानन से प्रेम करने लगता है, जिससे दुखी होकर उसकी पत्नी लीला मायके जाकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेती है। इस अपराध-बोध से ग्रस्त होकर ललित और कानन भी एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त होते हैं। यह कहानी उस पारंपरिक भारतीय विवाह पद्धति पर बहुत धीमे वार करती है, जिसमें गाँव, मुहल्ला,

जाति, समुदाय, परिवार, प्रतिष्ठा सबकी परवाह कर उसका तो मेल किया जाता है, बस जिसका मेल नहीं किया जाता वह उन दो व्यक्तियों के दिल होते हैं, जिनको जीवन भर साथ-साथ रहना होता है। कहानी का नायक ललित कहता है कि *'शादी की है पिताजी के निष्ठुर हठ ने, समाज के अंगारों की भाँति जलती हुई आँखों से मुझ जैसों को खाक कर देनेवाले इशारे ने, तिलक ने, दहेज ने, पर मैंने हरगिज नहीं।'*[3]

भारत में स्त्री का समस्त जीवन विवाह-व्यवस्था में बँधा होने को अभिशप्त रहा है। स्त्री का मरण और मुक्ति दोनों ही उसके वैवाहिक जीवन से ही जुड़ा है। अविवाहित स्त्री के जीवन की परिकल्पना ही यहाँ संभव नहीं और न ही पतिविहीन जीवन की। शास्त्रीजी ने इस संग्रह की तमाम कहानियों के द्वारा भारतीय विवाह व्यवस्था में विद्यमान कुरीतियों पर जोरदार प्रहार करते हुए उसका विकल्प प्रस्तुत किया है। विवाह प्रेम की परिणति होना चाहिए, न कि विवाह के बाद प्रेम। 'कानन', 'गंगा', 'दो बहनें', 'प्रभा' और 'बरगद के साए में' नामक कहानियाँ विवाहेत्तर प्रेम संबंधों को केंद्र में रखकर बुनी गयी हैं। 'एक थी शांति', 'गंगा' और 'रोदन का राग' में बाल-विधवा का दर्द समाहित है और 'वेश्या' तथा 'प्रभा' में बेमेल-विवाह की त्रासदी को चित्रित किया गया है। इन अधिकांश कहानियों में विवाह-व्यवस्था पर सवाल खड़ा करने के बावजूद शास्त्रीजी आधुनिक स्त्री-विमर्श की तरह इस व्यवस्था को ही खत्म करने की वकालत नहीं करते बल्कि उसमें बदलाव की दिशा तय करते हैं। वे जानते हैं कि इस विषमतापूर्ण समाज में परिवार से बाहर जा कर भी स्त्री सुरक्षित और स्वतंत्र नहीं रह सकेगी। 'अभिनेत्री' कहानी की नायिका पारिवारिक बंधनों में नहीं बँधी है, पर बाहरी दुनिया का सच जानकर उसकी एकमात्र ख्वाहिश किसी के साथ विवाह करने की ही है। 'वेश्या' कहानी की ज्योति बेमेल विवाह को अस्वीकार कर घर से बाहर तो निकल जाती है, लेकिन उस बाहरी दुनिया में भी उसके लिए एक मात्र जगह वेश्यालय ही है, जहाँ एक दूसरे तरह का शोषण है। घर और बाहर के बीच भटक रही स्त्री की पीड़ा को 'वेश्या' कहानी के अंत में रचनाकार ने बहुत सुंदर तरीके से व्यंजित किया है, जहाँ अपने जीवन से तंग नीलम तय करती है कि वह ज्योति को वेश्या नहीं बनने देगी, और घर से बेघर हुई ज्योति को लगता है कि अब वेश्या बन जाना ही उसके लिए एकमात्र विकल्प है।

दरअसल शास्त्रीजी की तमाम कहानियों का प्लाट भले ही अलग-अलग हो और उसके नारी और पुरुष पात्रों के नाम भी अलग-अलग हों, लेकिन हैं वह एक ही नारी और पुरुष। ये पात्र तत्कालीन व्यवस्था से नाराज हैं और अपने जीते-जी उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। यही कारण है कि इनकी कहानियों के अधिकांश सदचरित्र तत्काल अपनी जान दे देते हैं। वह वक्त ही ऐसा था कि जिस सोच पर वे चल रहे थे, उसमें जीवन मुश्किल और मौत आसान थी, कई मामलों में आज भी है। वे स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर और उदात्त प्रेम को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले थे। शास्त्रीजी ने अपनी कहानियों में बहुत ही बारीकी से समाज के दोगले चरित्र पर भी प्रहार किया है। 'ईश्वर' कहानी का लोभी वैद्य पैसा पाने के लिए तो किसी भी जाति के घर जाने से नहीं हिचकता लेकिन अपने बेटे नरेन के सबसे प्रिय दोस्त ईश्वर को केवल इसलिए घर आने से रोक देता है, क्योंकि वह भंगी है। 'विनाश के पथ पर' कहानी का नायक रमारमण अपने आदर्शों के खातिर डॉ. अविनाश के यौन-शोषण का शिकार हुई सुवासिनी का पक्ष लेता है, लेकिन अविनाश अपने पैसे के दम पर सारे समाज को अपने पक्ष में कर लेता है (यहाँ तक कि सुवासिनी को भी) और रमारमण बेघर हो जाता है।

शास्त्रीजी ने अपने दूसरे कहानी संग्रह 'अपर्णा' की भूमिका में लिखा है कि *'मेरी शैली अच्छी है या बुरी पता नहीं। मगर वह किसी की नकल नहीं है, इतनी सी असलियत मैं जानता हूँ।'*[4]

यह सच है कि शास्त्रीजी की कहानियाँ किसी की नकल नहीं हैं, पर उन पर जयशंकर प्रसाद का खासा प्रभाव है – कथानक से लेकर कहन के अंदाज तक पर। शिल्प के स्तर पर शास्त्रीजी की कहानियाँ थोड़ी कमजोर हैं, शायद इसीलिए एक कथाकार के रूप में उनको वैसी प्रतिष्ठा नहीं मिली जैसी उन्हें मिलनी चाहिए थी। पर, कथ्य के स्तर पर ये कहानियाँ अपने समय से बहुत आगे हैं। इसमें स्त्री के साथ-साथ पुरुषों के जीवन में भी रंग भर देने की क्षमता है। ये कहानियाँ 'मर्दवादी' समाज की सोच, संवेदना और मूल्यबोध पर कड़ा प्रहार करते हुए उनके भीतर स्त्री और उसकी समस्याओं के प्रति संवेदित करती हैं। शास्त्रीजी के कवि रूप के आभामंडल में उनका कहानीकार व्यक्तित्व दब गया। उन्होंने उसे प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी नहीं किया, लेकिन उनकी कहानियाँ अपने समय के साथ बेहतर संवाद करती हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. 'जानकारी वल्लभ शास्त्री, 'बरगद के साए में' (2014 ई.), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली : भूमिका से
2. वही
3. वही : 12
4. जानकी वल्लभ शास्त्री 'अपर्णा' : भूमिका से

कहानी वह रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास उसी एक भाव की पुष्टि करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

- मुंशी प्रेमचंद

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

विस्थापन की समस्या और हिंदी उपन्यास

डॉ. शगुन अग्रवाल

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
9911409460
shagagar945@gmail.com

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के आरंभ में ही यह लिखकर, ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है''[1] - साहित्य और समाज के अनिवार्य संबंध को बड़ी गंभीरता से रखांकित कर दिया था। साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का वाहक होने के साथ-साथ समाज के विभिन्न वर्गों को आपस में जोड़ने और परवर्ती काल की जनता को पूर्ववर्ती सामाजिक संरचना, जीवन शैली, कला संस्कृति आदि से अवगत कराने का जरिया भी होता है। 'कला, कला के लिए' (Art for the sake of Art) हो या कला, जीवन के लिए (Art for the sake of Life)- इस बहस में पड़े बिना भी यह बेझिझक कहा जा सकता है कि कला के मानदंड कहीं-न-कहीं जीवन के, समाज के संदर्भों से जुड़े होते हैं। कलाकार, जो कि माध्यम है, कला को अभिव्यक्त करने का, समय और समाज के प्रभाव से बच नहीं सकता है। विजयदेव नारायण साही 'साहित्य और साहित्यकार का दायित्व' में लिखते हैं - 'एक स्तर पर भाषा, विचार और साहित्य- ये भिन्न नहीं रह जाते और जैसे-जैसे उनमें घनत्व बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे लेखक जो उस भाषा से दिन-रात उलझ रहे हैं, उनके अनुभव समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।'[2]

यहाँ जिस अनुभव की बात साही जी कर रहे हैं, वह अनुभव लेखक समाज के अच्छे-बुरे, खट्टे-मीठे यथार्थ से अर्जित करता है और उन्हीं के कारण उसकी अभिव्यक्ति और दृष्टि में परिवर्तन और प्रयोग होते हैं।

पिछले कुछ दशकों में भूमंडलीकरण, नव्य उदारतावाद, उपभोक्तावाद, शहरीकरण आदि के चलते समाज में बदलाव और तथाकथित विकास का एक अजब मंजर सामने आया। पूँजी, सत्ता और आतंक के गठजोड़ ने

देश और समाज को हिला कर रख दिया। आजादी के बाद से विकास के बारे में सबसे ज्यादा चर्चाएँ हो रही हैं। यह सच है कि विकास हो रहा है, पर सवाल यह है कि किस तरह का और किस कीमत पर यह विकास हो रहा है। आज हमारा सामाजिक पर्यावरण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था संकटग्रस्त है। पानी का संकट है, जंगलात के नष्ट होने का संकट है, नाले जाम पड़े हैं, पर्यावरण प्रदूषण का संकट है। शहरों में जितनी तेजी से विकास के नाम पर बहुमंजिला इमारतें, फ्लाईओवर, एलिवेटेड कॉरीडोर बन रहे हैं, उतनी ही तेजी से झुग्गी झोंपड़ियों की संख्या बढ़ रही है। शहरों में जितने लोग घरों में रहते हैं, उससे ज्यादा सड़कों, गंदी बस्तियों में रहते हैं।

विकास के इस दौर की सबसे बड़ी महामारी है उपभोक्तावाद। अकेले भारत और चीन में दुनिया के बीस फीसद उपभोक्ता रहते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उपभोक्ता बढ़ रहे हैं, किंतु असमानता कम नहीं हो रही। उपभोक्ता संस्कृति के विकास की सामाजिक स्तर पर हर व्यक्ति को बड़ी भारी कीमत अदा करनी पड़ती है। उपभोग की सबसे बड़ी कीमत कर्ज के रूप में अदा होती है, साथ ही उपभोग समय, संबंधों, परिवार, मित्रों को अपदस्थ कर देता है। अनेक देशों में मोटापा, अपराध, अवसाद आत्महत्या, नशीले पदार्थों का सेवन, एकाकीपन, लिंग की जटिल समस्याएँ, सांस्कृतिक पहचान का क्षय आदि समस्याओं को बढ़ावा मिला है। पूँजी के अबाध आवागमन और सूचना तकनीक के प्रसार ने एकदम नए किस्म की दुनिया निर्मित की है, अमेरिकी सभ्यता और समाज को पश्चिम के आदर्श मॉडल के रूप में पेश किया है। मध्यवर्ग इस दुनिया की चमक में खो गया है और गरीब किसान और मजदूर अवाक हो गया है। इस नई व्यवस्था के दबाव से व्यक्ति का बचना मुश्किल है और इसके चलते विस्थापन, पलायन, बेगानापन इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। समय, समाज और संबंधों का यह बदलता हुआ स्वरूप हिंदी के कथा साहित्य में लगातार

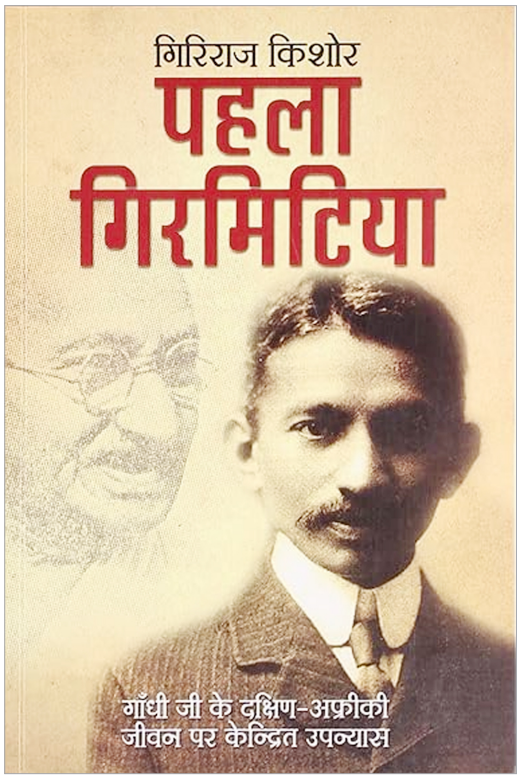

दर्ज होता रहा है।

मानव सभ्यता का इतिहास और विस्थापन संभवत: समानांतर धाराएँ हैं। पहला विस्थापन कब हुआ, यह जान पाना तो संभव नहीं है, परंतु इतना तय है कि विभिन्न सभ्यताओं के अंतर्गत साम्राज्यों की सीमाओं के विस्तार हेतु होने वाले युद्धों और नगरों और भौतिक संपदाओं के निर्माण ने संभवत: विस्थापन की नींव रखी होगी। भारत के संदर्भ में जहाँ तक विस्थापन का सवाल है, तो इसके तीन मुख्य कारण दिखाई देते हैं – औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजों द्वारा जबरदस्ती मजदूरों के रूप में विभिन्न देशों में भेजे गए गरीब, लाचार भारतीय, जिन्हें गिरमिटिया के नाम से जाना जाता है। विस्थापन का दूसरा दौर भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी, देश विभाजन के समय का है। इन दोनों ही कारणों से हुआ विस्थापन अपनी प्रकृति में स्थायी, बलात और अंतर्राष्ट्रीय था। स्वतंत्र भारत में विस्थापन का सबसे बड़ा कारण बनी विकास हेतु चलाई गई

विभिन्न परियोजनाएँ। इन तीनों ही कारणों से हुए विस्थापन की त्रासद सच्चाई हिंदी के उपन्यास साहित्य में बड़ी ईमानदारी के साथ व्यक्त हुई है।

इतिहास के अनुसार औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजों द्वारा गिरमिटिया प्रथा सन 1834 में शुरू की गई थी, जिसमें गरीबी, लाचारी, बेरोजगारी, भुखमरी से बेहाल 10 से 15 हजार भारतीय मज़दूरों को हर साल गुलाम बनने की शर्त पर एक एग्रीमेंट करवाकर फिजी, ब्रिटिश गुयाना, डच गुयाना, कीनिया, मॉरीशस, ट्रिनीदाद, टोबैगो, नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) आदि देशों में भेज दिया जाता था। चूँकि ये लोग एग्रीमेंट के तहत जाते थे और भारतीय लोग इस अंग्रेजी शब्द का उच्चारण गिरमिट करते थे, अत: शनै:-शनै:अंग्रेज भी उनको गिरमिट मजदूर कहने लगे। गिरमिटिया प्रथा बाकायदा सरकारी नियमों और सरकारी संरक्षण प्राप्त लोगों के कारोबार के तहत खूब फली-फूली। जिन देशों में ये भारतीय गुलाम इस प्रथा के तहत भेजे गए, आज भी वे देश गिरमिटिया देशों के नाम से जाने जाते हैं।

उस समय भले ही इन मजबूर मजदूरों की देशभक्ति ने परिवार के भरण-पोषण की जरूरत के आगे घुटने टेक दिए, लेकिन उन देशों में पहुँचकर भी इन्होंने अपने देश की संस्कृति, त्योहारों और परंपराओं को नहीं छोड़ा। वे वहाँ गन्ने के खेतों में काम करते हुए मानस की चौपाइयों का गान करते थे और संकट में हनुमान चालीसा पढ़ते थे। एग्रीमेंट के कारण वे पाँच साल बाद छूट तो सकते थे, लेकिन उनके पास इतना धन नहीं होता था कि वे भारत वापिस लौट सकें। गिरमिटिया एग्रीमेंट के तहत ये मजदूर बेचे जा सकते, काम न करने की स्थिति में अथवा कामचोरी करने पर बुरी तरह दंडित भी किए जा सकते थे। यहाँ तक कि गिरमिटियों को विवाह करने की भी छूट नहीं थी और यदि कुछ गिरमिटिया विवाह कर भी लेते थे तो उनके परिवार पर भी गुलामी वाले नियम लागू होते थे। इसके तहत उनकी स्त्रियाँ और बच्चे किसी और को बेचे जा सकते थे। शिक्षा, मनोरंजन आदि मूलभूत आवश्यकताओं से भी उनको वंचित रखा जाता था। इन सभी सख्तियों में बँधे उन निरीह भारतीयों को किसी भी तरह से अपना हृदय कठोर बनाकर हजारों किलोमीटर दूर उन विदेशी भूमियों में ही बसना पड़ा। अपने लोग, अपना देश सब छूट गया था, शेष था तो सिर्फ मन में गहरे बसी अपनी संस्कृति, परंपराएँ और अपनी भाषा हिंदी, जिनको गिरमिटिया मजदूरों से कोई एग्रीमेंट किसी भी प्रकार से छीन नहीं सकता था। वैसे तो सन 1917 में ब्रिटिश सरकार ने इस गिरमिटिया एग्रीमेंट को महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले के साथ-साथ ब्रिटिश सी.एफ. एंड्रयूज और हेनरी पोलाक सहित अनगिनत भारतीयों के लिए इस अमानवीय प्रथा को समाप्त करने की मुहिम छेड़ने के चलते निषिद्ध घोषित कर दिया था, परंतु जो भारतीय उन देशों से कभी नहीं आ पाए, वे मजबूरन वहीं बस गए।

हिंदी साहित्य में प्रवास प्रक्रिया का वैचारिक प्रारंभ मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'यह मेरी जन्मभूमि है'(1903) से माना जा सकता है। प्रेमचंद की एक अन्य कहानी 'शूद्रा' मॉरीशस के गिरमिटिया मजदूरों के जीवन पर आधारित है। गरीब, लाचार जनता को छल से मॉरीशस भेजने के संदर्भ में इस कहानी का एक अंश दृष्टव्य है-

'गौरा के प्राण नहों में समा गए। मालूम हुआ जहाज अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गई बूढ़े ब्राह्मण ने दगा किया। अपने गाँव में सुना करती थी कि गरीब लोग मिरिच में भरती होने के लिए जाया करते हैं। मगर जो वहाँ जाता है, वह फिर नहीं लौटता। बोली - यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं?'[3]

अंग्रेजों की शोषण और दमनकारी नीतियों के चलते विस्थापित हुए इन गिरमिटियों के जीवन और संघर्ष को समझने में तोताराम सनाढ्य का लेखन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वे स्वयं इक्कीस वर्षों तक फिजी में रहे। पहले वे बंधुआ मजदूर थे, बाद में किसान हो गए। सन 1914 में वे फिजी से भारत लौटे। लौटने के दौरान उन्होंने अपनी पूरी कहानी बनारसीदास चतुर्वेदी को बताई, जो भारतीय राष्ट्रवादी व्यक्ति थे और प्रकाशन का कार्य भी करते थे। 1915 से 1922 के बीच यह कहानी 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' शीर्षक से अनेक भागों

में भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। फिजी में अनुबंधित श्रमिकों की त्रासद जीवन गाथा को उन्होंने बड़ी गहराई से समझा और ईमानदारी से व्यक्त किया। दुर्व्यवहार और अत्याचार का सिलसिला जहाज पर चढ़ने से ही शुरू हो जाता था। उन्होंने लिखा है – 'उस समय पाँच सौ भारतीय अपनी मातृभूमि को छोड़ कौदियों और गुलामों की तरह फिजी को जा रहे थे। जब हम लोग बैठ चुके तो हर एक को चार-चार बिस्कुट और आधी-आधी छटांक चीनी दी गई। इन बिस्कुटों को गोरे लोगों द्वारा बिस्कुट कहा जाता है और ये कुत्तों को खिलाए जाते हैं। पीने के लिए दिन में दो बार एक-एक 'बोतल पानी मिलता है, फिर नहीं मिलता चाहे प्यासे क्यों न मरो। वहीं मछली पकती थी और वहीं भात बनता था। समुद्री बीमारी (sea-sickness) से भी बहुत आदमी पीड़ित हो गए। कई तो बेचारे कै करके इस संसार से सदा के लिए विदा हो गए। वे लोग समुद्र में फेंक दिए गए। इस प्रकार तीन महीने बारह दिन में हमारा जहाज सिंगापुर, बोर्निया इत्यादि के किनारे होता हुआ फिजी पहुँचा।'[4]

इस संदर्भ में महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा और 'दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास' में प्रवास से संबंधित अपने अनुभवों का विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ पर गिरिराज किशोर द्वारा महात्मा गांधी के अफ्रीका प्रवास पर आधारित बृहत उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' का उल्लेख भी बहुत जरूरी है। इस उपन्यास के नायक मोहनदास हैं, महात्मा गांधी नहीं। इंग्लैंड से वकालत की पढ़ाई पूरी कर 1893 में मोहनदास दक्षिण अफ्रीका पहुँचते हैं। रेलगाड़ी का टिकट होने के बावजूद उन्हें रेल के डिब्बे से सामान समेत बाहर निकाल फेंका जाता है। इस रंगभेद नीति के पहले अनुभव ने युवा गांधी पर गहरी छाप छोड़ी। रंगभेद नीति की आड़ में दक्षिण अफ्रीका में काम कर रहे भारतीय मजदूरों पर हो रहे अन्याय गांधी को बर्दाश्त नहीं होते और वे उन्हें उनके अधिकार दिलाने के संघर्ष में पूरी तरह जुट जाते हैं।

इस उपन्यास में दक्षिणी अफ्रीका में हो रहे भारतीय व्यक्तियों पर जुल्मों की दास्तान लंदन तक गोखले जैसे

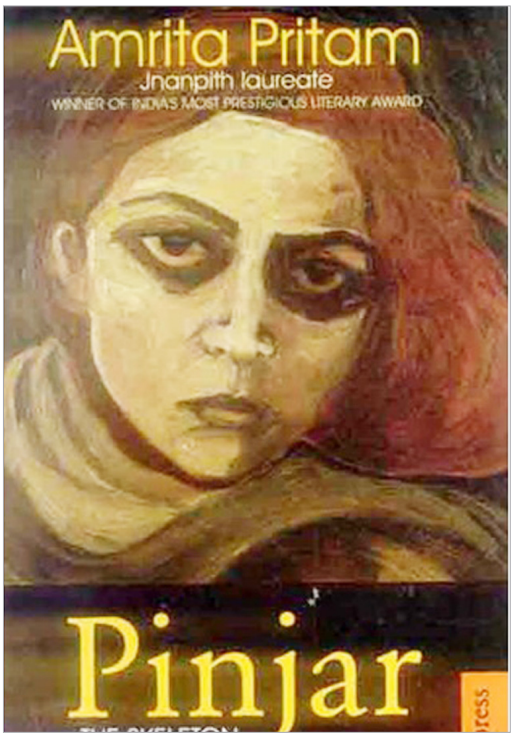

नेताओं के द्वारा पहुँचाई जाती है। एक दूसरी धरती पर अपने लोगों पर हो रहे अत्याचारों से देश तड़प उठा। लार्ड हार्डिंग वायसराय हो गए थे। भारतीयों के प्रतिनिधि मंडल उनसे इस बारे में मिल रहे थे। वायसराय होने के बावजूद लार्ड हार्डिंग ने दक्षिणी अफ्रीका की सरकार पर खुला हमला किया – 'दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, वे किसी भी सभ्य समाज के लिए शर्मनाक हैं।'[5]

19वीं और 20 वहीं सदी के दक्षिण अफ्रीका की सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित इस उपन्यास में गिरमिटियों के संत्रास और संघर्ष को बड़ी सच्ची संवेदना के साथ उकेरा गया है।

भारतीय लेखकों से इतर प्रवासी भारतवंशियों ने भी इस दिशा में बहुत काम किया है। मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम आदि देशों में लिखे जा रहे अधिकांश हिंदी साहित्य के रचनाकार वे लोग हैं, जिनके पूर्वज अनुबंधित श्रमिकों के रूप में इन देशों में गए थे। उपन्यास के क्षेत्र में मॉरीशस के अभिमन्यु अनत का नाम विशेष रूप से

उल्लेखनीय है। अनत ने अपने देश के गूंगे एवं चीखते इतिहास को 'लाल पसीना', 'गांधी जी बोले थे' तथा 'और पसीना बहता रहा' की उपन्यास त्रयी के रूप में प्रस्तुत किया। रामदेव धुरंधर के 'पूछो इस माटी से' तथा एक त्रिखंडी उपन्यास 'पथरीला सोना' में भी गिरमिटिया मजदूरों के संघर्षपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। इसके अतिरिक्त दीपचंद बिहारी का 'मसीहे नर्क जीते हैं', विष्णुदत्त मधु का 'फट गई धरती', आदंद देवी का 'कसूर किसका' आदि अनेकानेक लेखकों द्वारा रचित विपुल साहित्य मिलता है।

फिजी के हिंदी उपन्यास को समृद्ध करने वालों में जोगिन्द्र सिंह कंवल का योगदान महत्वपूर्ण है। इन्होंने फिजी में प्रवासी भारतीयों के जीवन को आधार बनाकर कुल चार उपन्यास 'सवेरा', 'धरती मेरी माता', 'करवट' तथा 'सात समुद्र पार' की रचना की है। विवेकानंद शर्मा का उपन्यास 'अनजान क्षितिज की ओर' और डॉ. सुब्रमणी का 'डउका पुराण' श्री गिरमिटिया भारतीयों के जीवन पर आधारित है। कमला प्रसाद मिश्र, बाबू हरनाम सिंह, ज्ञानीदास, सलीम बख्श, विजयेन्द्र सुधाकर आदि फिजी में हिंदी लेखन से जुड़े कुछ अन्य प्रमुख नाम हैं। भारत से जिन देशों में गिरमिटिया मजदूर गए उनमें सूरीनाम सबसे अधिक दूरी पर है, लेकिन वहाँ भी भारतीय प्रवासियों तथा उनके वंशजों ने हिंदू धर्म, संस्कृति तथा आचार-व्यवहार को जीवित रखा। यहाँ सूरनामी हिंदी लोकप्रिय है, जिसमें भोजपुरी, अवधी, हिंदी, ब्रज, उर्दू, मगही, डच, अंग्रेजी आदि का मिश्रण है। सूरीनाम के कुछ प्रमुख लेखक हैं - रहमान खान, चंद्रमोहन, रामदेव रघुबीर, उषा गोपी, अमित अयोध्या आदि। त्रिनिदाद एवं टोबैगो दो सुंदर द्वीपों का सदाबहार देश है। 30 मई, 1845 को 212 भारतीय मजदूरों को लेकर जलपोत यहाँ के बंदरगाह पोर्ट ऑफ स्पेन पहुँचा था। यहाँ प्रो. हरिशंकर आदेश हिंदी प्रवासी साहित्य में सर्वाधिक योगदान के लिए जाने जाते हैं। दूर देशों में बसे इन भारतवंशियों के साहित्य के संदर्भ में उषा राजे सक्सेना का कहना है-

'प्रवासी हिंदी साहित्य का अपना ऐतिहासिक महत्व रहा है, जो सीधा हमें हमारे उन पूर्वजों, गिरमिटिया श्रमिकों के दर्दनाक इतिहास से जोड़ता है, जो सौ वर्ष पूर्व छलावे से उन बंजर पराए देशों के यातना शिविरों में ले जाए गए थे।'[6]

भारत के इतिहास में विस्थापन का एक अन्य बहुत बड़ा और त्रासद कारण था सन 1947 में देश का विभाजन। काल प्रवाह में कुछ ऐतिहासिक क्षण ऐसे होते हैं, जिनकी काली छाया से आने वाली कई पीढ़िया जूझती रहती हैं। भारत विभाजन का क्षण भारतीय इतिहास में ऐसा ही अभूतपूर्व दूरगामी प्रभाव डालने वाला था। आरंभ में आजादी की लड़ाई में सभी संप्रदाय के लोग मिलकर भाग ले रहे थे, परंतु अंग्रेजों ने समय के साथ राष्ट्रीय आंदोलन को समाप्त करने के लिए सांप्रदायिकता का बीज बोकर हिंदू, मुसलमानों में फूट डाल दी। धीरे-धीरे हिंदू-मुस्लिम भेदभाव तथा सांप्रदायिकता की भावना बढ़ती चली गई।

विभाजन और स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही पंजाब और बंगाल में विस्थापन और पलायन के पीड़ाजन्य प्रभाव दिखाई देने लगे थे और विभाजन के पश्चात यह भयानक, विकराल रूप में उपस्थित हुए। विभाजन का मूल कारण था हिंदू-मुस्लिम सम्प्रदायवाद। विभाजन के पहले की समस्या विभाजनोपरांत भी बनी रही कि इन देशों का सीमा निर्धारण कैसे होगा ? कौन से राज्य हिंदुस्तान में रहेंगे और कौन से राज्य नवनिर्मित पाकिस्तान में जाएँगे।

इस दुविधा की स्थिति में चारों तरफ भय, तनाव, अविश्वास, प्रतिशोध, लूटपाट, आगजनी व बलात्कार का वातावरण बन गया। नतीजा यह हुआ कि जिस इलाके में जिस धर्म के लोगों का प्रभुत्व था उन्होंने दूसरे धर्म के लोगों को वहाँ से खदेड़ना शुरू कर दिया और उनके सामने विस्थापन की समस्या आ खड़ी हुई। इस तरह थोड़े ही समय में लाखों लोग घर से बेघर हो गए और उन्हें शरणार्थी शिविरों में, अपनों से बिछड़कर, बदहाली में वर्षों जीवन व्यतीत करना पड़ा। इस त्रासदी के परिणामों के बारे में पक्के आँकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन आम राय यही है कि कम-से-कम डेढ़ करोड़ लोग अपना घर

बार छोड़ने पर मजबूर हुए। न सिर्फ देश बँटा, बल्कि लोगों के दिल भी बँट गए।

इस विभीषिका ने संवेदनशील साहित्यकारों को झकझोर कर रख दिया। विभाजन ने विस्थापित मानव आबादी की बर्बरता के सबसे आदिम रूप को निकालकर रख दिया। इस घटना ने केवल उपमहाद्वीप के टुकड़े नहीं किए, बल्कि जिस समावेशी संस्कृति को पाने में सदिया लगी थीं, उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। हिंदी साहित्य में विभाजन से हुए हाहाकार की गूँज बार-बार सुनाई देती है। यशपाल, भीष्म साहनी, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती आदि तमाम लेखकों ने अपने तरीके से इस त्रासदी को देखा-समझा और इस पर लिखा।

प्रख्यात उपन्यासकार यशपाल का दो खंडों में प्रकाशित उपन्यास 'झूठा सच' विभाजन की त्रासदी पर हिंदी में लिखा गया ऐसा उपन्यास है, जो इसे विराट ऐतिहासिक-राजनैतिक फलक पर प्रस्तुत करता है और विभाजन के बाद स्वाधीन भारत में शुरू होने वाली राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों में होने वाले क्षय को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करता है। सांप्रदायिक दंगों के चलते बड़ी संख्या में लोग अपने घरों, अपने देश से विस्थापित हुए। 'झूठा-सच' में यशपाल ने लोगों के पलायन और रातों रात अपने ही देश में शरणार्थी बन जाने के दर्द का बेहद हृदय विदारक और प्रभावी चित्रण किया है। अपने वतन पश्चिम पंजाब से निकाल दिए गए त्रस्त शरणार्थियों की बसों का काफिला भारतीय सशस्त्र सैनिकों की रक्षा में अपने देश पहुँचकर शरणार्थी कैंप के द्वार पर खड़ा हुआ। रात हो चुकी थी, सब लोग जो कुछ सामान साथ ला सके थे, उसे बसों से उतारने में व्यस्त हो गए। शेखूपुरा से आई स्त्रियों को भोजन कराकर नत्थासिंह छोलदारी के सामने आकर बोले 'बीवियों, भैणों, धियों, अपना-अपना नाम पीहर-ससुराल के पूरे पते लिखवा दो। तुम लोगों के परिवारों के लोग किसी कैंप से आए होंगे तो रजिस्टर देखकर तुम्हें उनका पता दे दिया जाएगा कि वे कहाँ गए हैं। उन्हें भी खबर देने का यत्न करेंगे। रेडियो से भी खबर करवा देंगे कि तुम्हें कहाँ पहुँचाया जाना चाहिए।'[7]

पलायान के समय जिसे जिस हालत में भागने का मौका मिला उसी तरह भागा, कोई बैलगाड़ियों से तो कोई रेल से कोई पैदल तो कोई अन्य सवारी से। इस तरह वे अपने-अपने नए वतन पहुँच गए। उपन्यास की मुख्य महिला पात्र तारा जब गाड़ी से उतरी तब ड्राइवर कह रहा था- 'यह काफिला भी वतन छोड़कर अपने देश को जा रहा है । मनुष्यों के देश, धर्मों के देश बन गए।'[8]

हिंदी साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर कृष्णा सोबती का विभाजन की पृष्ठभूमि पर, आत्मकथात्मक शैली में लिखा उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' बहुत महत्वपूर्ण है। जहाँ एक तरफ अधिकतर उपन्यास इस डिसक्लेमर के साथ शुरू होते हैं कि सभी पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं, ये उपन्यास एक अनोखे दावे से शुरू होता है कि इस उपन्यास के सभी पात्र और घटनाएँ सच और ऐतिहासिक हैं। इस उपन्यास में उनकी अपनी जिंदगी के वो अनुभव दर्ज हैं, जो उन्हें विभाजन के बाद एक रिफ्यूजी के रूप में दिल्ली आने से लेकर सिरोही (गुजरात) के राजपरिवार के इकलौते वारिस की गवर्नेस बनने के दौरान हुए। उन जैसे लाखों लोगों को एक आजाद देश बनने की खुशी अपने घर, जिंदगी, इज्जत, मान और खुद को खोने की कीमत पर मिली।

भीष्म साहनी कृत 'तमस' एक ऐसा उपन्यास है, जिसकी रचना विभाजन के लगभग ढाई दशक बाद हुई। यह सांप्रदायिक उन्माद और उसके पीछे की राजनीति को उजागर करने वाला उपन्यास है। 'तमस' विभाजन से ठीक पहले पंजाब के उस हिस्से की कहानी कहता है, जो बाद में पाकिस्तान का हिस्सा बना और जहाँ से हिंदुओं और सिखों को अपना घरबार और काम-धंधा छोड़कर भागना पड़ा था। मानव इतिहास में शायद पहली बार लाखों-लाख लोगों को उन जगहों से उजड़ जाना पड़ा, जहाँ वे कई-कई पीढ़ियों से रहते आए थे। 'तमस' आदमियों के आँकड़ा बन जाने की भयावह त्रासदी की

कहानी कहता है – 'मुझे राम कहानी नहीं चाहिए, मुझे केवल आँकड़े चाहिए। कितने मरे, कितने घायल हुए, कितना माली नुकसान हुआ, रिलीफ कमेटी का कार्यकर्ता, रजिस्टर खोले झल्लाकर कहता, पर रिफ्यूजी थे कि समझते ही नहीं थे। पर इनसे कोई क्या कहे–बर्बाद होकर आये हैं, बेघर, बेसरो–सामान के।'[9]

इसी तरह राही मासूम रजा का मशहूर उपन्यास 'आधा गांव' भी विभाजन के दंश पर लिखा गया है। उपन्यास की घटनाएँ पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गाँव में घटती है, जहाँ भोले–भाले गाँव वाले सांप्रदायिक बहकावे में आ जाते हैं, जिससे गाँव का समावेशी सामजिक और सांस्कुतिक ताना–बाना छिन्न–भिन्न हो जाता है। अमृता प्रीतम कृत–पिंजर उपन्यास में लेखिका ने विभाजन के दौरान, विस्थापित स्त्रियों पर हुए अत्याचार, अन्याय एवं शोषण की दास्ता बयाँ की है। कमलेश्वर द्वारा रचित 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास भी मानवता के दरवाजे पर इतिहास और समय की एक दस्तक है। इस उम्मीद के साथ कि भारत ही नहीं, दुनिया भर में एक के बाद दूसरे पाकिस्तान बनाने की लहू से लथपथ यह परंपरा अब खत्म हो। नब्बे के दशक में भोपाल के मंजूर एहतेशाम का लिखा उपन्यास 'सूखा बरगद' भी स्वातंत्र्योत्तर भारत में विभाजन के परिणामस्वरूप आए सामुदायिक जीवन के बदलाव की कथा कहता है। इसके केन्द्र में भारतीय मुस्लिम समाज है जिसके अंतर्विरोध और द्वंद्व उपन्यासकार ने बेहद मार्मिक ढंग से उद्घाटित किए हैं। असल में भारतीय सामुदायिक जीवन की बरगद जैसी बहुलता के सूखते जाने का मर्सिया है 'सूखा बरगद'।

वस्तुत: देश ने बँटवारे का दर्द 1947 में सहा, लेकिन इसके घाव अब तक नहीं भरे। यह सच है कि अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन से भारत की मुक्ति के 70 साल पूरे हो चुके हैं, लेकिन दूसरा और बहुत ही दु:खद सत्य यह भी है कि यह दिन भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन की सत्तरवीं वर्षगाँठ का दिन भी है। विभाजन और उससे हुए विस्थापन की विभीषिका की काली छाया हिंदी साहित्य में इसीलिए बड़ी गहराई से दिखती रही है।

आजादी के साथ मिली विभाजन की त्रासदी को तो देशवासियों ने झेला ही, लेकिन विस्थापन, पलायन और अपने स्थान से खदेड़े जाने का सिलसिला आजाद भारत में भी बदस्तूर जारी रहा। आजाद भारत के पाँच–छह दशक लगातार न उम्मीद होते जाने और जबरदस्त मोहभंग के साल हैं। इन वर्षों में विकास की मरीचिका के पीछे दौड़ती इस देश की अधिसंख्य आबादी के हिस्से सिर्फ नाउम्मीदियाँ ही आई हैं। विद्रूप यह है कि इन्हीं वर्षों में सत्ता और शक्ति के केंद्रों से जुड़ा एक छोटा–सा समूह इस बड़ी आबादी की सारी जरूरतों को रौंदते हुए, उसे हर स्तर पर विस्थापित करते हुए, अपने लिए एक हरा–भरा मरुद्यान बनाने के छल में सफल हुआ है।

विकास की सीढ़ी चढ़ते मनुष्य ने अपने सामने आई हर वस्तु को बाधा समझा और थोड़े से लोगों के आराम व मनोरंजन के निमित्त उसने जंगलों, पहाड़ों को नष्ट किया, जीव–जंतुओं का संहार किया। धरती, आकाश व समुद्र को इस हद तक प्रदूषित कर डाला है कि अब उनके पूर्व स्थिति में आने की संभावनाएं नित्य प्रति धूमिल होती जा रही हैं।

बांध, कारखानों, रेल, हवाईअड्डा, औद्योगिक क्षेत्र, शहरों की बसाहट, सुरक्षित वन, बाघ अभयारण्य, सड़क निर्माण, परमाणु एवं ताप विद्युत गृह, खेल के स्टेडियम आदि के लिए भूमि अधिग्रहण के कारण यह अनुमान है कि आजादी के बाद से करीब 10 करोड़ नागरिक विस्थापित हुए हैं। विस्थापन की पूरी प्रक्रिया को समझाते हुए अरूंधति राय कहती हैं – 'लाखों लाख विस्थापितों का अब कोई वजूद नहीं है। उनमें से कुछ लगातार तीन बार और चार बार विस्थापित हुए हैं। बाँध के लिए, चांदमारी के इलाके के लिए, यूरेनियम की खान के लिए, बिजली परियोजा के लिए। इनमें से बहुत बड़ी संख्या आखिरकार हमारे बड़े शहरों की परिधि पर झोपड़पट्टियों में खप जाती है, जहां यह सस्ते निर्माण मजदूरों की बहुत बड़ी भीड़ में बदल जाती है।'[10]

आजादी के बाद हमारे देश में जो विकास योजनाएँ शुरू हुईं, उन्हीं की शुरुआती कड़ी में एक योजना बनी थी मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की बुंदेलखंड सीमा पर स्थित बेतवा नदी के तट राजघाट पर बाँध बनाने की। इसी परियोजना के तहत भारतीय ग्रामीण जन के शासन और समाज द्वारा किए गए सुनियोजित दमन, शोषण और उपेक्षा का मर्मस्पर्शी दस्तावेज है वीरेन्द्र जैन कृत 'डूब'। लोगों की जमींन, मकान, कुंए आदि सरकार द्वारा किश्तों में अधिग्रहित किए जाने लगते हैं। जमीन के साथ उनकी संवेदनाएँ, सुख, दुख, स्मृतियाँ गहरे रूप में समन्वित हैं। किसानों से उनकी जमीन छीनकर उनके पुनर्वास का कोई मुकम्मल इंतजाम नहीं किया जाता। मुआवजे के लिए उनकी आँखें राह देखती रहती हैं। जैसे ही डूब क्षेत्र घोषित होता है, इन्हें सारी सुविधाएँ देना बंद हो जाता है। उपन्यास के एक मुख्य पात्र माते के अनुसार 'हमसे तो बस लेने ही लेने का रिश्ता है न तुम्हारा। हमें तो यहीं छेंककर मारना है तुम्हें। यहीं डुबोना है न। हम अभागों ने दुनिया देखी ही नहीं, फिर जाएं तो जाएं कहां। खाली हाथ, सपाट दिमाग लेकर जा भी कहां सकते हैं हम।'[11]

वीरेन्द्र जैन जी का 'पार' उपन्यास 'डूब' की दूसरी कड़ी है, जिसकी पृष्ठभूमि में बुंदेलखंड अंचल का आदिवासी समाज है। 'डूब' की विस्थापन की पीड़ा 'पार' में उतरकर और भी सघन हो जाती है। विस्थापित होते गाँव का प्रभाव आदिवासियों के समाज पर भी पड़ता है। लड़ैई गाँव के पास पहाड़ पर बसी आदिवासी संस्कृति जीरोन खेरा, गाँव वालों के विस्थापन से खुद को खतरे में पड़ा पाती है। जीरोन खेरा के मुखिया की आशंका सच साबित होती है, जब धूरेसाव कहता है – 'पांच पीढ़ी पहले हमरे पुरखों ने बसाया था जीरोना, हमरे पास सबूत है इसका। तुम जबरन उस पर काबिज हो अब ये गांव–गांव से उजड़े हमारे किसान बसेंगे वहां।'[12]

गाँव वाले जमीन और जीवन से विस्थापित होते जा रहे हैं। जीरोन खेरे के राउत जनजाति के लोग भी शोषित और प्रताड़ित हो रहे हैं। अरविन्द पाण्डे बाँध निर्माण का विरोध करता है, क्योंकि इससे पूरे इलाके में प्रगति नहीं विनाश और विस्थापन के ही आसार दिख रहे हैं – 'बहुत से लोग जगह–जगह पर विरोध कर रहे हैं टिहरी बाँध का, नर्मदा घाटी परियोजना का, सरदार सरोवर का। आखिर ऐसी योजनाओं से लाभ क्या जो सदियों में पूरी हों और जब पूरी हों तब हमारी जरूरतें इतनी भी पूरी न हो सकें कि हम एक दशक भी चैन से रह पाएं।'[13]

'डूब' और 'पार' उपन्यासों में जो घटित हुआ वह देशव्यापी छल का हिस्सा है। इनमें चित्रित चिंता समूचे भारत को चिंता है। समकालीन उपन्यासों में आदिवासी जीवन के अनछुए प्रसंगों, संश्लिष्ट अनुभवों और बहुस्तरीय संघर्षों को नए ढंग से देखने की कोशिश की गई है। इस संदर्भ में 'ग्लोबल गांव के देवता' तथाकथित आधुनिक समाज के विकास संबंधी मॉडल को नकारता एक विचारोत्तेजक आख्यान प्रस्तुत करता है।

इस उपन्यास में ग्लोबल गाँव के देवताओं के साथ स्थानीय देवताओं के कारनामों का भी बखान है। एक तरफ भिन्न–भिन्न सभ्यता संस्कृति और भाषाई विविधता को कमजोर कर वैश्विक गाँव के निर्माण का छद्म गढ़ा जा रहा है तो दूसरी ओर उसकी आड़ में आदिवासियों को उनके इतिहास–भूगोल से वंचित किया जा रहा है। वैश्वीकरण आज खुद को मुख्य धारा की संस्कृति के रूप में प्रतिस्थापित कर चुका है और मुख्य धारा की संस्कृति के ठेकेदारों द्वारा आदिम जन जातीय समूहों को मिटाने की कोशिश की जा रही है –

'सामान्य तौर पर इन आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलाईट की आंखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज संपदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता है कि इन पर तो हमारा हक है। इन खनिजों पर जंगलों में घूमते हुए लंगोट पहने असुर–बिरिजिया, उरांव–मुंडा आदिवासी, दलित सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ्त होती है। वे इन कीड़ों, मकोड़ों

से जल्द निजात पाना चाहते हैं'[14]

रणेंद्र इस रचना में व्यवस्था की लूट का शिकार असुर आदिवासी समुदाय की भयावह त्रासदी को तो व्यक्त करते ही हैं, साथ ही अंसारी, ठेकेदार, कन्हैया पाण्डेय आदि पात्रों के माध्यम से आंतरिक उपनिवेशवाद की ओर भी हमारा ध्यान खींचते हैं। इस उपन्यास में बड़े विस्तार के साथ इस विमर्श को उठाया गया है। असुरों के मिटते जाने की कथा के साथ विश्व के अन्य आदिवासी समूहों के खत्म होते जाने के ज्वलंत प्रसंग भी उठाए गए हैं। इस उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए मिथिलेश लिखते हैं – 'ग्लोबल गांव के देवता वैश्वीकरण, मुख्यधारा की संस्कृति के बजाय हाशिये की समानांतर संस्कृति के बीच छिड़े संघर्ष के सवालों को बड़ी शिद्दत से उभारता है।'[15]

विकास किसके लिए किया जा रहा है? मुट्ठी भर पूँजीपतियों के लिए या उस अंतिम व्यक्ति के लिए, जिसके पास न रूतबा है, न ताकत है और न ही पूँजी का अथाह भंडार। सवाल यह भी है कि विकास किस कीमत पर किया जा रहा है? विकास से जुड़े इन तमाम सवालों से जूझती एक अन्य रचना है महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'। समाजशास्त्रीय, मानव शास्त्रीय और पर्यावरणीय शोधपूर्ण समझ से लिखी गई यह रचना झारखंड की यूरेनियम खदानों से निकलने वाले विकिरण, प्रदूषण और उसके बीच आदिवासियों के विस्थापन की पीड़ा को व्यक्त करती है। उपन्यास में विनाश के व्यापक खतरों की ओर संकेत करते हुए माजी लिखती हैं कि – 'परमाणु संयंत्रों में एक हजार मेगावाट बिजली पैदा करने से करीब 27 किलोग्राम रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न होता है और उसे निष्क्रिय होने में एक लाख साल से ज्यादा लग जाते हैं।'[16]

इन उपन्यासों में विकास के पूँजीवादी मॉडल की गंभीर विसंगतियों को पूरी ईमानदारी से विश्लेषित और प्रश्नांकित किया गया है। आदिवासियों के विस्थापन और उसके फलस्वरूप उपजे उनके प्रतिरोध की अनुगूँजें इनमें साफ सुनी जा सकती हैं।

इसी कड़ी में मनीषा कुलश्रेष्ठ द्वारा लिखित 'शिगाफ़' भी एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। आंतकवाद के चलते कश्मीर से विस्थापित हजारों कश्मीरियों की पीड़ा तथा वहाँ जीवन व्यतीत कर रहे लाखों के दर्द, घुटन और छटपटाहट की वास्तविक तस्वीर उजागर करता है यह उपन्यास। विस्थापन का दर्द महज एक सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत से कट जाने का दर्द नहीं है, बल्कि अपनी खुली जड़ें लिए भटकने और कहीं भी न जम पाने की भीषण विवशता है।

वस्तुतः विस्थापन इक्कीसवीं सदी की एक प्रमुख, भयावह और वैश्विक समस्या है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि तमाम कारणों से लोगों को उस स्थान को छोड़ना पड़ता है, जहाँ वो पीढ़ियों से रह रहे हैं, जिससे सामाजिक संरचना और संगठन विघटित हो जाते हैं। विस्थापन के कारण लोगों में सामाजिक और मानसिक तनाव तो उत्पन्न होता ही है, साथ ही उनके मानवाधिकारों के हनन का खतरा भी बढ़ जाता है। विस्थापन सदैव बलात ही होता हो यह आवश्यक नहीं है। उच्च शिक्षा, बेहतर नौकरी, विवाह आदि के चलते स्वेच्छा से भी यह निर्णय लिया जाता है, लेकिन अपनी धरती, परिवेश और संस्कृति के लिए कसक तब भी बरकरार रहती है। विस्थापन के अनेक आयाम समकालीन हिन्दी उपन्यासों का विषय बने हैं। इस आलेख में भारतीय संदर्भ में विस्थापन के तीन मुख्य कारणों, जिनकी वजह से एक साथ, बड़ी संख्या में लोगों को अपने स्थान से उखड़ना पड़ा, पर विचार किया गया है। साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति बड़ी संवेदनशीलता और समझदारी के साथ उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में होती रही है और हो रही है। कुछ प्रमुख उपन्यासों को आधार बनाकर विस्थापन के कारणों तथा व्यक्ति और समाज पर पड़ने वाले उसके दूरगामी प्रभाव को समझने का प्रयास इस आलेख में किया गया है, किंतु यह प्रयास अखिलेश कृत– 'निर्वासन' उपन्यास के उल्लेख के बिना अधूरा ही रह जाएगा। यह उपन्यास पलायन, विस्थापन, बेगानापन

और इस सबसे जुड़े हर पहलू, हर आयाम को अपने भीतर समेटे हुए हैं। मुद्दा चाहे गिरमिटिया मजदूरों का हो, मानवीय रिश्तों का, पर्यावरण का या फिर अमेरिका की चकाचौंध की ओर भागने का - यहाँ सब मौजूद है। इस संदर्भ में काशीनाथ सिंह लिखते हैं - 'निर्वासन को कई चेहरे दिये हैं इक्कीसवीं सदी के विकास के मॉडल ने। एक तो यह कि सूर्यकांत गौरी से प्रेम के कारण अपने मां-बाप के घर से निर्वासित है। निर्वासन का दूसरा चेहरा मानवीय रिश्तों से बाहर के जगत में है, जहाँ पानी नदियों से, हरियाली पेड़-पौधों से, स्वाद अन्न, फलों और सब्जियों से बाहर हो चुके हैं। तीसरा चेहरा इस उपन्यास के केंद्रीय आख्यान में दिखाई पड़ता है। इस आख्यान के केन्द्र में हैं रामअजोर पांडे। वे गोसांईगंज के उसी भगेलू के पोता हैं, जो करीब सवा सौ साल पहले गिरमिटिया मजदूर होकर सूरीनाम गए थे। वह उन्नीसवीं सदी थी और आज इक्कीसवीं सदी है जब उसी सुल्तानपुर-गोसाईगंज के खाते-पीते घर के युवा डॉक्टर-इंजीनियर मुँह बाए अमेरिका के लिए मारा-मारी कर रहे हैं - जैसे न उनकी अपनी धरती हो, न आकाश, न जड़ें।'[17]

शोध आलेख के आरंभ के अनुरूप ही मैं इसका अंत भी आचार्य रामचंद्र शुल्क के उल्लेख के साथ करना चाहूँगी। उन्होंने कहा था, 'साहित्य में युग परिवर्तन' 'जनता की चित्तवृत्ति में बदलाव' के साथ आता है।[18] साहित्य में युग परिवर्तन जीवन में युग परिवर्तन' से जुड़ा होता है। जब 'जीवन में युग परिवर्तन' होता है तो उससे साहित्य के अगले लेखन के मिजाज में ही फर्क नहीं पड़ता है, बल्कि पहले लिखे जा चुके साहित्य के अर्थ ग्रहण में भी फर्क पड़ जाता है। इस फर्क के साथ जो साहित्य अर्थवान बना रहता है, उसे प्रासंगिक माना जाता है। विस्थापन की विभीषिका से जुड़े ये तमाम उपन्यास विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारणों से लोगों के जीवन में आए परिवर्तन का दस्तावेज हैं और इस अर्थ में हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाली महत्वपूर्ण कड़ी भी हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ना. प्र. स. वा., 23वां संस्करण
2. साहित्य और साहित्यकार का दायित्व पृ. 30
3. Premchand.kahani.org
4. hindifisamay.com
5. पहला गिरीमटिया, पृ. 860, भारतीय ज्ञानपीठ, 2011
6. नया ज्ञानोदय, दिसम्बर 2008, पृ. 05
7. झूठा सच, यथपाल, पृ.सं. 249/2, लोकभारती प्रकाशन 1987
8. झूठा-सच, यशपाल, पृ. सं. 218 लोकभारती प्रकाशन 1987
9. तमस, भीष्म साहनी, पृ.सं.-234, राजकमल पेपरबैक्स 1995
10. hindi.indiawaterporal.org
11. वीरेन्द्र जैन 'डूब' पृ. 177, वाणी प्रकाशन, 1991
12. वीरेन्द्र जैन, पार, वाणी, प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 13
13. वीरेन्द्र जैन, पार, वाणी, प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 134
14. रवेन्द्र, ग्लोबल गांव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, चुतर्थ सं. 2013 पृ.93
15. मिथिलेश, वैश्वीकरण का त्रासद आख्यान : ग्लोबल गांव के देवता, आलोचना, दिल्ली, अप्रैल-जून, 2013, पृ. 10
16. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं 2012, पृ. 37
17. अखिलेश, निर्वासन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2014, फ्लैप।
18. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ना.प्र.स.वा, 23वाँ संस्करण।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

समकालीन भारतीय नेपाली कविता और सुधा एम. राई की रचना-दृष्टि

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
6294913900
ptripathi@cus.ac.in

शोध-सारांश :

समकालीन हिंदी कविता के समानांतर भारतीय नेपाली कविता के समकालीन परिदृश्य को देखें तो दोनों कविताओं के कालखंड में काफी एकरूपता है। समकालीन भारतीय नेपाली कविता की पृष्ठभूमि भी 1960 के बाद से ही मानी जाती है। इस दौर में कविता का ध्यान उन विषयों की ओर अधिक गया, जो अब तक कविता की परिधि से बाहर थे। हाशिए के समाज का स्वर कविता में केंद्रीय विषय के रूप में उभरा। भारतीय नेपाली कविता के सशक्त हस्ताक्षर राजेन्द्र भण्डारी, मनप्रसाद सुब्बा, रेमिका थापा, सुधा एम. राई आदि की कविताएँ उक्त संदर्भ में अत्यंत उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख में समकालीन भारतीय नेपाली कविता के परिदृश्य में सुधा एम. राई की रचनात्मक संवेदना को रेखांकित किया गया है।

बीज शब्द :

भारतीय नेपाली कविता, सुधा एम. राई, विमर्श, संवेदना, शिल्प।

शोध-प्रविधि :

प्रस्तुत शोध-आलेख में आगमनात्मक शोध-प्रविधि का प्रयोग किया गया है। विषय-विश्लेषण के क्रम में शोध-पद्धति के रूप में आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग शामिल है। संदर्भ-ग्रंथ सूची में APA शैली का प्रयोग किया गया है।

विषय-विश्लेषण :

भारतीय नेपाली कविता के परिदृश्य में सुधा एम. राई की रचनात्मक-उपस्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है। सुधा एम. राई भारतीय नेपाली कविता की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। मनुष्यता को बचाए रखने की जद्दोजहद उनकी कविताओं का मूल स्वर है। उनकी अधिकांश कविताएँ दु:ख, निराशा, संताप, अवसाद और संघर्ष से होकर गुजरती हैं। प्रतिरोध उनकी कविता का मूल स्वभाव है। सुधा एम. राई की कविताओं में आजादी के पचहत्तर वर्ष के बाद की ऐसी तस्वीरें दर्ज हैं, जहाँ आक्रोश, असुरक्षा, मोहभंग,

संत्रास और बेचैनी के स्वर अधिक मुखर हैं। सुधा एम. राई एक कविता में अपने समय के संदर्भ में लिखती हैं- 'कितना कठिन है/ हाशिये पर धकेल दिए गए व्यक्ति को/ ऊंची उठती मन की दीवार से/ तृष्णा की एड़ी उठाकर ताक-झांक करना/ और / जब दौड़ते हैं निरंकुश बेलगाम घोड़े/ स्वाभिमानी छाती पर/ तो अप्रभावित बन जिंदा रहना। (अनुवाद- सुवास दीपक, कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-दिसंबर, 2021)

समकालीन भारतीय नेपाली कविता के वर्तमान परिदृश्य के संदर्भ में राजेन्द्र भण्डारी की यह टिप्पणी अत्यंत समीचीन है- 'आज की भारतीय नेपाली कविता संक्रमणकाल से गुजर रही है। इसीलिए यह प्रारंभिक कविता से भिन्न है। नए रूप, शिल्प और स्वर उभर रहे हैं। भारतीय गोरखा राजनीति पीड़ित है। उनकी कविता में राजनीतिक रूप से हाशिए पर धकेले जाने का तिक्ततताबोध है, जातीय पहचान का संकटबोध है, असुरक्षाबोध है। यही आज की भारतीय नेपाली कविता का स्वर है। यह नारे की शक्ल में नहीं कला के रूप में है।' (भण्डारी, राजेंद्र, छोटी-छोटी खुशियाँ, पृ. 10) इस दौर की कविताओं में अपने समय एवं समाज की चिंता प्रमुखता से दर्ज हुई है। उक्त संदर्भ में राजेन्द्र भण्डारी की एक कविता के अंश के द्वारा पूरे समाज की मनोवृत्ति को समझा जा सकता है। वे लिखते हैं- 'अपराध के लिए/ अब रात का इंतजार नहीं करना पड़ता है/ एकांत का भी नहीं। / हत्यारों का दावा है / हत्या एक कला है।/ इसे कला का दर्जा दिया जाना चाहिए।' (अनुवादक : सुवास दीपक, 2021)

भारतीय नेपाली कविता के परिदृश्य में सुधा एम. राई की कविताओं का तेवर बहुत ही सशक्त है। सुधा एम. राई की कविताओं में हमारे समय के जरूरी प्रश्न दर्ज हैं। उनकी कविताएँ न सिर्फ इन सवालों से टकराती हैं, बल्कि उनसे मुठभेड़ करती हैं। उनकी कविताओं में भारतीय नेपाली समाज के स्त्री जीवन एवं संघर्ष प्रमुखता से दर्ज हैं। अस्मिता उनकी कविता की मूल चिंता है और अस्तित्व का प्रश्न उनकी कविता की ताकत। कविता के समकालीन परिदृश्य को देखें तो राहुल देव का कथन अत्यंत उल्लेखनीय है - 'समकालीन कविता एक प्रकार से विमर्शों की कविता है। इस दौर की कविता ने नवीन सर्जनात्मकता को तलाशा है। इन कविताओं में भाव की जगह विचार महत्वपूर्ण है।' (देव, राहुल, पृ.27) सुधा एम. राई की कविताएँ सामाजिक-संघर्ष एवं जनसरोकारों से गहरे रूप में संपृक्त हैं। उनकी कविताओं की वैचारिकी में हाशिये के समाज के लिए पर्याप्त स्पेस है। अपनी एक कविता में वह लिखती हैं - 'कितना कठिन है/ मौत की काली गुफा में/ जीवन के रंग पोतना / और मरुभूमि में/ समय के अपने पदचिह्न तराशना।' (अनुवाद- सुवास दीपक, कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-दिसंबर, 2021)

सुधा एम. राई की कविताओं में अस्मिता का प्रश्न बहुत ही संजीदगी के साथ उभरा है। सुधा एम. राई का मानना है कि कविता हमारे अवसाद का विरेचन करते हुए हमें संवेदित करती है। अमानुषिक चित्त में बेचैनी पैदा कर देना ही, कविता की ताकत है। वह अपनी एक कविता में लिखती हैं - 'कविता आग नहीं होती/

कविता बारूद नहीं होती/ यह तो पाठक को सिर्फ संदेश देती है।' (सुधा एम. राई, 2023)

जीवन की चारित्रिक जटिलता हमारे मानस पर इस कदर हावी होती जा रही है कि हम धीरे-धीरे विवेकशून्य होते जा रहे हैं। सबकी उपस्थिति के मध्य सब कुछ अनुपस्थित है। यहाँ भीड़ में भी नितांत अकेलापन है। मिसाल के तौर पर उनकी कविता का एक अंश द्रष्टव्य है - 'भीड़ है / शोर है / अकेले हैं मगर सभी।' (सुधा एम. राई, 2023)

सुधा एम राई का यहाँ 'अकेलापन' गहरे अर्थ-विस्तार के साथ आता है। इस अकेलेपन की परिधि किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं है। इस अकेलेपन में नदियाँ, पहाड़, जंगल, भूख, नींद और स्वप्न सभी शामिल हैं। सुधा की कविताओं में लुप्त हो रहीं भाषाओं और नदियों की गहरी चिंता है। अपनी एक कविता में वह लिखती हैं - 'भाषा अक्सर जो मैंने सुनी है / ओझल है काफी दिनों से /हमारी भाषा की नदी /बह रही है कहाँ /आजकल ?' (सुधा एम. राई, 2023)

सुधा एम राई की कविताओं में चिंता से कहीं अधिक चिंतन है। खत्म होते पहाड़ों, प्रकृति एवं मनुष्य के बीच क्षीण हो रहे साहचर्य भाव की आहट को भी उनकी कविताओं में महसूस किया जा सकता है। हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जहाँ न्याय, सत्य और धर्म खूंटियों पर टाँग दिए गए हैं। झूठ की दीवार और मजबूत होती जा रही है। तमाम निराशा और हताशा भरे समय में उम्मीद को बचाए रखने का एहसास सुधा एम. राई की कविताओं को विशिष्ट बना देता है। उनकी कविताओं में एक ऐसी खूबसूरत दुनिया का स्वप्न है, जिसकी बुनियाद उम्मीद है। यही उम्मीद उनकी कविता की ताकत है।

प्रेम सुधा एम. राई की कविताओं का स्थायी भाव है। उनकी कविताएँ समाज में समता, समानता और बंधुत्व के लिए निरंतर जद्दोजहद करती हैं। उनका मानना है कि नफरत को खत्म करने की पहली और अंतिम कसौटी मोहब्बत ही है। घोर अवसाद और निराशा के समय में भी प्रेम हमारे भीतर समन्वय का भाव पैदा करता है। प्रेम जिजीविषा की उद्दाम परिणति है, वह हमारे जीवन में एक सेतु का कार्य करता है। सुधा अपनी एक कविता में लिखती हैं - 'हमारे बीच यही एक छोटा-सा/ पुल बचा है / प्रेम के आने-जाने का।' (सुधा एम. राई, 2023)

सुधा एम. राई की कविताओं की संवेदना अत्यंत सघन है। कम-से-कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कह देना उनकी कविताओं की विशेषता है। उनकी कविताओं में ज्यादातर बिंब प्रकृति केंद्रित होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रकृति के प्रति उनका गहरा साहचर्य है। अपनी एक कविता में वह लिखती हैं-

'इस जाड़े में आकाश ओढ़कर /हजारों पीड़ाओं की नदियां पार की जा सकती हैं' (सुधा एम. राई, 2023)

सुधा एम. राई की रचना-दृष्टि में मनुष्य का पूरा जीवन समाहित है। उसके सुख और दुख सुधा की कविताओं में समान रूप से सहभागी होते हैं। वह अपनी कविताओं में पितृ सत्तात्मक समाज और उनकी मानसिकता का खुलकर प्रतिरोध करती हैं। अपनी एक कविता में वह लिखती हैं - 'क्या पता मुझे/ तुम्हारे साथ सिर्फ चलने से ही/ इस तरह अचानक अपवाद आ जाएगा' (सुधा एम. राई, 2023)

हिंदी के चर्चित आलोचक ए. अरविंदाक्षन ने अपनी पुस्तक 'समकालीन हिंदी कविता' में कविता की स्वायत्तता एवं स्थापत्य के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है। उनका मंतव्य है - 'सार्थक कविता वादों या आंदोलनों की गिरफ्त में कुंठित नहीं हो सकती। वही कविता की सार्थकता है। इसका कारण यह है कि कविता का आभ्यंतर जगत विस्तृत है। इसलिए विज्ञान की अनिवार्यता के इस युग में भी कविता की आवश्यकता का अनुभव होता है। कविता प्रत्येक अवसर पर नई अर्थवत्ता का परिचय देती है।' (अरविंदाक्षन, ए., 2018) सुधा एम. राई की कविताओं का वितान अत्यंत विस्तृत है। उनकी कविताएँ समय सापेक्ष नई अर्थवत्ता के साथ अपने विषय एवं संरचना को विस्तार देते हुए आगे बढ़ती हैं।

सुधा एम. राई की कविताओं में प्रकृति के प्रति चिंता प्रमुखता से दर्ज हुई है। उनका मानना है कि 'प्रकृति ही मानव जीवन का आधार है। हमें अपनी

आधारशिला को हमेशा मजबूत रखना चाहिए। प्रकृति के बिना मनुष्य की कल्पना हमेशा अधूरी है, यह एक सार्वभौमिक सत्य है।' (राई, सुधा एम., 2022) उनकी एक चर्चित कविता का एक अंश द्रष्टव्य है – 'अहो !/ कहाँ लोप हो गई नदी ? / छोड़कर पीछे /केवल नीला इतिहास' (सुधा एम. राई, 2023)

नदियाँ हमारे जीवन की सहयात्री हैं। आज नदियाँ हमारे जीवन से दूर होती जा रही हैं, इस विसंगति का जिम्मेदार कहीं-न-कहीं हमारा समाज ही है। कामायनी के एक उद्धरण के भावार्थ को देखें तो – 'सभ्यता चाहे जहां तक पहुँच जाए, अंतत: उसे रहना तो प्रकृति राज्य में ही होगा। प्रकृति और सभ्यता में जब कभी द्वंद्व समर होगा, सभ्यता हर हाल में परास्त होगी।' (कामायनी, 1935) प्रकृति के प्रति बढ़ रही संवेदनहीनता के प्रति सुधा एम. राई की कविताएँ काफी सचेत हैं। उनकी कविताओं में सहज भाव के साथ गहरा आक्रोश है। हम कह सकते हैं कि सामाजिक परिवर्तन और मूल्यबोध उनकी कविताओं के केंद्रीय विषय हैं। समाज में पनप रहे अवसाद के प्रति वह आवाज उठाती हैं, ऐसे में वह अपनी कविताओं में ईश्वर को भी कटघरे में खड़ा कर देती हैं। अपनी एक कविता में वह लिखती हैं –

'हर सुबह/ खुलती है जब आँख / मंदिर के बुर्ज की परछाई तले / याद करती हूँ / एक लोलुप दरिद्र पुजारी / ऊंघ रहा है एक कोने में / निकम्मा ईश्वर / अर्धमुदित नयन अंधेरे में।' (सुधा एम. राई, 2023)

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय नेपाली कविता के समकालीन परिदृश्य में सुधा एम. राई की उपस्थिति विशिष्ट है। उनकी कविताओं की जनपक्षधरता हमें अपनी ओर सहज ही आकृष्ट करती है। स्त्री जीवन का मनोविज्ञान और प्रकृति चेतना उनकी कविताओं में मूल प्रश्न के रूप में उभरे हैं। उनकी दृष्टि-प्रखरता एवं काव्य-विवेक ही उनकी रचना को और अधिक विशिष्ट बना देता है। सुधा एम. राई की कविताओं का आभ्यंतर अत्यंत विस्तृत है, इसे एक खाके अथवा दायरे में बाँधकर नहीं देखा जा सकता है। उनकी कविताओं में स्थानीय भाव-प्रवणता बहुत ही संजीदगी के साथ दर्ज हुई है। सुधा की कविताओं के विषय और उनकी प्रासंगिकता आज भी समीचीन है, यही कारण है कि भारतीय नेपाली कविता के परिदृश्य में उनकी उपस्थिति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। ❑

संदर्भ सूची :

भण्डारी, राजेंद्र. (2021). छोटी-छोटी खुशियाँ (अनु. सुवास दीपक). लखनऊ : रश्मि प्रकाशन
अरविंदाक्षन, ए. (2018). समकालीन हिंदी कविता. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन
अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन
चमनलाल. (2006). कविता के मानवीय सरोकार. नई दिल्ली : शिल्पायन प्रकाशन
श्रीवास्तव, जितेंद्र. (2021). कविता का घनत्व. नई दिल्ली : सेतु प्रकाशन
रावत, भगवत. (2006). कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन
वाजपेयी, अशोक (संपा.). (2016). कविता का जनपद. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन
सिंह, नामवर. (2013). कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
सुब्बा, मनप्रसाद. (2013). ऋतु कैनवास पर रेखाएँ. छत्तीसगढ़ : वैभव प्रकाशन
शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2018). चिंतामणि. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

भारत रत्न भूपेन हजारिका और बाबा नागार्जुन के काव्य में सामाजिक चेतना

सुनील साहनी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल-795003
9085561408
sahanisunil818@gmail.com

भूमिका :

भारत एक बहुभाषी देश है, जहाँ बहुत सारी भाषा बोली एवं लिखी जाती हैं। स्वतंत्रता के पहले जब देश में आंदोलन हो रहे थे तो देश के लगभग सभी राज्य के लोगों ने आजादी के आंदोलन में भाग लिया। इसमें केवल क्रांतिकारी ही नहीं, साहित्यकार भी थे। रामचंद्र शुक्ल जी मानते हैं कि साहित्य पर समाज का प्रभाव होता है। एक श्रेष्ठ साहित्यकार अपने समाज से प्रभावित होकर ही रचना करता है, चाहे वह साहित्यकार देश के किसी भी कोने का क्यों न हो। स्वतंत्रता के पश्चात भी जब जनता को वह सब सुख-सुविधा नहीं मिली, जिसकी उसने आशा की थी तो मोह-भंग की इस स्थिति से हताश होकर रचनाकार उन निराशाओं को अपनी रचनाओं में व्यक्त करने लगे। इन्हीं रचनाकारों में से एक हैं, बाबा नागार्जुन, जिन्हें जनकवि भी कहा जाता है। इनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना अधिक गहन रूप में दिखाई देती है। इन्होंने समाज का लगभग प्रत्येक कोना झाँका है। बाबा नागार्जुन ने हर उस बात पर व्यंग्य किया है, जो मानवतावाद के खिलाफ है। ठीक इसी प्रकार असम राज्य के तिनसुकिया जिले में जन्मे भूपेन हजारिका की काव्य रचनाओं में भी वही सब सामाजिक चेतना मिलती है, जो जनकवि नागार्जुन के काव्य में है। भूपेन दा मूलत: गीतकार थे, लेकिन गीतकार के अलावा संगीतकार, गायक, कवि, फिल्म निर्माता और असम की संस्कृति के अच्छे जानकार भी थे। भूपेन दा देश में हो रहे स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित थे और वे राष्ट्र-हित का संदेश अपनी रचनाओं और गीतों के माध्यम से जनता तक पहुँचा रहे थे। नागार्जुन का प्रारंभिक जीवन दरिद्रता में बिता। पिता का देहांत बचपन में हो जाने से 130 रु. पेंशन मिलती थी। उसी में ही पूरे परिवार का गुजारा करना पड़ता था, लेकिन यह स्थिति भूपेन दा के यहाँ नहीं थी। वह एक सुख-सुविधा और संपन्न परिवार से थे। पिता का नाम नीलकांत हजारिका एक शिक्षक थे। दो विपरीत परिस्थितियों में पलने के बावजूद दोनों के विचारों में एकरूपता देखने को मिलती है।

मूल आलेख :

बाबा नागार्जुन और भूपेन हजारिका दोनों के संबंध अलग-अलग भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में होने के बावजूद दोनों के विचारों में एकरूपता देखने को मिलती है। दोनों की साहित्यिक भाषा अलग है। नागार्जुन हिंदी के रचनाकार हैं तो वही भूपेन दा असमिया भाषा के। बाबा नागार्जुन और भूपेन दा दोनों की रचनाओं में विद्रोह भाव देखने को मिलता है। यह विद्रोह समाज के पेटुवा लोगों के प्रति है। उन्होंने राजनेताओं, उद्योगपतियों, पूँजीपतियों आदि के खिलाफ खुलकर प्रहार किया है। दोनों ने ही समाज के निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। बाबा नागार्जुन कहते हैं -

'सपने में भी सच न बोलना, वरना पकड़े जाओगे
भइया लखनऊ दिल्ली पहुँचो-मेवा मिसरी पाओगे
माल मिलेगा-रेत सको यदि गला मजूर किसानों का
हम मर-भूखों से क्या होगा चरण गहो श्रीमानों का।'[1]

इस पंक्तियों में बाबा नागार्जुन उद्योगपतियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि समाज में उद्योगपतियों का ही राज है और ये लोग ही गरीबों का खून चूसते हैं। भूपेन दा कहते हैं -

'मानुहे मानुहक बेसिबो खुजे
(मनुष्य मनुष्य को बेचना चाहता है)
मानुहे मानुहक किनीबो खुजे
(मनुष्य मनुष्य को खरीदना चाहता है)
पुरोनी इतिहास दुहरीले
(पुराना इतिहास को दोहराने से)
भूल जानु नोहोबो कुवा, होमोनिया'।[2]
(क्या भूल नहीं होगा, बोलो मेरे बंधु)

भूपेन दा ने समाज पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि समाज में मानवता खत्म हो गई है। लोग स्वार्थ में डूब गए हैं और आपस में लड़कर मर रहे हैं।

इन दोनों रचनाकारों ने अलग-अलग विधाओं के द्वारा समाज-परिवर्तन तथा शोषितों एवं वंचितों के अधिकारों की सुरक्षा का प्रयास किया। भूपेन दा मूलतः गीतकार थे। गीत-संगीत ही उनके संघर्ष एवं क्रांति का माध्यम बना। भूपेन दा शब्दों और स्वरों के द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बदलाव लाना चाहते थे ताकि देश के लोग बदहाल और तंगहाल जिंदगी से निकल सके। भूपेन दा क्रांतिकारी स्वर में कहते हैं -

'अग्निजुगर फिरिङति मइ
(अग्नियुग की चिंगारी हूँ मैं)
नतुन असम गढ़िम
(नया असम बनाऊँगा)
सर्बहरार सर्वस्व पुनर फिराई आनिम
(सर्वहारा का सर्वस्व पुनः लौटाऊँगा)
नतुन भारत गढ़िम
(नया भारत बनाऊँगा)
नर कंकालर अस्त्र साजि
(नर कंकाल का अस्त्र बनाकर)
शोषणकारीक बधिम
(शोषणकर्ता का वध करूँगा)
अन्तर भेदि मौ बोवाम
(सबके हृदय भेदकर शहद धार बहाऊँगा)
भेदाभेदर प्राचीर भाङि
(भेदभाव की दीवर को तोड़कर)
सम्यर सरग रचिम।'[3]
(समानता का स्वर्ग रचूँगा)

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से भूपेन दा समाज में एक ऐसी क्रांति लाना चाहते हैं, जिस से समाज में ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी का भेद-भाव मिट जाए। ठीक इसी प्रकार की गूँज बाबा नागार्जुन की रचनाओं में भी मिलती है। वह स्वर है -

'झूठ-मूठ सुजलाँ-सुफलाँ
गीत न अब हम गाएँगे
भात-दाल-दरकारी
जब तक नहीं पेटभर पाएँगे
इनको हम दफनाएँगे

गाँव-गाँव पाँतर-पाँतर
भूस्वर्ग बनाएँगे।'[4]

बाबा नागार्जुन की इस कविता में क्रांतिभाव देखने को मिलता है, जिसमें वे कहते हैं कि हम तब तक चुप नहीं बैठेंगे, जब तक हमें मौलिक अधिकार न मिलें। निम्न वर्ग का क्षेत्र विस्तार न हो। इस प्रकार दोनों रचनाकारों में केवल भाषा का ही अंतर है, विचार में नहीं। दोनों ही रचनाकार समाज में फैली आर्थिक विषमता को दूर करना चाहते हैं। राजनेताओं, उद्योगपतियों, पूँजीपतियों आदि के प्रति नागार्जुन में आक्रोश और नफरत का भाव है।

'नफरत की भट्ठी में
तुम्हें गलाने की कोशिश ही
मेरे अन्दर बार-बार ताकत भरती है
प्रति हिंसा ही स्थायी भाव
है अपने ऋषि का।'[5]

भूपेन दा भी इसी प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर अपने को तृतीय श्रेणी का यात्री मानते हैं, जिसमें हजारों मजदूर-किसान यात्रा करते हैं। भूपेन दा ट्रेन के माध्यम से हमें संदेश देते हैं कि हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही रुकना चाहिए।

'प्रथम नहय द्वितीय नहय
(प्रथम नहीं द्वितीय नहीं)
तृतीय श्रेणी जात्री आमि
(तृतीय श्रेणी के यात्री हैं हम)
जीवन-रेलर डाबात आमि
(जीवन के रेल-डिब्बे में हम)
प्रथम नहय द्वितीय नहय
(प्रथम नहीं द्वितीय नहीं)
तृतीय श्रेणी जात्री आमि
(तृतीय श्रेणी के यात्री हैं हम)
माजे माजे
(बीच बीच में)
एइ रेले सिञ्ङरे
(यह रेल चिल्लाता है)
नोपोवार वेदना जुई हे उरे
(नहीं मिलने का वेदना-अग्नि उड़ता)
आमार एइ जुइरे अग्रगामी।'[6]
(अग्रगामी अग्नि-वेदना हमारा)

भूपेन दा क्रांतिकारी कवि थे। वे भविष्य की आहट को पहले ही भाँप लेते हैं। आज उन्हें इस बात का एहसास है कि समाज किस दिशा में जा रहा है। इसलिए कहते हैं -

'आजि ब्रह्मपुत्र ह'ल बह्निमान
(आज ब्रह्मपुत्र हुआ बह्निमान)

मनर दिगंतत धुंआ उरे
(मन-हृदय में धुआँ उड़ता है)
अकाखत पपीया तरा घूमे
(आकाश में घूमता है धूमकेतु)
पदे-पदे करे काक अपमान
(पग-पग में करता है किसका अपमान)
आजि ब्रह्मपुत्र ह'ल बह्निमान।'[7]
आज ब्रह्मपुत्र हुआ बह्निमान)

वर्ग-संघर्ष का जो भाव भूपेन दा के काव्य में मिलता है, वही संघर्ष नागार्जुन के काव्य में भी देखने को मिलता है। नागार्जुन संवेदनशील व्यक्ति थे। आजादी के बाद जब मोह-भंग की स्थिति लोगों के सामने आई तो नागार्जुन लोगों को चेतावनी देते हुए कहते हैं -

'होशियार कुछ देर नहीं है
लाल सवेरा आने में
लाल भवानी प्रकट हुई हैं
सुना कि तेलंगाने में।'[8]

बाबा नागार्जुन और भूपेन दा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दोनों ही संवेदनशील कवि हैं। दोनों ही रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में निम्न वर्ग को नायक बनाया है। नागार्जुन अपनी 'माँजो और माँजो' शीर्षक कविता में समकालीन कलाकारों और रचनाकर्मियों पर व्यंग्य करते हैं। नागार्जुन रचना के विषय में बदलाव लाने के लिए रचनाकारों से कहते हैं -

'माँजो और माँजो, माँजते जाओं
लय करो ठीक, फिर गुनगुनाओं
मत करो परवाह - क्या है कहना
कैसे कहोगे, इसी पर ध्यान रहे ...।'[9]

ठीक इसी प्रकार से भूपेन दा भी अपने समय के रचनाकार मित्रों से आग्रह करते हैं -

'काहिनी एटा लिखा सबरे बिसये
(एक कहानी लिखो सब के लिए)
कोइसिलो बहू बार
(कहा था बहुत-बार)
बन्धु लेखक, तुमि नुखुनिला
(बन्धु लेखक, तुमने अनसुना कर दिया)
देखुवा मात्रो अहंकार
(दिखाया केवल अहंकार)
तेतिया तुमि लिखी ग 'ला
(तब तो तुम लिखते गए)
मिसा कथा मिसा नायकर
(झूठे नायक की झूठी कहानी)
जि काहिनी तुमि निलिखिला
(जो कहानी तुमने नहीं लिखी)
ताक इतिहासर समये लिखिले।'[10]
(उसे इतिहास के समय ने लिखा)

भूपेन दा अपनी रचनाओं में किसी राजा-महाराजा को नायक नहीं बनाते और न ही उन्हें कोई राजा-रानी की कहानी में दिलचस्पी है। वे तो अपनी रचनाओं में किसी दलित या निम्न वर्ग को स्थान देते हैं। वे आम आदमी की मुक्ति-कथा लिखते हैं।

'धर्म-व्यवस्था ठाई नाई तात
(धर्म-व्यवस्था का जगह नहीं वहाँ)
जातिर अहंकार लय पाय तात.....
(जाति अहंकार कम होता है वहाँ)
हरिजन, पहाड़ी, हिन्दू-मुस्लिम
(हरिजन, पहाड़ी, हिन्दू-मुस्लिम)
ब 'ड़ो, कोच, चुटिया, कछारी, अहोमर
(बोड़ो, कोच, चुटिया, कछारी, आहोमर)
अंतर भेदी मौ बुवाम
(अंतर भेदकर शहद बहाऊँगा)
समानर सरग रसिम
(समानता का सर्ग बनाऊँगा)
नतुन असम गढ़िम
(नया असम बनाऊँगा)
नतुन असम गढ़िम
(नया असम बनाऊँगा)।'[11]

भूपेन दा की तरह नागार्जुन भी आम-जनता के दु:ख-दर्द और पीड़ा से अपनी रचनाओं को सजाते हैं एवं उनके दैनिक जीवन के संघर्ष में अपनी भागीदारी से उसे ठोस और पुख्ता बनाते हैं। बाबा नागार्जुन ने अपनी कविता 'देखना ओ गंगा मइया' में मल्लाहों के बच्चों की तुलना भगवान विष्णु से किया हैं -

'कानपुर-बम्बई की अपनी कमाई में से
डाल गये हैं श्रद्धालु गंगा मइया के नाम
पुल पर से गुजर चुकी है ट्रेन
नीचे प्रवहमान उथली-छिछली धार में
फुर्ती से खोज रहे पैसे
मल्लाहों ने नंग-धड़ग छोकरे
दो-दो पैर
हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकती रेट की ले रहे टोह
बहुधा-अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि।' [12]

भूपेन दा हमेशा राष्ट्रीय एकता पर बल देते थे। वे हमेशा समाज के लोगों को एकजुट होकर रहने का संदेश देते हैं।

'असमी आइरे लालिता-पालिता
(असम की भूमि में पला हूँ)
म'ई तुलनीय जी
(मैं हूँ पालिता)
असमियार सम्मान सदाये राखिम
(असमिया का सम्मान हमेशा रखूँगा)
आरूनु कउ म'ई कि।' [13]
(और क्या कहूँ मैं)

भूपेन दा की तरह बाबा नागार्जुन ने भी राष्ट्र-प्रेम की भावना स्थापित करना चाहा हैं। वे मानते हैं कि क्षेत्रीयता राष्ट्रीयता का बाधक तत्व है, इसलिए वे उसकी निंदा करते हैं।

'स्थापित नहीं होगी क्या
लाला लाजपतराय की प्रतिमा मद्रास में ?
दिखाई नहीं पड़ेंगे लखनऊ में सत्यमूर्ति
सुभाष एवं जे.ए. सेन गुप्त क्या सीमित रहेंगे ?
भवानीपुर और शाम बाजार की दुकानों तक
तिलक नहीं निकलेंगे पूजा के बाहर ?।' [14]

भूपेन दा ने सामयिक घटनाओं और प्रसंगों को अपनी काव्य में स्थान दिया है। भारत-चीन आक्रमण हो या बांग्लादेश का स्वतंत्रता-संग्राम, इन सारे सामाजिक संदर्भों पर गीत लिखे हैं। इनकी रचनाएँ कालजयी हैं। राजनीतिक विषयों पर सबसे ज्यादा गीत भूपेन दा ने असम के जातीय एवं सांस्कृतिक आंदोलन पर लिखे हैं। 'असमर गात आजि गणतांत्रिक तेजर कलंक, आमि असमिया नहओ दुखिया, आरक्षी बहिनीरे, कुशासन रक्षा किसु दिनहे करिबे पारि, मानुह मानुहर बाबे, रिम जिम रिम जिम बरखुने।' भूपेन दा की तरह नागार्जुन ने भी अपने देश की शासन व्यवस्था पर तीखा-वार किया है।

'बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बंदर बापू के!
ज्ञानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बंदर बापू के!
जल-थल-गगन-बिहारी निकले तीनों बंदर बापू के
लीला के गिरधारी निकले तीनों बंदर बापू के!' [15]

दोनों ही साहित्यकार शोषण वर्ग के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं और जहाँ कहीं भी देखते कि निम्न वर्ग के प्रति कोई अन्याय या अत्याचार हो रहा है तो उस पर टूट पड़ते हैं -

'भाङ भाङ शील भाङ
(तोड़ पत्थर तोड़)
भाङ! भाङ! भाङ! भाङटा !!!
(तोड़! तोड़! तोड़! तोड़ने वाला!!!)
शील भाङ
(पत्थर तोड़)
तोर घामभरा नडठा पीठी
(पसीना से भरा तुम्हारा नंगा पीठ)
तपत र'दत जाय फाटि

(तप्त धूप में जाता है फट)
कोमल भरीर तलुवा जले
(नाजुक पैर का तलवा जलता है)
तपत रंङा रङा माटि
(तप्त लाल लाल मिट्टी)
तथापि तोर नाई गुण गावता
(फिर भी कोई नहीं गाता तुम्हारा गुण)
भाङ! भाङ! भाङ! भाडटा !!!
(तोड़! तोड़! तोड़! तोड़ने वाला!!!)
शील भाङ।'[16]
(पत्थर तोड़)

दोनों ने ही जनता को मोह-भंग तथा स्वप्न-भंग से लड़ने के लिए अपनी रचनाओं से प्रेरित किया। भूपेन दा ने तो जनता को अपने अधिकारों के लिए मर-मिटने की प्रेरणा दी है।

'लुइतपरीया डेका बंधु
(लुइत पार के युवक बंधु)
तुमार तुलना नाई
(तुम्हारी तुलना नहीं)
जियाई थकार जुगते नामिचा
(जिंदा रहने वाले युग में आए हो तुम)
मृत्यृशपत खाई।'[17]
(मृत्यृ का शपथ लेकर)
'जय जय असमीर नतुन पुरुष
(जय हो असम का नूतन पुरुष)
जय जय शहीद वाहिनी
(जय हो शहीदों का दल)
पंचाशीत लिखिलु
(पच्चासी में लिखा है)
त्याग तुमार
(तुम्हारा त्याग)
मृत्यु काहिनी।'[18]
(मृत्यु की कहानी)

बाबा नागार्जुन के यहाँ भी ऐसा ही आत्मविश्वास देखने को मिलता है।

'नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें
भीनी-भीनी खुशबू वाले
रंग-बिरंगे
यह जो इतने फूल खिले हैं
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने नहलाया था।'[19]

निष्कर्ष :

अत: यह स्पष्ट है कि भारत रत्न भूपेन हजारिका और बाबा नागार्जुन भिन्न प्रांत, भिन्न भाषा के सर्जक होने के बावजूद संवेदना की दृष्टि से एक हैं। दोनों ही अपने-

अपने क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार हैं। दोनों में केवल भाषा का ही अंतर है। एक असमिया भाषा के महान रचनाकार हैं तो दूसरा हिंदी के। दोनों का मुख्य विषय जनता और जनता का दु:ख-दर्द रहा है। दोनों ने शोषित वर्ग की पीड़ा को रचना में अभिव्यक्त किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि क्रांति भावना, निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषणकर्ता के प्रति आक्रोश की भावना, जनता में आत्मविश्वास पैदा करना, अपने अधिकार के प्रति लड़ना, राष्ट्रीयता की भावना, प्रशासन के कूटनीतियों के प्रति आवाज उठाना, समाज प्रेम, रामराज्य स्थापित करना, विद्रोह भाव आदि सब सामाजिक चेतना भूपेन दा और नागार्जुन के काव्य में पाए जाते हैं। ❑

संदर्भ-सूची :

1. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 1, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2003, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 106
2. सूर्य हजारिका, डॉ. भूपेन हजारिका गीत समग्र, लावण्य प्रकाशन, 2010,पृष्ठ सं. 393
3. वही, पृष्ठ सं. 41
4. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 1, राजकमल प्रकाशन,पहला संस्करण 2003, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 100
5. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 2, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2003, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 232
6. सूर्य हजारिका, डॉ. भूपेन हजारिका गीत समग्र, लावण्य प्रकाशन, 2010,पृष्ठ सं. 327
7. वही, पृष्ठ सं. 74
8. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 1, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2003, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 100
9. वही, पृष्ठ सं. 137
10 सूर्य हजारिका, डॉ. भूपेन हजारिका गीत समग्र, लावण्य प्रकाशन, 2010, पृष्ठ सं. 153
11. वही, पृष्ठ सं. 41
12. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 1, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2003, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 256
13. सूर्य हजारिका, डॉ. भूपेन हजारिका गीत समग्र, लावण्य प्रकाशन, 2010, पृष्ठ सं. 56
14. गंगा सहाय प्रेमी, नागार्जुन एवं उनकी प्रतिनिधि कविताएं, हरीश प्रकाशन, पृष्ठ सं. 11
15. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 2, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2003,नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 44
16. सूर्य हजारिका ,डॉ भूपेन हजारिका गीत समग्र, लावनीय प्रकाशन,2010, पृष्ठ सं. 359
17. वही, पृष्ठ सं. 451.
18. वही, पृष्ठ सं. 213.
19. शोभकान्त, नागार्जुन रचनावली 1, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2003, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 334

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

दलित स्त्री जीवन का यथार्थ दस्तावेज : हिंदी दलित कहानी

अनामिका

शोधार्थी, हिंदी विभाग
पांडिचेरी विश्वविद्यालय
कालापेट, पुदुचेरी-605014
8084278143
anamikachaudharyhcu@gmail.com

शोध सार :

'दलित वह है, जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू कर दिया गया है, जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।'[1] कँवल भारती द्वारा दी गई यह परिभाषा दलितों के सामजिक, आर्थिक, राजनीतिक इतिहास को काफी सशक्त रूप से व्यक्त करती है। हमारे देश में दलितों की स्थिति अच्छी नहीं रही है। विशेषकर दलित महिलाओं की। जाति, लिंग तथा वर्ग के आधार पर इनका शोषण होता रहा है। जयप्रकाश कर्दम ने अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य एवं चिंतन : समकालीन परिदृश्य' में दलित स्त्रियों के संदर्भ में कहा है, *'दलित स्त्री दोहरे, तिहरे शोषण की शिकार है, क्योंकि वह केवल स्त्री होने के आधार पर शोषित नहीं है, अपितु स्त्री होने के साथ-साथ वह जातीय आधार पर भी अपमान, उपेक्षा और उत्पीड़न की शिकार है। यानी आधी दुनिया का हिस्सा होकर उस दुनिया में भी वह उतनी ही उपेक्षित है, जितनी शेष दुनिया में होती है।'*[2]

बीज शब्द :

दलित, स्त्री, शोषण, उत्पीड़न, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता आदि।

मूल आलेख :

भारतीय समाज का आधार वर्ण व्यवस्था रहा है। हिंदू वर्ण व्यवस्था के अनुसार चार वर्णों का निर्धारण किया गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। ऋग्वेद में वर्ण के निर्धारण का आधार कर्म था, बाद में इसका आधार जन्म हो गया। इस वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ पायदान पर रखा गया। शूद्रों को अछूत, अस्पृश्य, नीच आदि समझा जाता था। वे सभी प्रकार के अत्याचारों, अनीतियों एवं शोषण को सहते हुए जीने के

लिए अभिशप्त थे। सामजिक वर्ण व्यवस्था एव भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण दलित समुदाय के लोग आर्थिक, शैक्षिक रूप से काफी पिछड़ गए। परिणाम यह हुआ कि समाज के अन्य वर्णों द्वारा उनका हरसंभव शोषण होने लगा। ऐसा नहीं था कि दलित शिक्षा प्राप्त नहीं करना चाहते थे, लेकिन यदि कोई शिक्षा प्राप्त करने की कोशिश करता तो उसे कठोर दंड दिया जाता था। शोषण की पराकाष्ठा ही थी कि यदि कोई अक्षर पढ़े तो उसकी जीभ काट दी जाती थी। यदि कोई वेद मंत्र सुन ले तो उसके कानों में गरम शीशा डाल दिया जाता था। हिंदू धर्म में मान्यता है कि मनुष्य की उत्पत्ति ब्रह्मा जी से हुई है। सभी मनुष्य उस ब्रह्मा की संतान हैं, किंतु उसी संतान को अपने पिता की पूजा करने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। इनका मंदिरों में प्रवेश वर्जित था। इनके लिए अलग नियम बनाए गए तथा विशेष दंड-नीति निर्धारित की गई।

आधुनिक युग में शूद्रों के लिए दलित शब्द का प्रयोग किया जाता है। 1970 के दशक में जब महाराष्ट्र में दलित पैंथर आंदोलन की शुरुआत हुई, तभी से 'दलित' शब्द प्रचलन में आया। संविधान में दलितों के लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया गया है। दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'दल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'तोड़ना', 'हिस्से करना', 'कुचलना'। दलित शब्द का अर्थ है - जिसका दमन और दलन हुआ है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ आदि। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित को परिभाषित करते हुए कहा है - 'दलित वर्ग स्वयं में ऐसे लोगों का समूह है, जो मुसलामानों से भिन्न एवं अलग है। यद्यपि उन्हें हिंदू कहा जाता है, किंतु वे हिंदू जाति का किसी भी अर्थ में अविभाज्य अंग नहीं हैं। वे न केवल उनसे अलग रहते हैं, अपितु उन्हें जो दर्जा प्राप्त है, वह भी भारत में अन्य जातियों के दर्जे से बिल्कुल भिन्न है। भारत में अनेक अन्य जातियाँ अत्यंत दयनीय एवं गुलामी की स्थिति में रह रही हैं, किंतु दलित वर्गों की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। अंतर केवल इतना है कि कृषि-कर्मियों और नौकरी के साथ अस्पृश्यता का बर्ताव नहीं किया जाता, जबकि दलित वर्ग अस्पृश्यता के अभिशाप का शिकार है। उससे भी खराब बात यह है कि अस्पृश्यता के कारण उन पर लादी गई गुलामी से न केवल सार्वजनिक जीवन में उनके साथ भेद-भाव बरता जाता है, बल्कि उन्हें सामान अवसरों और मानवीय जीवन के लिए आवश्यक नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है।' डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने दलित को परिभाषित करते हुए कहा है - 'दलित वह है, जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।' डॉ. कुसुमलता मेघवाल ने दलित की परिभाषा देते हुए लिखा है -'दलित का शाब्दिक अर्थ है कुचला हुआ। अत: दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भों में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय, जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो।

दलित शब्द व्यापक रूप से पीड़ित के अर्थ में आता है, पर दलित वर्ग का प्रयोग हिंदू समाज व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप से शूद्र माने जाने वाले वर्णों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे सभी जातियाँ सम्मिलित हैं, जो जातिगत सोपान क्रम में निम्न स्तर पर हैं और जिन्हें सदियों से दबा कर रखा गया है। भारत में दलितों की स्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिए अनेक समाज-सुधारकों ने इनकी स्थिति सुधारने के लिए अनेक आंदोलन किये। इन समाज-सुधारकों में सबसे अग्रणी थे फूले दंपति और डॉ. अंबेडकर। फूले दंपत्ति ने जहाँ दलितों के उत्थान के लिए सांस्कृतिक आंदोलन चलाए, वहीं बाबा साहब अंबेडकर ने उसे राजनीतिक स्वरूप प्रदान कर दलितों को संवैधानिक अधिकार प्रदान कर उन्हें मनुष्य के रूप में जीने का अवसर प्रदान किया।

हमारे देश में कभी धर्म के नाम पर तो कभी जाति के आधार पर तो कभी लिंग के आधार पर स्त्रियों का शोषण होता रहा है। इतिहास में यदि स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि पर्दा प्रथा, सती प्रथा, देवदासी प्रथा आदि जैसी कुत्सित सामजिक प्रथाओं के कारण स्त्रियों का हर संभव शोषण हुआ है। भारतीय संविधान ने भले ही सभी को समान नागरिक का अधिकार दिया हो, किंतु भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक समाज होने के कारण स्त्रियों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार अपनाता है। स्त्री जीवन के बारे में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कहा है – *'भरतीय समाज-व्यवस्था में स्त्री दलितों में भी दलित है। इस व्यवस्था ने न केवल उसकी अस्मिता को नकारा है, बल्कि उसे हमेशा दूसरा दर्जा दिया है। उसका प्रवेश ज्ञान क्षेत्र से लेकर धर्म क्षेत्र तक वर्जित था। हजारों वर्षों से वह दासत्वपूर्ण जीवन जी रही थी।'*[3]

भारतीय समाज में दलित स्त्रियों की स्थिति तो और अधिक दयनीय है। इनका तिहरा शोषण किया जाता है। एक तो जाति के आधार पर इनका शोषण होता है, दूसरा लिंग के आधार पर और तीसरा वर्ग के आधार पर। समाज द्वारा उन्हें शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। यौन-उत्पीड़न, छेड़खानी, बलात्कार, घरेलू हिंसा जैसी घटनाएँ उनके साथ निरंतर घटती रहती हैं। वरिष्ठ साहित्यकार रमणिका गुप्ता के अनुसार 'सवर्ण और दलित स्त्रियों की कुछ समस्याएँ जरूर साझी हैं। जैसे परिवार द्वारा अवहेलना या उस पर बरती जाने वाली हिंसा या यौन-शोषण, लेकिन दलित स्त्री होने के नाते उनकी समस्याएँ अलग हो जाती हैं और वे स्त्री खेमे से हटकर जाति खेमे में मान ली जाती है।' प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन ने कहा है – *'हमारे देश में सर्वाधिक अवहेलना नारी और शूद्र की हुई है। मुझे नहीं लगता कि अन्याय का कोई ऐसा रूप हो, जिसके शिकार ये दोनों न हुए हों।'*[4]

दलित महिलाएँ अपने परिवार तथा समाज में अनेक प्रकार के शोषण का शिकार होती हैं, क्योंकि वे दलित स्त्री हैं। दलित स्त्री सामाजिक व्यवस्था के क्रम में सबसे अंतिम पायदान पर खड़ी तिहरे शोषण की पीड़ा को झेलती है, बावजूद इसके वह पूरे साहित्य में उपेक्षित दिखाई देती है। समाज में संतुलन स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि समाज के शोषित-पीड़ित वर्गों की समस्याओं का समाधान कर उन्हें मुख्य धारा में शामिल किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि साहित्य में भी उन्हें उचित स्थान मिले, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि साहित्य में भी दलित स्त्रियों को उपेक्षित रखा गया है। कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, लेकिन कितनी बड़ी विडंबना है कि इस दर्पण में दलित स्त्रियों की समस्या का कोई प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता। यह भी एक प्रमुख कारण है कि दलित स्त्रियों की समस्या बौद्धिक जगत तक नहीं पहुँच पाई है।

फूले दंपति एवं अंबेडकर इस बात से वाकिफ थे कि दलितों तथा स्त्रियों की स्थिति में सुधार तभी आएगा, जब वे शिक्षित होंगी। अत: उन्होंने दलित पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था की। ज्योतिबा फूले ने सन 1851 में पूना में दलितों के लिए स्कूल बनवाया। सन 1857 में इन्होनें लड़कियों के लिए भी एक विद्यालय की स्थापना की। जब दलित

धीरे-धीरे शिक्षित होने लगे, तब वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए। उनमें आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान के साथ जीने की भावना का विकास हुआ। वर्तमान समय में ऐसे अनेक दलित साहित्यकार हैं, जो साहित्य की अनेक विधाओं के माध्यम से दलित समाज की स्थिति का यथार्थ चित्रण कर रहे हैं। दलित साहित्य में कहानियों का विशेष महत्व है। दलित कहानियों में स्त्रियों के मुद्दे को भी प्रमुखता से उठाया गया है। दलित स्त्रियों के साथ हुए अन्याय, अत्याचार, शोषण एवं उनके द्वारा किये गए विद्रोह का यथार्थ चित्रण हुआ है।

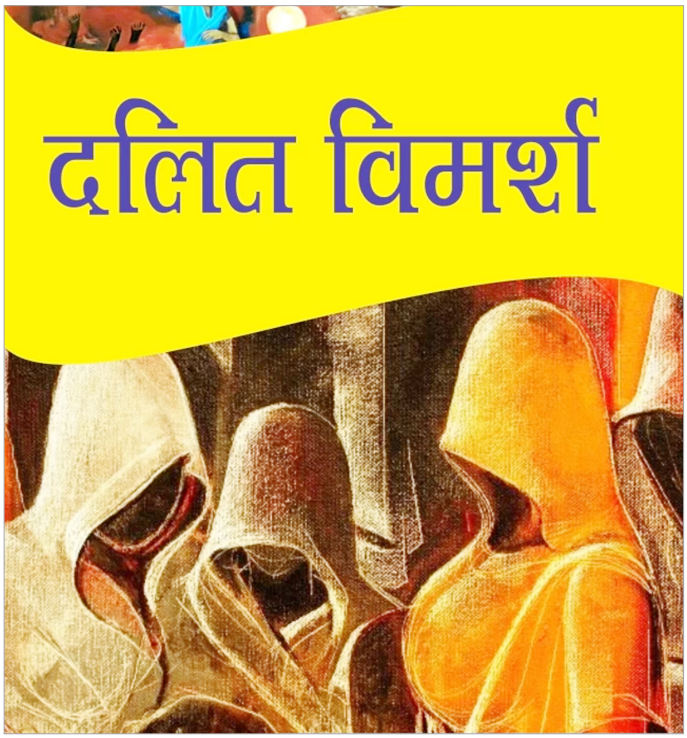

रजत रानी मीनू की कहानी 'सुनीता' एक प्रेरणास्पद कहानी है। सुनीता का जन्म एक रूढ़िवादी दलित परिवार में हुआ था। इस कारण उसके पिता उसे पढ़ाना नहीं चाहते थे। वे सुनीता से कहते हैं - *'ए सुनीता कान खोल के सुन ले, हमें तुझे कोई कलट्टर-वलट्टर तो बनाना नहीं है, और न ही तू बन पाएगी। फिर तेरी पढ़ाई लल्ला से बढ़कर तो है नहीं, वैसे भी तू पराये घर चली जाएगी तो चिट्ठी-पत्री लायक थोड़ी-सी पढ़-लिख जा। वंश को और इस घर को तो लल्ला ही चलाएगा।*[5] एक तरफ सुनीता को अपनी पढ़ाई के लिए परिवार में संघर्ष करना पड़ रहा था तो दूसरी तरफ समाज के सवर्ण लोगों के व्यंग्य का भी सामना करना पड़ रहा था। वे कहते थे, *'चमारी पढ़-लिख कर अफसर बनेगी। गाँव में बड़ी जाति के लोग तो लड़कियों को पढ़ाना जरूरी नहीं समझते, पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।'*[6] इन सब व्यवधानों के बावजूद सुनीता ने हिम्मत नहीं हारी और एम.ए. एल.एल.बी. करने के पश्चात सांसद बन गई। अधिकांश दलित परिवार आर्थिक रूप से बहुत कमजोर होता है, इसलिए जीविकोपार्जन के लिए परिवार की महिलाएँ भी मजदूरी करने के लिए विवश होती हैं। जब ये स्त्रियाँ काम करने के लिए जाती हैं तो कार्यस्थल पर भी इनका शोषण होता है। दलित मजदूर स्त्रियों की इस स्थिति का यथार्थ चित्रण कावेरी ने अपनी कहानी 'सुमंगली' में किया है। कहानी की मुख्य पात्र सुगिया जहाँ काम करती है, वहाँ का ठेकेदार सुगिया का बलात्कार करता है। सुगिया का जब बलात्कार होता है, तब वह मात्र बारह वर्ष की थी। सुगिया ठेकेदार का विरोध नहीं कर पाती है, क्योंकि पापी पेट का सवाल था। सुगिया को सांत्वना देते हुए दुखना की माँ ने कहा - *'चुप रह बेटी चुप रह। यह तो एक न एक दिन होना ही था। हम गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएं तैयार होती हैं और उसके पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है।'*[7]

दलित स्त्रियों का शोषण न केवल उनके समाज में, बल्कि परिवार में भी व्यापक स्तर पर होता है। घरेलू हिंसा को केंद्र में रखकर श्यौराज सिंह बेचैन ने 'अस्थियों के अक्षर' कहानी लिखी है। कहानी का पात्र सौराज ने किताब खरीदने के लिए अपने चाचा

डालचंद की जेब से एक रुपये चुरा लिया। डालचंद को शक हुआ कि वो रूपया सौराज की माँ ने चुराए हैं। तब भिखारीलाल भाई डालचंद के साथ मिलकर सिर्फ शक के आधार पर सौराज की माँ को अमानवीय तरीके से मारता है। शरीर का ऐसा कोई अंग नहीं था, जहाँ उसे गहरी चोट न लगी हो।

हमारे देश में लड़कियों की शैक्षिक स्थिति अच्छी नहीं है। दलित लड़कियों की स्थिति तो और अधिक खराब है। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि वे शिक्षित हो भी जाती हैं तो नौकरी करने में उन्हें पुन: कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। दलित लड़कियों की इन्हीं समस्याओं को सूरजपाल चौहान ने अपनी कहानी 'बदबू' में दिखाया है। इन कहानियों के अतिरिक्त और भी ऐसी अनेक दलित कहानियाँ हैं, जिनमें दलित स्त्री की यथास्थिति का चित्रण किया गया है। जैसे 'जंगल की रानी', 'यह अंत नहीं', 'मंगली', 'अंतिम बयान', 'सांग', 'क्षितिज' 'प्रश्न-चिन्ह' आदि।

निष्कर्ष :

भले ही आज दलित स्त्रियों के सम्मान तथा उनकी अस्मिता की रक्षा के लिए कई कानून बना दिए गए हैं, बावजूद इसके उनके साथ हिंसक घटनाएँ लगातार घट रही हैं। उत्तर प्रदेश के हाथरस में दलित बच्ची के साथ हुइ घटना इसका ज्वलंत प्रमाण है। अक्टूबर, 2020 को बी.बी.सी. हिंदी की एक न्यूज के अनुसार 2006 में चार राज्यों के 500 दलित महिलाओं पर एक अध्ययन किया गया और यह पता लगाने की कोशिश की गई कि उन्हें किस तरह की हिंसा का सामना करना पड़ा। रिपोर्ट के मुताबिक 54 फीसदी महिलाओं को शारीरिक हिंसा, 46 फीसदी को यौन उत्पीड़न, 43 फीसदी को घरेलू हिंसा, 23 फीसदी को बलात्कार तथा 62 फीसदी महिलाओं को मौखिक उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा था।

सेंटर फॉर दलित राइट्स समूह ने 2004 से 2013 के बीच 16 जिलों में दलित लड़किओं तथा महिलाओं के साथ होने वाली यौन हिंसा के 100 मामलों का अध्ययन किया, जिसमें से यह तथ्य निकल कर सामने आया कि 46 प्रतिशत पीड़िता 18 साल से कम उम्र की थीं और 85 प्रतिशत 30 साल से कम उम्र की थीं। रिपोर्ट के मुताबिक हिंसा की शिकार हुई ये महिलाएँ 36 अलग-अलग जातियों से संबंधित थीं।

हम लाख दावे कर लें, लेकिन सच्चाई यही है कि दलित स्त्रियों के साथ आज भी नाना प्रकार की हिंसा हो रही है और कहीं-न-कहीं समाज के प्रबुद्ध तथा सक्षम वर्ग इनके प्रति उदासीन हैं, लेकिन दलित रचनाकार दलित स्त्रियों के खिलाफ होने वाली हिंसा को अपनी रचनाओं तथा विचारों के माध्यम से समाज तक लाने का निरंतर प्रयास कर रहे हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. दलित साहित्य में अभिव्यक्त समस्याएँ, डॉ. अमरा सूर्य चंद्र राव, शुभम प्रकाशन, पृष्ठ सं. 13, 2019
2. दलित साहित्य एवं चिंतन : समकालीन परिदृश्य, जयप्रकाश कर्दम, अमन प्रकाशन, पृष्ठ सं. 113, 2018
3. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृष्ठ सं. 13, 2019
4. साहित्य : परम्परा और विन्यास, डॉ. एन. सिंह, वागदेवी प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ सं. 67, 2011
5. हिंदी दलित साहित्य एक मूल्यांकन, डॉ. प्रमोद कोपव्रत, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 190, 2016
6. दलित चिंतन की दिशाएँ, सुरेश चंद्र, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ सं. 130, 2013
7. दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियां, संपादक डॉ. कुसुम वियोगी, पुष्पांजलि प्रकाशन, पृष्ठ सं. 64, 2022

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

मुक्तिबोध का अंतर्द्वंद्व : जैनेंद्र कुमार के पुरस्कृत उपन्यास 'मुक्तिबोध' के संदर्भ में

अर्पणा कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर
असम-784028
8541815716
arpanachauhan16@gmail.com

शोध सार :

हिंदी साहित्य को समृद्ध कर शीर्ष पर पहुँचाने वाले उपन्यास सम्राट 'प्रेमचंद' को उनके योगदान के लिए आज से लेकर अनंत काल तक सराहा जाएगा। इसमें कोई दो राय नहीं है, किंतु बाद के उपन्यासकारों में जैनेंद्र ने साहित्य की चल रही परिपाटी से अलग या यूँ कहें लीक से हटकर काम करने की कोशिश की। जैनेंद्र की यह पहल हिंदी लेखन में एक नई खिड़की खोलने जैसा था। हम जानते हैं कि जैनेंद्र प्रेमचंद के काफी करीबी और निकटस्थ लेखकों में से थे, परंतु उन्होंने अपने लेखन को उनके प्रभाव से मुक्त रख कर हिंदी गद्य विधा को नई दिशा प्रदान की। आगे चलकर जैनेंद्र एक मनोविश्लेषक और व्यक्तिवादी लेखक के रूप में खुद को प्रतिष्ठित करते हैं। जिस समय लेखक समाज के विभिन्न समस्याओं को लेकर व्यक्ति को प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे, उस वक्त जैनेंद्र सिर्फ व्यक्ति केंद्रित लेखन कर रहे थे। इनके यहाँ समाज पृष्ठभूमि का काम करता है और व्यक्ति किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व न कर केवल व्यक्ति होता है। अब तक लिखे गए 12 उपन्यासों के केंद्र में लेखक ने व्यक्ति को ही केंद्र में रखकर लिखा है। ऐसी ही इनकी एक चर्चित रचना है 'मुक्तिबोध'। इस रचना के लिए इन्हें 1967 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

बीज शब्द :

दुविधा, चेतन, अचेतन, प्रतिनिधि, कैनवास, कोलाहल, पिण्ड, अंतर्द्वंद्व, नि:शंक, आत्मग्लानि आदि।

मूल आलेख :

जैनेंद्र कुमार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में अग्रणी लेखक हैं। मन के चेतन और अचेतन स्थिति का विश्लेषण करना उनके उपन्यासों का मुख्य विषय रहा है। व्यक्ति को किसी भी वर्ग का

सहाय पति, प्रेमी, पिता होने के साथ-साथ एक नेता भी हैं। समाज और परिवार के बीच फँसे सहाय को अपने राजनीतिक कर्तव्यों से विमुख होकर नैतिक मूल्यों से समझौता करना बिल्कुल भी स्वीकार नहीं है। राजनीति एक ऐसी शक्ति है, जो समाज को न सिर्फ बाहर से, बल्कि अंदर से भी प्रभावित करती है। राजनीति कहने से यह आशय स्पष्ट होता है कि तंत्र के अंतर्गत समाज में सुरक्षा और शांति कायम हो एवं रोजगार और न्याय सबको बराबर प्राप्त हो। यह तभी संभव है, जब नेता या शासक नैतिक होगा।

प्रतिनिधि न बनाकर उसे व्यक्ति तक ही सीमित रखा है। अत: इन्हें व्यक्तिवादी उपन्यासकार कहना भी उतना ही उचित ठहरेगा जितना कि मनोवैज्ञानिक। नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में जैनेंद्र को कुछ ऐसे समझा जा सकता है – **'उन्होंने व्यक्तित्व को मूलत: व्यक्ति मानकर उसकी मान्यताओं को वाणी देने का प्रयास किया है। वे व्यक्तिगत जीवन का चित्रण करते हुए बाहर से भीतर की ओर आये हैं। सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्तिगत विश्लेषण करने लगे हैं। इसलिए उनके उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यासों की भी संज्ञा दी जाती है।'**[1] व्यक्ति के मन में जितनी भी अनुभूतियाँ होती हैं, उसे एक-एक कर लेखक ने मनोविश्लेषण के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में लिख रहे जैनेंद्र के उपन्यासों पर आंदोलनों का प्रभाव न के बराबर दिखता है। कहीं-कहीं उनके पात्र जरूर उससे संबंधित हैं, पर वह किसी भी तरह से अपने पात्र को आंदोलन या उस समाज का प्रतिनिधित्व करता हुआ नहीं दिखाते। बतौर पृष्ठभूमि उन्होंने सामाजिक ढाँचे को अपने लेखन का हिस्सा बनाया है, लेकिन उसे केंद्र में रख कर लेखन कार्य नहीं किया। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर जेल जाने वाले जैनेंद्र चिंतन के स्तर पर मनोविज्ञान के आलावा बौद्ध धर्म और गांधीवाद से भी प्रेरित थे। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में भी पृष्ठभूमि के तौर पर राजनीति पर गांधीवाद के चढ़ते-उतरते प्रभाव को देखा जा सकता है।

सन् 1966 ई. में जैनेंद्र को उनके उपन्यास 'मुक्तिबोध' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह इनका पाँचवाँ उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने परिवेश के तौर पर शहरी और ग्रामीण जीवन दोनों को चुना है। यहाँ ग्रामीण जीवन का दृश्य नाममात्र ही दिखता है। ज्यादातर दृश्य शहर और उसके विकास की झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। जैनेंद्र के लेखन की एक और खास बात उनके कम पत्रों का चयन भी है। इस संदर्भ को लेकर जैनेंद्र की मान्यता यह है कि – **'इस विश्व के छोटे-छोटे खंड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य के वर्णन पा सकते हैं और उसके द्वारा सत्य के दर्शन करा भी सकते हैं, जो ब्रह्मांड में है वही पिण्ड में भी है। इसलिए अपने चित्र के लिए बड़े कैनवास की मुझे जरूरत नहीं लगी। थोड़े में समग्रता क्यों नहीं दिखलायी जा सके।'**[2] यहाँ इस उपन्यास में भी सहाय, उनकी पत्नी राजश्री और प्रेमिका नीलिमा, बेटा, बेटी, दामाद और मित्र और कुछ दो-चार पात्रों को लेकर लेखक ने अपने उपन्यास का कथ्य निर्मित किया है। कम पात्रों को लेकर भी लेखक ने उनके जीवन की विविध समस्याओं और जटिलताओं तथा विचार के हर पहलू पर बराबर दृष्टि डाली है।

देखा जाए तो मनोविज्ञान का चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों से ही आरंभ हो गया था, किंतु इन्होंने अपने उपन्यासों में आधार स्वरूप पात्रों को प्रतिनिधि और समाज सुधारक के तौर पर दिखाया है। अत: प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ और आदर्शवाद प्रबल रूप में सामने आता है, न कि व्यक्ति। मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का आशय उन उपन्यासों से है, जो मूलत: व्यक्ति केंद्रित होता है। मनोविश्लेषणवाद मानव

मस्तिष्क के चेतन, अचेतन और अवचेतन अवस्था की अभिव्यक्ति है, जहाँ अचेतन को विशेष महत्व दिया जाता है। रामदरश मिश्र के शब्दों में इसे कुछ ऐसे समझ सकते हैं – **'कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य मूलत: वह नहीं है, जो ऊपर सतह पर दिखता है, बल्कि वह है जो अपने भीतर अनभिव्यक्त रूप से छिपा हुआ है और उसका जितना अंश बाहर दिखता है, वह भी चेतन की उपज नहीं है, उस पर भी अनजाने ही परोक्ष रूप से अचेतन का नियंत्रण और प्रभाव है।'**[3] व्यक्ति अपने जीवन में संवेदना के कई पक्षों से गुजरता है, खुद को कभी किसी पक्ष से जोड़ता है तो कभी अलग करता है। ऐसे में समाज की भी अपनी एक अलग भूमिका होती है, जो व्यक्ति मन पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से असर डालता है। अलग-अलग परिस्थिति की अलग-अलग अनुभूति होती है। अत: लेखक पात्रों के द्वारा उन तमाम मानसिक उथल-पुथल को अपने लेखन के अंतर्गत रख कर उसका वर्णन करते हुए नजर आते हैं। मनोविज्ञान की यह नई खोज और प्रयोग पात्रों और चरित्र के मानसिक उथल-पुथल से संबंधित प्रतीत होता है। उपन्यास की शुरुआत में ही सहाय अपने दुविधाग्रस्त मन को कुछ इस तरह व्यक्त करता है – **'इधर कुछ दिनों से ठीक से नींद नहीं आती है। रात तीसरे पहर टूट जाती है और मन भटकने लगता है। सहसा कोई विश्वास नहीं करेगा। कारण, मेरे नाम के साथ दुविधा की संगति कोई जोड़ नहीं पाता है। पर इस चव्वन बरस की वय में स्वीकार करना चाहिए कि मुझमें दुविधा उग रही है।'**[4]

व्यक्ति जब अपने को द्वंद्व से बाहर निकलने की लगातार कोशिश करता है तो वह कभी नैतिक हो जाता है तो कभी व्यक्तिगत। पूरा उपन्यास सहाय के मूल्यों से उत्पन्न दुविधा के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। शुरुआत में तो सहाय बाहर की चुनौतियों से लड़ने की बात करते हैं, फिर धीरे-धीरे अंत में वे वही हो जाते हैं, जो शुरू से उन्हें स्वीकार नहीं था। सहाय के अंतर मन में उठ रहे कई सवाल और उसके जवाब से उत्पन्न परिस्थिति को लेखक ने अच्छे से संभाला है। शुरू में सहाय के मन में उठ रहे सवाल और उनके जवाब से निष्कर्ष तक पहुँचने की कोशिश सहाय को इस नतीजे पर लाकर खड़ा कर देती है – **'सचमुच मानता भी रहा हूँ कि सोचना बचना है। बाहर चुनौती है, बच कर अन्दर रमना-भरमाना ही सोच में घिरना है। लगता रहा है कि समस्या अन्दर की नहीं है, सदा वह बाहर है और विचार से वास्ता खाली आदमी का होता है, असली आदमी बाहर इन्सान से निपटता है।'**[5]

'मुक्तिबोध' एक राजनीतिक नेता के जीवन की कथा है। इसमें लेखक अपने दार्शनिक प्रवृत्ति के तौर पर

मन में उठते प्रश्न और उसके समाधान को सहाय के द्वारा दिखाने की कोशिश करते हैं। जाहिर-सी बात है, लेखक की यह कृति उनके सृजन और नए आयाम को दर्शाती है। प्रेम और विवाह के सामंजस्य को एक साथ दिखाकर लेखक जीवन की अवास्तविक तस्वीर के द्वारा अपने आदर्श मन को भी प्रस्तुत करते हैं। क्या असल जिंदगी में ऐसा संभव है? वास्तविकता से एकदम उलट जरूर कह सकते हैं। उपन्यास में संवाद के माध्यम से उत्पन्न द्वंद्व सहाय की मनोदशा को कई स्तर पर उभारता है। सहाय का अन्य पात्रों के साथ संवाद और उससे उत्पन्न दुविधा को मुख्य तौर पर दिखाया गया है। संवाद का ये स्तर कई पात्रों के साथ चलता है। यहाँ सभी स्तर के संवाद की अपनी-अपनी गरिमा है।

उपन्यास के शुरुआती पन्नों में लेखक ने पति-पत्नी के गहरे वात्सल्य प्रेम और बाद में उससे उत्पन्न स्थिति को कुछ ऐसे दिखाया है - **'मुझे उस मुख पर चिंता एकदम बुरी नहीं लगी। सचमुच इधर पत्नीत्व की संस्था में मुझे अर्थ प्रतीत होने लगा है। पत्नी बच्चों की माता हो सकती है, पर उमर आने पर उसकी गहरी वत्सलता पति को प्राप्त होती है।'**[6] पति-पत्नी के बीच सामान्य बातचीत एक-दूसरे पर सहज भाव से अधिकार दिखाना, धीरे से हस्तक्षेप करते हुए अपनी उपस्थिति दर्ज करना, रूठना-मनाना यह सब एक पारिवारिक माहौल तो तैयार करता है, परंतु साथ ही एक अंतर्द्वंद्व की भी स्थिति पैदा करता है। नोक-झोंक के दौरान सहाय अपने अंतर्द्वंद्व मन से कुछ ऐसे उलझे रहते हैं - **'कुछ नहीं, तुम जाकर सोओ-कैसी अच्छी हो! पत्नी ने तुनक कर कहा - कैसी बेकार हूँ, यही न कहना चाहते हो! अच्छी बात है, तो मैं चली जाऊं? हाँ मैं जरा खुद अपने से सुलझाना चाहता था।'**[7] अपने मन के उलझे सवालों में और उलझने के बाद सहाय को ऐसा अनुभव होता है कि उन्हें तो अभी तक कुछ उपलब्ध नहीं हुआ, जैसे अंदर का कोलाहल और बढ़ ही गया हो। क्षण-क्षण बदलते सहाय के मन के कुछ तार ऐसे हैं कि एक जगह स्थिर ही नहीं रह पाता। पति-पत्नी के बीच प्रेम की गहरी अनुभूति या यूँ कह सकते हैं कि सहाय के अंतर्द्वंद्व की अव्यवस्थित स्थिति को कुछ और प्रसंग से समझ सकते हैं - **'खिड़की के बाहर चुपचाप आँख खोले बैठा रहा। जैसे उस शून्यता में से सत्य खुलेगा। अंदर तो कोलाहल है, कुछ सुख नहीं मिलता। पर समय बीतता रहा और मैं अनुपलब्ध बना रहा। तभी मालूम हुआ कि मैं वापस बिस्तर में पहुँच सकता हूँ और दूरी लाँघ कर निकट हो सकता हूँ। लगा, यही उपलब्धि होगी।'**[8] वहीं इसके दूसरे पक्ष यानी पत्नी की स्थिति को यदि यहाँ देखा जाए तो वो सिर्फ अपने पति की उपस्थिति से ही संतुष्ट है। इसके लिए लेखक ने इसी क्रम में आगे लिखा है कि - **'असहाय शिशु से बने पति से अधिक पत्नी को और क्या चाहिए? और ऐसे क्षण पति मानो पत्नी के लिए सर्वस्व हो उठता है।'**[9] आगे पति-पत्नी के आदर्श रूप की एक तस्वीर यहाँ लेखक ने प्रस्तुत किया है, जिसकी निकटता वास्तविकता से थोड़ा कम है, क्योंकि इस तरह की संरचना या तो नाम मात्र ही समाज में व्याप्त होगी या सिर्फ लेखक की कोरी कल्पना ही। **'सहाय - करना चाहिए शक। तुमने मुझे क्या समझ रखा है? देवता समझ रखा है! राज- वहीं से बोली - हाँ, आदमी में देवता होता है और पत्नी नहीं, प्रेयसी उसे जगाती है।'**[10]

इसके बाद अगला मुख्य संवाद आता है प्रेमी-प्रेमिका का। सहाय और नीलिमा के प्रसंग में नीलिमा सिर्फ प्रेमिका बनकर सीमित नहीं है, वो एक अभिन्न मित्र और मार्गदर्शक का किरदार निभाती दिख रही है। द्विवेदीयुगीन दर्पणवादी दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य समाज का दर्पण है अर्थात समाज में जो घटित होता है, कमोबेश साहित्य वही दिखाने की कोशिश करता है। आज भी समाज दांपत्य में किसी तीसरे की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता है, लेकिन 'मुक्तिबोध' में

लेखक का यह नया प्रयोग यथार्थ से छुपा तो है, लेकिन नएपन के साथ एक नई दृष्टि भी देता है। इस दर्पणवादी दृष्टिकोण में लेखक की चेतना की क्रियाशीलता उपेक्षित नजर आती है। अत: यहाँ लेखक ने अपनी कल्पना और आकाँक्षा को बखूबी व्यक्त किया है। अपने आदर्श रूप में यह कैसा हो सकता है 'मुक्तिबोध' उसका एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। आगे लेखक के द्वारा किए गए इस प्रयोग में एक प्रसंग से राजश्री और नीलिमा के आदर्श संबंध को देखा जा सकता है – **'नीलिमा को मैं जानती हूँ। वह मामूली औरत नहीं है। वह खुद अपने को गिरा नहीं सकती, इसलिए पुरुष को भी गिरा नहीं सकती। तुम उसके बारे में नि:शंक रह सकते हो।'**[11] क्या आज हमारा समाज इस स्तर पर प्रगतिशील है? क्या आज हम इन सवालों को निजता में हल करते हैं? या यह सिर्फ लेखक की कल्पना मात्र ही हो सकती है।

सहाय की दिनोंदिन बढ़ती हुई दुविधा और आत्मग्लानि के प्रसंगों से यह उपन्यास भरा-पड़ा है। नीलिमा के साथ उनके संबंध में वो खुद को दोषी ठहराते हैं। इस दौरान वो ऐसी हरकत करते हैं, जो उन्हें आत्मग्लानि से भर देता है। **'तुम्हें शर्म नहीं है? न नहीं है। कहती हुई खिलखिलाई और तुम्हें भी उसकी जरूरत नहीं है। मेरे सामने तो बिल्कुल नहीं है। मैंने उठकर उसकी बाँह को पकड़ा। कोई धूप नहीं। चलो और मुझे पहुँचा के आओ और कहकर मैंने उसकी बाँह को जरा ऐंठा।'**[12] गलतियों का मनोविज्ञान यही कहता है कि आप करना कुछ चाहते हैं और आप कर कुछ और जाते हैं। यहाँ बाँह ऐंठना इसी तरह के मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है। यहाँ ऐसी स्थिति इसलिए पैदा होती है, क्योंकि नीलिमा सिर्फ सहाय की मित्र या मार्गदर्शिका नहीं है, वो उनके जीवन के एक हिस्से की प्रेमिका भी है। जब सहाय नीलिमा को सिर्फ प्रेमिका समझते हैं तो उनके मानसिक पटल पर खिंची सामाजिक बाध्यता उत्पन्न कर देती है। अत: इस क्रम में वो ऐसी हरकत कर बैठते हैं, जो उन्हें आत्मग्लानि से भर देता है। सहाय ने नीलिमा के प्रति आभार भले ही व्यक्त न किया हो, लेकिन उनकी आत्मग्लानि इस बात को पुष्ट करती जरूर है।

आधुनिक होते समय में जीवन की जटिलताएँ बहुत बढ़ गई हैं। ऐसे समय में हम बाहर से ज्यादा अपने अंदर से लड़ रहे हैं। आगे इस उपन्यास में और भी कई स्तर के संवाद हैं, जो सहाय के मन में अंतर्विरोध और भ्रम का जाल-सा बना देता है, जहाँ सहाय सबसे अधिक असहज और असहाय महसूस करते हैं। आज के आधुनिक समाज में पिता-पुत्र के विचारों में मतभेद और उससे उत्पन्न संबंध विच्छेद की स्थिति को यहाँ सहाय और वीरेश्वर के रूप में देख सकते हैं। आगे संवाद के माध्यम से इनके संबंध विच्छेद को गहराई से समझा जा सकता है। वीरेश्वर मुझे देख रहा था। उसके चेहरे पर व्यंग्य था। कुछ देर चुप रहा। फिर बोला – **'आप अपने को कामयाब आदमी समझते हैं शायद!' मैंने जल्दी से कहा, 'कामयाब'? नहीं तो! मैं बिल्कुल कामयाब आदमी नहीं हूँ। फिर फैसला अपने हाथ में क्यों लेते हैं?'**[13] आज के दौर में पिता-पुत्र का एक ही तरह से सोचना संभव नहीं है। पिता के नैतिक मूल्य और पुत्र का थोड़ा कम नैतिक होना या समय के साथ चलना दोनों को एक-दूसरे से अलग कर देता है।

सहाय पति, प्रेमी, पिता होने के साथ-साथ एक नेता भी हैं। समाज और परिवार के बीच फँसे सहाय को अपने राजनीतिक कर्तव्यों से विमुख होकर नैतिक मूल्यों से समझौता करना बिल्कुल भी स्वीकार नहीं है। राजनीति एक ऐसी शक्ति है, जो समाज को न सिर्फ बाहर से, बल्कि अंदर से भी प्रभावित करती है। राजनीति कहने से यह आशय स्पष्ट होता है कि तंत्र के अंतर्गत समाज में सुरक्षा और शांति कायम हो एवं रोजगार और न्याय सबको बराबर प्राप्त हो। यह तभी संभव है, जब नेता या शासक नैतिक होगा। अर्थात जो बातें सिद्धांत, नियम और श्रेष्ठ मार्ग पर ले जाए नीति है और इस तरह की शिक्षा से संपन्न व्यक्ति या नेता ही नैतिकता का पक्षधर हो सकता है। नैतिकता के अभाव में एक आदर्श समाज की स्थापना नामुमकिन है। इस

उपन्यास में सहाय भी अपने कार्यप्रणाली एवं व्यवहार कौशल में इन्हीं मानवीय मूल्यों के समावेश का पक्षधर दिखाई देते हैं, लेकिन रिश्तों में बँधा व्यक्ति कब तक नैतिक रह सकता है और पूरे उपन्यास में सहाय की दुविधा भी इन्हीं सब चीजों से शुरू होती है। एक तरफ अपने नैतिक मूल्यों की रक्षा करना तो वहीं दूसरी तरफ उसकी तिलांजलि देना सहाय को द्वंद्व से भर देता है। आखिर में सहाय का सब कुछ भाग्य पर छोड़ देना उनकी असमर्थता और अनैतिक होने की गवाही पेश करता है। **'मैं मिनिस्टर हो गया हूँ! अचरज में राज बोली, सच! विश्वास आया और वह तत्काल बेटी के पास भाग गई और मैं कमरे में अकेला रह गया। अकेला, कि अपने तेवर को आप ही संभालूँ और जो भाग्य में हो उसे आप ही झेलूँ!'** [14]

निष्कर्षत :

मनोविज्ञान व्यक्ति मन को विभिन्न स्तरों पर खोल कर रख देने वाली प्रवृत्ति है। साहित्य के क्षेत्र में इसी प्रक्रिया के तहत जैनेंद्र ने अपने लेखन कौशल का लोहा मनवाया है। यथार्थ परिस्थितियों के बीच आदर्श मूलक समाज के द्वंद्वात्मक प्रसंगों से अभिहित यह उपन्यास अपना ताना-बाना बुनता हुआ नजर आता है। बोध से मुक्ति का सवाल लिए हुए सहाय की असहाय स्थिति उन्हें हर क्षण करुणा और द्वंद्व से भर देती है। अपने उपन्यास 'मुक्तिबोध' में जैनेंद्र ने टूटते-बनते नैतिक मूल्यों से ग्रसित एक नेता की न सिर्फ कथा कहने की कोशिश की है, बल्कि अपने नए प्रयोग के आदर्श रूप को भी दिखाने का भरसक प्रयास किया है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. वाजपेयी. डॉ.नन्ददुलारे. नया साहित्य नये प्रश्न, राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली (2010). पृ. 184
2. कुमार. जैनेंद्र, सुनीता. सेतु प्रकाशन. (2010)(प्रस्तावना)
3. मिश्र. रामदरश, हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली (2016). पृ. 84
4. कुमार. जैनेंद्र, मुक्तिबोध. पूर्वोदय प्रकाशन. नई दिल्ली.(2000). पृ. 1
5. वही. पृ.1
6. वही. पृ.1
7. वही. पृ.2
8. वही. पृ.3
9. वही. पृ.4
10. वही. पृ48
11. वही. पृ.49
12. वही. पृ.45
13. वही. पृ.91
14. वही. पृ.108

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

महाभारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधित चिंतन

उज्ज्वल दास

शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
पांडिचेरी विश्वविद्यालय
कालापेट, पुदुचेरी- 605014
7699070823
ujjwal95das@gmail.com

शोध-सार :

पर्यावरण शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, 'परि+आवरण' जहाँ परि का अर्थ है चारों ओर और आवरण का अर्थ है ढँका हुआ या आच्छादित हुआ या घिरा हुआ। कोई भी वस्तु या पदार्थ जिस वस्तु से ढँका हुआ है या घिरा हुआ है, वह उसका आवरण कहलाता है। उसी प्रकार जिन पदार्थों से, जिन क्रियाकलापों से हम घिरे हुए हैं, वही हमारा पर्यावरण है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले भूमि, जल, वायु, पेड़, पौधे एवं जीव-जंतुओं के समूह, जो हमारे चारों ओर हैं, यह सभी मिलकर वातावरण का निर्माण करते हैं। अत: इसे पर्यावरण कहते हैं। मनुष्य के लालच के कारण आज पर्यावरण विभिन्न प्रकार से प्रदूषित हो रहा है। उदाहरण के लिए वायु, जल, मिट्टी, ध्वनि आदि प्रदूषण ने मानव जीवन में विभिन्न असाध्य रोगों को जन्म दिया है। मनुष्य के लालच के कारण आज प्राकृतिक पर्यावरण अनेक प्रकार से प्रदूषित हो रहा है। जैसे जंगलों को काटना, वन्य जीवों को मारना, नदी में जहरीले पदार्थ डालकर नदी के पानी को प्रदूषित करना। इससे वातावरण में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है, जिसके फलस्वरूप मानव शरीर में कई तरह के हानिकारक प्रभाव देखने को मिल रहे हैं। इसलिए पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए हमें सतर्क रहना होगा और पर्यावरण प्रदूषण के कारणों और समाधानों पर गंभीरता से विचार करना होगा। प्रस्तुत शोधपत्र में महाभारत में पर्यावरण संरक्षण के बारे में चर्चा की गई है।

बीज शब्द :

महाभारत, पर्यावरण, संरक्षण, जल, वृक्ष, प्राणी, वायु, भूमि आदि।

विश्लेषण :

महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत दुनिया के सबसे महान महाकाव्यों में से एक है। इसकी महानता और आकृति की गरिमा के कारण यह महाकाव्य महाभारत कहलाता है। कौरवों और पांडवों का विरोध इस महाकाव्य का मूल आख्यान है, किंतु महाभारत में असंख्य

कथाएँ, असंख्य उपाख्यान, असंख्य उपदेश और सैकड़ों विद्याएँ समाहित हैं। यह विशाल महाकाव्य भारत की शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, आध्यात्मिक चेतना आदि के साथ-साथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण है। वेदव्यास ने कहा है-

'धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'॥ इति

अर्थात जो महाभारत में है, वह अन्यत्र है और जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं नहीं मिलता। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के विभिन्न पर्व में अपनी पर्यावरणीय चिंतन को व्यक्त किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पाँच महाभूत और मन, बुद्धि और अहंकार कुल मिलाकर यह आठ तत्व पर्यावरण शब्द से अभिहित हैं। शांतिपर्व में महर्षि व्यास ने नदियों, पहाड़ों, समुद्रों, वृक्षों की जड़ों, गौशालाओं, दुर्गम सड़कों, वनों, चौराहों, सड़कों, चबूतरे, घाटों, अश्वशाला, रथशाला, जीर्ण-शीर्ण बागों, जीर्ण-शीर्ण घरों, पंचतत्वों, दिशाओं, विदिशा, चंद्र, सूर्य उनकी किरणें, रसातल में और अन्यान्य स्थानों पर उनके अधिष्ठाता देवता को श्रद्धा सहित प्रणाम किया है। इसी पर्व में महर्षि वेदव्यास ने नदियों की सरस्वती के रूप मे स्तुति की और पर्वतों को पूजनीय कहा है। यहाँ इस वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्यास का पर्यावरण को धार्मिक चेतना से जोड़ने का उद्देश्य था पर्यावरण की रक्षा करना, क्योंकि यदि पर्यावरण को धार्मिक चेतना से जोड़ दिया जाए तो ऐसे स्थानों को लोग प्रदूषित नहीं करेंगे। ऋग्वेद में वनों की स्तुति की गई। वहाँ वनों को सभी पशुओं की माता के रूप मे व्यक्त किया गया है। यजुर्वेद में वृक्ष को पूज्य बताया गया है। यजुर्वेद में ऋषियों ने ग्रह, नक्षत्र, अंतरिक्ष, जल, वायु, अग्नि, भुमि, वनस्पति, और संपूर्ण ब्रह्मांड की स्तुति करते हुए शांति की कामना की गई है -

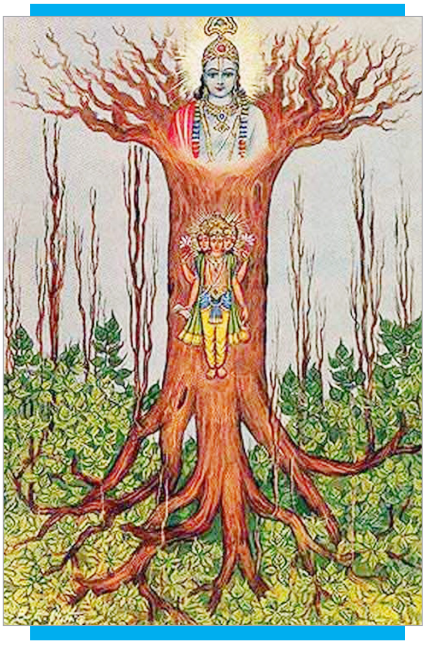

'औ द्यौः। शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति।
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः॥
शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वशान्तिः।
शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि'॥ इति

इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनि, विद्वान पर्यावरण के प्रति अत्यंत चिंतनशील थे। महाभारत के विभिन्न पर्वों में, विभिन्न उद्धरणों और विभिन्न पात्रों के व्यवहार के माध्यम से पर्यावरण के प्रभाव और पर्यावरण के संरक्षण के बारे में स्पष्ट विचार पाया जाता है।

वृक्षारोपण :

वृक्ष हमारे सबसे अच्छे मित्र हैं। वृक्ष मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वृक्ष न केवल प्राकृतिक सुंदरता को बढ़ाता है, बल्कि मिट्टी के कटाव को रोककर, बाढ़ को रोककर, तूफानों को रोककर जीवन और संपत्ति की रक्षा भी करता है। मौसम नियंत्रण में वृक्षों की महत्वपूर्ण योगदान है। वृक्षों के बिना दुनिया रेगिस्तान बन जाएगी। वृक्ष जीवमंडल को छाया देकर तापमान को नियंत्रित करते हैं। व्यापक वन क्षेत्रों में, वृक्ष जल वाष्प युक्त वायु को संघनित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वर्षा होती है। वृक्ष वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड गैस लेता है और ऑक्सीजन गैस छोड़ता है और हम वृक्षों से ऑक्सीजन ग्रहण करके जीते हैं। हम सभी को योजनाबद्ध तरीके से वृक्षारोपण में भागीदारी करनी चाहिए। देश की अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक जीवन को सुकून देने के लिए हममें से प्रत्येक को हर साल वृक्ष लगाना चाहिए। पर्यावरण संतुलन में सबसे ज्यादा योगदान वृक्षों का ही है। महाभारत में वृक्षारोपण संबंधित विस्तृत विवरण मिलता है। भीष्म ने अनुशासन पर्व में

युधिष्ठिर को वृक्षारोपण के महत्व के बारे में बताया। उनका कथन है कि – अस्वत्थ वट प्रभृति वृक्ष, कुशस्तंव आदि गुल्म, वृक्षादि पर फैली हुई पाटली आदि लता, पृथ्वीपर पड़ी हुई कूष्मांड प्रभृति, बांश आदि त्वकसार, उलप प्रभृति तृण – इन छह प्रकार के वृक्ष जाति के लगाने से ये समस्त गुण प्राप्त हुआ करते हैं, मनुष्य लोक में कीर्ति और परलोक में शुभ फल मिलता है। जो लोग वृक्ष लगाते हैं, वो अपने मरे हुए पूर्वजों और भविष्य में आने वाली संतानों का तथा पितृवंश का ही उद्धार किया करते हैं, इसलिए वृक्षों को लगाना चाहिए। जो पुरुष वृक्षों को लगाता है उसके लिए वृक्ष निस्संदेह पुत्ररूप होते हैं। इसी पर्व में वृक्षों का महत्व और तालाब खोदकर तालाब के किनारे वृक्ष लगाकर पुत्र की तरह उसकी देखभाल करने के लिए बताया गया है –

'पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
वृक्षदं पुत्रवद् वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु॥
तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः'।इति।

अर्थात फलदार वृक्ष इस जगत में मनुष्यों को तृप्त करते हैं, जो वृक्ष दान करता है उसको वे वृक्ष पुत्रों की भाँति परलोक में परित्राण किया करते हैं। इसलिए कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्य तालाब के चारों ओर सदा सुंदर वृक्षों को लगावें और उन वृक्षों का पुत्र की भाँति प्रतिपालन करें। वृक्षों को काटना दंडनीय अपराध है। वराहपुराण में कहा गया है – छेदनं वृक्षजातीनां द्वितीयं नरकं स्मृतम्। अर्थात जो वृक्षों को काटते हैं, वे नरक में जाते हैं। वृक्षों को काटना या जलाना नहीं चाहिए, क्योंकि कई जीव वृक्षों में शरण लेते हैं। शांतिपर्व में वृक्षों को न काटने और उसके महत्व के बारे में कहा गया है –

'महान् वृक्षो जायते वर्धते च तं चैव भूतानि समाश्रयन्ति।
यदा वृक्षश्छिद्यते दह्यते च तदाश्रया अनिकेता भवन्ति'॥ इति

अर्थात बहुत से वृक्ष उत्पन्न होते हैं और बढ़ते हैं, प्राणी उनको आश्रय बना लेते हैं। जब वृक्ष काटे या जलाए जाते हैं तो उस पर आश्रित प्राणी अनिकेत अर्थात आश्रय रहित हो जाता है। महाभारत का समाज पर्यावरण की रक्षा के लिए वृक्षों के महत्व से अच्छी तरह परिचित था। व्यास ने वृक्षारोपण कर्म को अत्यंत महत्वपूर्ण वताया है।

वायु संरक्षण :

पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए वायु सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। स्वच्छ हवा में साँस लेने से स्ट्रोक, हृदय रोग, फेफड़ों के कैंसर के साथ-साथ अस्थमा जैसी पुरानी और तीव्र श्वसन संबंधी बीमारियों का खतरा कम हो सकता है। इसलिए स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ हवा की आवश्यकता होती है। जैसा कि महाभारत के वन पर्व में कहा गया है, शुद्ध, शीतल और सुगंधित वायु जीवन प्रदान करती है–'शीतस्तत्र ववौ वायुः सुगन्धी जीवनः शुचिः' इति॥ यहाँ शुद्ध, शीतल एवं सुगंधित वायु का उल्लेख वायु को दूषित होने से बचाने का स्पष्ट संकेत देता है। शुद्ध वायु की उत्पत्ति का वर्णन महाभारत में वन और वनस्पति आदि से मिलता है। आदि पर्व में कहा गया है –

'सुखः शीतः सुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः।
परिक्रामन् वने वृक्षानुपैतीव रिरंसया'॥ इति

अर्थात महर्षि कण्व के आश्रम के निकट वन में शीतल, सुगंधित और सुहावनी, फूलों के पराग कणों को ले जाती हुई मंद हवा बार-बार पेड़ों के पास आ रही थी, मानो रमन की इच्छा से। वनपर्व में कहा गया है–

'मोदयन् सर्वभूतानि गन्धमादनसम्भवः।
सर्वगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ'॥ इति

अर्थात वनस्पति की प्रचुरता के कारण गंधमादन पर्वत पर सुगंधित और सुखदायक हवा भी चलती थी। सभापर्व में कहा गया है, इंद्रप्रस्थ नगर में वायु सदैव पांडवों को जल और उस स्थान पर मौजूद कमलों की सुगंध से सेवा प्रदान करते थे –

'जलजानां च पद्मानां स्थलजानां च सर्वशः।
मारुतो गन्धमादाय पाण्डवान् स्म निषेवते'॥ इति

हिमालय पर्वत पर भी विभिन्न प्रकार की सुगंधों वाली शुद्ध, शुभ्र हवा के उदाहरण प्राप्त होते हैं। वन

और वनस्पति से ही पवित्र वायु प्राप्त होती है। महाभारत के ऐसे वर्णनों से पता चलता है कि वन और वनस्पति वायु की शुद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अत: शुद्ध वायु प्राप्त करने के लिए वनों तथा वनस्पतियों का सदैव संरक्षण करना चाहिए।

भूमि संरक्षण :

पृथ्वी पर सभी जीव-जंतु मिट्टी पर आधारित होते हैं। जानवर और पौधे अपने अस्तित्व के लिए इस भूमि पर निर्भर हैं। प्राचीन काल से ही भूमि की माँ के रूप में पूजा की जाती रही है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के विभिन्न पर्वों में भूमि संरक्षण के बारे में चर्चा की है। भूमि संरक्षण का मुख्य उद्देश्य है भूमि को क्षय होने से बचाना और यह सुनिश्चित करना है कि भूमि की उर्वरता नष्ट न हो। भीष्मपर्व में महर्षि वेदव्यास ने कहा है कि संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति इसी भूमि से होती है और अंत भी इसी भूमि पर ही होता है। समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा भूमि ही होती है और भूमि ही सबका परम आश्रय है -

'भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव परायणम्' ॥ इति

वेदव्यास ने भूमि की श्रेष्ठता के बारे में बताया है कि जो भूमि देखने में सुंदर होती है, जो भूमि सुदृढ़ होती है और प्रचुर मात्रा में अन्न उत्पन्न कराती है, जो भूमि विविध और अनेक धातुओं से सुशोभित होती है तथा जिसमें सभी प्राणी निवास करते हैं, वह भूमि सर्वोत्तम है -

'सुप्रदर्शा बलवती चिन्ना धातुविभूषिता।
'उपेता सर्वभूतैश्च श्रेष्ठा भूमिरिहोच्यते'॥ इति

महाभारत के आदिपर्व में भूमि को क्षय होने से बचाने का प्रसंग भी मिलता है। उपाध्याय की आज्ञा के अनुसार आरुणि खेत को भूमिक्षय से बचाने के लिए मेड़ बाँधने के लिए मेड़ पर लेट गए थे-'स तत्र संविवेश केदारखण्डे शयाने च तथा तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ' इति॥ भूमि संरक्षण के लिए वृक्षारोपण ही सर्वोत्तम उपाय है। महाभारत के अनुशासनपर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को वृक्षारोपण के महत्व के बारे में विस्तार से बताया है। वहाँ वृक्ष को पुत्र तुल्य कहा गया है। सभी हितैषी को अपने-अपने तालाबों के आसपास अच्छे-अच्छे वृक्ष लगाने के लिए और उनका पुत्र की भाँति पालन-पोषण करने के लिए बताया गया है -

'तस्मात् तडागे सद्वृक्षाः रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः'॥ इति

इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाभारत के लेखक यह अच्छी तरह जानते थे कि भूमि संरक्षण के लिए वृक्षारोपण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

जल संरक्षण :

जल मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक है। जल का नाम सुनते ही सबसे पहले जो बात दिमाग में आती है, वो है 'जल ही जीवन है', जो बिल्कुल सच है। जल के बिना कोई भी इंसान या जानवर जीवित नहीं रह सकता है। हमें अपने दैनिक जीवन में विभिन्न कारणों से जल पर निर्भर रहना पड़ता है। जल के महत्व को समझा जा सकता है, यदि हमें अपने दैनिक जीवन में अचानक किसी कारणवश जल न मिले। जिस तरह पौधों के जीवित रहने में जल का योगदान निर्विवाद है, उसी तरह लोगों को अपने दैनिक जीवन में छोटी-छोटी चीजों के लिए जल पर निर्भर रहना पड़ता है। जल की कमी से दुनिया भर में भोजन की कमी हो सकती है, हाल ही में एक अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट में कहा गया है। वर्तमान काल में जल के संरक्षण के लिए कई प्रोजेक्ट चल रहे हैं। महाभारत काल में भी जल का संरक्षण करने के लिए बताया गया है। महर्षि वेदव्यास ने नदियों को सरस्वती के रूप में व्यक्त किया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं को भगीरथी के रूप में प्रकट किया है। अतः इससे प्रतीत होता है कि महाभारत काल में जल को देवता के रूप मे माना जाता था। इस कारण वे लोग जल की स्वच्छता और शुद्धता पर विशेष महत्व देते थे। व्यास का कथन है कि जो मनुष्य अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण जल में थूक या मलमूत्र डालेगा, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा और यह भी कहा गया है कि बोए हुए खेत में, गाँव के आस-पास के पानी में, भगवान के मंदिर में, गायों के समुदाय में, भगवान से संबंधित पेड़ के पास और विश्राम के स्थान पर मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिए। इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्यास ने इसका उल्लेख पर्यावरण की रक्षा के लिए किया था। क्योंकि जगह-जगह मल, थूक आदि डालने से स्थान और पर्यावरण की पवित्रता नष्ट हो जाती है।

प्राचीन काल में लोग वर्षा के लिए यज्ञ करते थे। यज्ञ के धुएँ से बादल उत्पन्न होते हैं, जिससे वर्षा होती है, जो खेतों को सींचती है और भोजन उत्पन्न करती है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा -

'अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः'॥ इति

अर्थात समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से होता है। अनुशासन पर्व में जलाशयों के निर्माण पर चर्चा की गई है। जहाँ वर्षा जल का संचय करना अत्यंत पवित्र और पुण्यदायी बताया गया है। वर्षा जल के संचयन के लिए अनेक जलाशयों का निर्माण करना चाहिए और जलाशयों में जितना अधिक समय तक जल रहेगा, उतना ही अधिक पुण्य प्राप्त होगा। भीष्म ने कहा हैं -

'वर्षाकाले तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति।
अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥
शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति।
गोसहस्रस्य स प्रेत्य लभते फलमुत्तमम्॥

हेमन्तकाले सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥
यस्य वै शिशिरे काले तडागे सलिलं भवेत्।
तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥
तडागं सुकृतं यस्य वसन्ते तु महाश्रयम्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते॥
निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति।
वाजिमेधफलं तस्य फलं वै मुनयो विदुः'॥ इति

अर्थात मनीषी महापुरुष लोग कहते हैं कि वर्षा ऋतु में जिसके खुदवाए हुए तालाबों में पानी रहता है, उसे अग्निहोत्र का फल मिलता है। शरद ऋतु में जिसके तालाबों में पानी रहता है, उसे मृत्यु के पश्चात एक हजार गायों के बराबर फल मिलता है। हेमंत ऋतु में जिसके तालाबों में जल रहता है, वह अनेक स्वर्ण दानों से युक्त महान यज्ञ के फल का भागी होता है। मनीषी पुरुषों का कहना है कि जिसका तालाब शीतकाल में जल से भरा रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। वसंतकाल में जिनके खुदवाए हुए तालाब विधिपूर्वक सबके अवलंब रूप होते हैं, उसे अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है। ग्रीष्म ऋतु में जिसके खुदवाए हुए तालाबों में पीने के लिए जल विद्यमान रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है, ऐसा मुनियों का मत है। इस विवरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जल का संरक्षण करना चाहिए तथा जल की समस्या नहीं होनी चाहिए।

प्राणियों का संरक्षण :

दुनिया में हर जीव अन्योन्याश्रित है, इस पारिस्थितिकी तंत्र में प्रत्येक प्रजाति की एक अलग भूमिका है। प्रत्येक जीव किसी-न-किसी रूप में पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए जीवमंडल के संतुलन को बनाए रखने और पर्यावरण की रक्षा के लिए सभी जीवों को जीने की अनुमति दी जानी चाहिए। प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों और दार्शनिकों ने वन्य जीवों के संरक्षण पर बल दिया है। महाभारतकालीन समाज में अहिंसा को परम धर्म माना गया है। पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने के लिए वेदव्यास ने कहा है-

'अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतां स्मृतः।
तस्मात्प्राणभृतः सर्वान्न हिंस्याद् ब्राह्मणः क्वचित्॥ इति

अर्थात अहिंसा को ही सब जीवों का परम धर्म माना गया है। अतएव ब्राह्मण सब प्राणियों में किसी जीव की हिंसा न करें। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि पंचमहाभूतों से निर्मित सभी प्राणियों के हृदय में ईश्वर का निवास है। प्राणियों के प्रति व्यास का अत्यंत प्रेमभाव था। पशुओं के प्रति क्रूरता को रोकने के लिए उन्होंने कहा कि बैलों को बधिया करना, भारी बोझ उठाना और उनसे जबर्दस्ती काम कराना जघन्य कार्य है। इसके अलावा पशुओं का क्रय-विक्रय करना भी अनुचित बताया गया है। उन्होंने बताया है कि सूर्य, चंद्रमा, वायु, ब्रह्मा, यज्ञ और यमराज ये सभी देवता पाँचों इंद्रियों के समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं, जो इन्हें बेचकर अपनी जीविका चलाता है, वह पाप का भागी होता है। फिर उन्होंने बताया है कि बकरा अग्नि का, भेड़ वरुण का, घोड़ा सूर्य का और बछड़ा चंद्रमा का स्वरूप है। वेदव्यास ने सभी जीवों को देवता का स्वरूप बताया है, क्योंकि देवता का स्वरूप है, इसलिए लोग प्राणियों के प्रति हिंसा नहीं करेंगे। महाभारत काल में लोग सभी जीवों को देवता का स्वरूप मानते थे। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारतकालीन समाज जीवों की रक्षा के लिए अत्यंत चेतनाशील था।

शांतिपर्व में बताया गया है कि यज्ञ में वृक्ष, अन्न, पशु आदि की आहूति से प्राप्त मांसाहारी भोजन करना ठीक नहीं है, अपितु कोई भी ऐसे धर्म की प्रशंसा नहीं करता है। सुरा, आसब, शहद, मांस, और मछली तथा तिल और चावल की खिचड़ी इन सभी चीजों को धूर्तों ने यज्ञ में प्रचलित कर दिया है। वेदों में इनके उपयोग का विधान नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत काल में लोग यज्ञजनीत पशु-पक्षियों की हिंसा को अनुचित मानते थे। साथ ही अहिंसा को परम धर्म मानते थे, क्योंकि वेदव्यास ने कहा है-

'प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम।
अनृतं वा वेदद्वाचं नच हिंसात्कथंचन'॥ इति

अर्थात मैं अहिंसा को ही श्रेष्ठ धर्म मानता हूँ। मेरी सम्मति में असत्य चाहे बोल लें, लेकिन प्राणी की हिंसा करना कदापि उचित नहीं है।

बाघ खुले जंगल और चरागाह पर्यावरण को बेहतर बनाने में मदद करता है। बाघ वन खाद्य श्रृंखला में सबसे ऊपर है और जंगल के प्राकृतिक वातावरण का संतुलन बाघ पर निर्भर करता है। वर्तमान काल में बाघों के संरक्षण के लिए कई प्रोजेक्ट चल रहे हैं। महाभारत काल में भी बाघों की रक्षा करने के लिए कई सारे प्रावधान देखने को मिलते हैं। उद्योगपर्व में वेदव्यास ने कहा है-

'निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्।
तस्माद्व्याघ्रो वनं रक्षेद्वनं व्याघ्रञ्च पालयेत्॥ इति

अर्थात वन के बिना व्याघ्र का नाश हो जाता है और व्याघ्र के बिना वन का नाश हो जाता है। व्याघ्र वन की रक्षा करता है और वन व्याघ्र की रक्षा करता है। इससे प्रतीत होता है कि पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने के लिए वेदव्यास अत्यंत सचेत थे।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पर्यावरण की रक्षा करने के लिए महर्षि वेदव्यास ने अपने ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया है। और महाभारतकालीन समाज भी पर्यावरण के संरक्षण के लिए सजग था। परंतु वर्तमान काल में भूमि की लालसा में वृक्षों को काटा जा रहा है, तालाबों को मिट्टी से भर दिया जा रहा है। और मांस की लालसा में वन्यप्राणियों को मारा जाता है, जिसकी वजह से पर्यावरण का संतुलन प्रभावित होता है और पर्यावरण संरक्षण में विकट समस्या आ जाती है। परंतु महाभारत में इस समस्या का निराकरण मिलता है। वहाँ सभी प्राकृतिक तत्वों की देवता रूप से स्तुति की गई है, क्योंकि भारत देश अध्यात्मप्रधान देश है।

हमारी मानसिक विकृति की वजह से पर्यावरण की हानि होती है और जिसका प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है। अत: मानव जीवन के अस्तित्त्व को बनाए रखने के लिए, हमें पूरे पर्यावरण को संतुलित और शुद्ध रखने की आवश्यकता है। अत: पर्यावरण को शुद्ध और संतुलित रखने के लिए किसी भी जीव या वृक्ष पर हिंसा न करें। मन शुद्ध होगा तो हमारा विचार भी शुद्ध होगा और चिंतन भी शुद्ध होगा, जिसकी वजह से पर्यावरण का विशुद्धिकरण भी अवश्य ही होगा। ❑

संदर्भ सूची :

i महत्त्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते। - महाभारतम्. आदिपर्व. 1.274

ii महाभारतम् आदिपर्व. 62.53

iii भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ - श्रीमद्भगवद्गीता. 7.4

iv ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारे गहनेषु च॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु तटेषु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च। चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु॥
रसातलगता ये च ये च तस्मै परं गता:। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्येऽस्तु नित्यश: - महाभारत. शान्तिपर्व. 284.177-180

v सर्वा नद्य: सरस्वत्य: सर्वपुण्या: शिलोच्चया:। - वही. 263.42

vi आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषिबलाम्। प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्॥ - ऋग्वेद. 10.146.6

vii नमो वृक्षेभ्य:, औषधीनां पतये नम:, अरण्यानां पतये नम:। - यजुर्वेद. 16.17,19.20

viii वही. 36.7.1

ix एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे। कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम्॥
अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत। तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षांश्च रोपयेत्॥
तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपानात्र संशय:। परलोकगत: स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययाम्॥ - महाभारत. अनुशासनपर्व. 58.25,26,27

x वही. 58.30,31

xi वामनपुराण. 61.2

xii महा. शान्तिपर्व. 91.26
xiii महाभारत. वनपर्व. 168.50
xiv महाभारत. आदिपर्व. 70.16
xv महाभारत. वनपर्व. 160.42
xvi महाभारत. सभापर्व. 3.36
xvii ववौ सुख: शिवो वायुर्नानागन्धवह: शुचि: । – महाभारत. शान्तिपर्व. 283.12
xviii महाभारत. भीष्मपर्व. 4.20
xix महाभारत. अनुशासनपर्व. 58.2
xx महाभारत. आदिपर्व. 3.24
xxi महाभारत. अनुशासनपर्व. 58.31
xxii सर्वा नद्य: सरस्वत्य: सर्वपुण्या: शिलोच्चया: । – महाभारत. शान्तिपर्व. 263.42
xxiii झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी । – श्रीमद्भगवद्गीता. 10.31
अल्पा इति मतिं कृत्वा यो नरो बुद्धिमोहिता । श्लेष्म मूत्र पुरीषाणि युष्मासु प्रतिमोक्षति ॥
xxiv तमियं यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति । तथा वो भविता मोक्ष इति सत्यं ब्रवीमि व: ॥ – महाभारत. शान्तिपर्व. 282.54–55
xxv नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके । उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात् कदाचन ॥
देवालयेऽथ गोवृन्दे चैत्ये सत्येषु विश्रमे । – महाभारत. अनुशासनपर्व. 104. 53–54
xxvi श्रीमद्भगवद्गीता. 3.14
xxvii महाभारत. अनुशासनपर्व. 58.10–15
xxviii महाभारत. आदिपर्व. 11.12
xxix ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । – श्रीमद्भगवद्गीता.18.61
xxx ये चच्छिन्दन्ति वृषणान् ये च भिन्दन्ति नस्तकान् । वहन्ति महतो भारान् बध्नन्ति दमयन्ति च ॥
हत्वा सत्त्वानि खादन्ति तान्कथं न विगर्हसे । मनुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते ।।
वधबन्धनिरोधेन कारयन्ति दिवानिशम् । आत्ममनश्चापि जानाति यद्दु:खं वधबन्धने ॥
पञ्चेन्द्रियेषु भूतेषु सर्वं वसति दैवतम् । आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्ब्रह्मा प्राण: क्रतुर्यम: ॥
तानि जीवानि विक्रीय का मृतेषु विचारणा । अजोऽग्निर्वरुणो मेष: सूर्योऽश्व: पृथिवी विराट ॥
धेनुर्वत्मश्व सोमो वै विक्रीयैतन्न सिध्यति । – महाभारत. शान्तिपर्व. 262.37–42
xxxi यदि यज्ञांश्च वृक्षांश्च यूपांश्चोद्दिश्य मानवा: । वृथा मांसं न खादन्ति नैष धर्म: प्रशस्यते ॥
सुरा मत्स्या मधु मांसं मासवं कृसरौदनम् । धूर्तै: प्रर्वाततं ह्येतन्नैद् वेदेषु कल्पितम् ॥ – वही. 265.8–9
xxxii महाभारत. कर्णपर्व. 69.23
xxxiii उद्योग पर्व. 21.45

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अथर्ववेद–अनुवादक और सम्पादक – विजनविहारी गोस्वामी, हरफ प्रकाशनी, कलकाता, 1358
2. ऋग्वेद–अनुवादक – गंगा सहाय शर्मा, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
3. महाभारत(आदिपर्व) – सम्पादक – दामोदर सातवलेकर, भारत–मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, पारडी,1968
4. महाभारत(प्रथम खण्ड) – अनुवादक – रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
5. महाभारत(द्वितीय खण्ड) – अनुवादक – रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
6. महाभारत(तृतीय खण्ड) – अनुवादक – रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
7. महाभारत(चतुर्थ खण्ड) – अनुवादक – रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
8. महाभारत(पञ्चम खण्ड) – अनुवादक – रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
9. महाभारत(षष्ठ खण्ड) – अनुवादक – रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
10. यजुर्वेद–अनुवादक – रेखा व्यास, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
11. श्रीमद्भगवद्गीता – अनुवादक – रामदयाल मजुमदार, तारा लाइब्रेरी, कलकाता, 2019
12. श्रीमद्भगवद्गीता – अनुवादक – श्यामाचरण लाहिड़ी, प्राची पावलिकेशन्स, कलकाता, 2022

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता के रस-स्त्रोत लोक गीत

शेषांक चौधरी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
तेलंगना : 500046
7860501441
chaudharysheshank.brh2016@gmail.com

सारांश :

मौखिक परंपरा से चले आ रहे लोक गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहमान होते रहे हैं। इनमें हमारे रीति-रस्म, संस्कार, सुख-दुःख, प्रेम-विरह, हास्य-व्यंग्य, हृदय के निश्च्छल उद्‌गार छलकते हैं। विभिन्न प्रदेशों में भाषायी भिन्नता के बावजूद इनमें मानवीय संवेगों की अद्भुत एकरूपता मिलती है। किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रस-स्त्रोत लोक गीत ही होते हैं। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि यह लोक गीतात्मक परंपरा दैनंदिन जीवन की खुशबू को सँजोकर रखती है।

बीज शब्द :

लोक, लोक गीत, संस्कृति, लोक मानस आदि।

आलेख :

लोक गीत लोकमानस के विशिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति हैं। लोक गीतों में समाज की परंपराओं का साक्षात् प्रकटीकरण होता है। सामूहिक चेतना की सरस व अकृत्रिम अभिव्यंजना का मनोहर प्रस्तुतिकरण जो लोक गीतों में होता है, वही उसकी चिरंतनता का शाश्वत आधार है। पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि के शब्दों में कहें तो **'साहित्य यदि समाज का दर्पण है तो लोक गीत उस दर्पण का दर्पण है।'** [1]

लोक गीत पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व इसमें प्रयुक्त लोक शब्द पर विचार करना समीचीन है। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोके दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन होता है। इस धातु का अर्थ है - देखना, जिसका लट् लकार के अन्य पुरुष के एकवचन का रूप 'लोकते' है। अत: 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ - 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार - **'लोक शब्द से ही हिंदी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है, जिसका तात्पर्य है- सर्वसाधारण जनता। अत: 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है, जो किसी देश में निवास करता है।'** [2]

पंडित विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में कहें तो – 'लोक न तो प्राचीनता का बोधक है, न पिछड़ेपन का, न किसी सीमित अलग-अलग समुदायों का। लोक, शास्त्र विरुद्ध नहीं; शास्त्र-पूरक है, क्योंकि शास्त्र को शास्त्र का भी लोक विरुद्ध होना अभीष्ट नहीं है। **एक तरह से लोक शास्त्र का ही प्रसूत रूप है और शास्त्र भी लोक स्वीकृतियों का एक घनीकृत रूप है। इसीलिए शिष्ट से शिष्ट, प्रबुद्ध से प्रबुद्ध समुदाय में ऊँची से ऊँची जाति में अनेक ऐसे अनुष्ठान हैं, जो ठेठ वन्य या ग्राम्य जीवन से लगाव का संकेत देते हैं।**'[3]

गीत आदिम राग है, इसका कोई छोर नहीं है। यह अनादि और अनंत है। डॉ. सुरेश गौतम लिखते हैं कि **'यह (गीत) मानव-कण्ठ में अमरता की पहचान का महामंत्र है, जो अभिव्यक्ति के देवता महारुद्र से मनुष्य की सृष्टि को रचना के समय ही 'परसाद गुण' के रूप में मिला है।'**[4] गीत की व्याप्ति सर्वत्र है। बहती बयार में गीत है, कल-कल झरनों में गीत है, पक्षियों की चहचहाहट में गीत है, कृषकों की हाड़-तोड़ मेहनत से उत्पन्न अन्न की झूमती बालियों में गीत है, अदहन की खदबदाहट में गीत है, उमड़ते-घुमड़ते घन के गर्जन में गीत है, जन्म में भी गीत है, मरण में भी गीत है। सोहर के छंदों में भी जीवन मुस्काता है और श्मशान घाट में 'राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है' में भी जीवन की गतिमयता का भारतीय दार्शनिक-स्वरबंध लोक छंद बनकर मृत्युदेव की सत्ता को चुनौती देता हुआ आत्मा की अमरता का ज्ञान कराता है।

हम भारतवासियों की तो बात ही अलग है। हम 'क्या हार में, क्या जीत में, किंचित नहीं भयभीत मैं' के भाव के साथ विजय में भी गाते हैं, पराजय में भी गाते हैं, लेकिन पराजय में गाए जाने वाले हमारे गीत पराजय की स्वीकृति नहीं होते, अपितु पराजय-बोध की सतत विवर्जना के लिए वे तब तक शक्ति के आराधन का मंत्र बने रहते हैं, जब तक पराजय को विजय में परिवर्तित न कर दें।

मौखिक परंपरा से चले आ रहे लोक गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहमान होते रहे हैं। इनमें हमारे रीति-रस्म, संस्कार, सुख-दुःख, प्रेम-विरह, हास्य-व्यंग्य, हृदय के निश्च्छल उद्‌गार छलकते हैं। विभिन्न प्रदेशों में भाषायी भिन्नता के बावजूद इनमें मानवीय संवेगों की अद्‌भुत एकरूपता मिलती है। किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रस-स्रोत लोक गीत ही होते हैं। 'भोले भाव मिले रघुराई' की तरह इस भोली अलौकिक लोक वाणी में राष्ट्र की स्वतंत्र सौंदर्य भावना और जीवन की अकृत्रिम और मिट्टी की भीनी खुशबू लिए राष्ट्रीयता व्यक्त होती है। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि यह लोक गीतात्मक परंपरा रोजाना जीवन की खुशबू को सँजोकर रखती है।

यदि हम किसी राष्ट्र की 'चिति' के विषय में एक जिज्ञासु हैं तो हमारे लिए वहाँ की लोक-संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना अपरिहार्य है। यह ज्ञान हमें मुख्य रूप से लोक गीतों द्वारा ही प्राप्त होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि – **'यदि किसी देश के इतिहास की वास्तविक जानकारी प्राप्त करनी हो तो मोटे-मोटे इतिहास ग्रंथों को पढ़ने से बेहतर है कि उस देश के लोक नृत्यों और लोक गीतों की वीथियों से आँखें खोलकर गुजरा जाए, क्योंकि उस देश का संपूर्ण इतिहास आपको लोक नृत्यों और लोक गीतों की वीथियों में अंकित मिलेगा।'**[5]

डॉ. सुरेश गौतम अपने एक निबंध में लिखते हैं – 'लोक गीत 'आर्येत्तर सभ्यता की वेदश्रुति' (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी), 'समूची संस्कृति के पहरेदार' (महात्मा गांधी), 'किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को प्रदीप्त करने वाली सुरीली बानगी' (डॉ. नंदलाल कल्ला) है। **राष्ट्र जीवन की सत्यकथा जानने का सबसे प्रामाणिक मार्ग लोक गीत ही हैं। मध्य प्रदेश के करमा जाति के गीतों में उल्लेख है कि यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहो तो मेरे गीतों को सुनो। यही सत्यसूत्र है मनुष्य की हृदय-वीथियों से निकलकर राष्ट्र को जानने समझने का।'**[6]

लोक गीतों का हर नजरिए से अक्षुण्ण महत्व है। ऐतिहासिक दृष्टि हो या पौराणिक हो अथवा सांस्कृतिक, राजनीतिक हो या सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक,

गीत रूपी अनुपमेय रिक्थ था। अपने इसी रिक्थ के बल पर हमने अपने कठिन समय से पार पाया। अपने अंधकारमय पथ पर लोक गीतों की प्रकाशमय मशाल लेकर हर भारतीय अपनी संस्कृति, अपनी अस्मिता को सँजोने में प्रयासरत रहा । तमाम कठिनाइयों के बावजूद वह इन्हीं लोक गीतों से संबल पाकर पुनः-पुनः अपने उठकर सतत अग्रसरित होता रहा।

धार्मिक, नैतिक आदि सभी दृष्टियों से लोक गीत भारतीय मानस का प्राणतत्व हैं। भारतीय संस्कृति से अपरिचित विदेशी लोग यह देखकर दंग रह जाते हैं कि इस देश में भिन्न-भिन्न धर्मों, संप्रदायों, देवी-देवताओं, भौगोलिक भिन्नता और तो और जहाँ 'कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी', ऐसी विकट विभिन्नताओं के बावजूद यह देश एकता के सूत्र में बँधा कैसे है? हजार वर्ष की राजनीतिक गुलामी के दुर्धर्ष कालखंड के बावजूद आर्थिक दृष्टि से विपन्न रहने के बावजूद हम भारतीय कैसे अपनी अस्मिता को, अपने वजूद को सँभालकर रखे हुए हैं? विश्व की अनेकानेक सभ्यताएँ काल के थपेड़ों से आहत होकर काल के गाल में समा गईं, मगर जैसा कि कवि इकबाल लिखते हैं कि -

'यूनान-ओ-मिस्र-ओ-रोमा, सब मिट गए जहाँ से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशाँ हमारा,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

तो आखिर वह कौन-सी बात है कि हम आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं? हमने काल के कपाल पर नर्तन करते हुए न केवल अपने अस्तित्व को बचाया है, अपितु अपने अतीत की आधारभूमि पर अपने भविष्य की मजबूत आधारशिला भी रखी है। हम ऐसा कर सके तो सिर्फ और सिर्फ इस कारण की हमारे पास हमारी लोक-संस्कृति, लोक-साहित्य, लोक

लोक गीतों के माध्यम से जन-जन का जुड़ाव अपने लोक से बना रहा। विदेशी आक्रांताओं ने देश पर कब्जा करके तरह-तरह के मानसिक अत्याचार यहाँ की भोली-भाली निर्दोष जनता पर किए। अनेक लोगों को गुलाम बनाकर विश्व के दूसरे देशों में जहाँ उनके उपनिवेश थे, वहाँ जबरन मजदूरी करवाने के लिए ले जाया गया। वहाँ एक ऐसा ही गिरमिटिया मजदूर अपनी मातृभूमि भारत को याद करता है -

सुंदर सुभूमि भैया भारत के देसवा से
मोरे प्राण बसे हिम खोह रे बटोहिया।

****

जाऊँ-जाऊँ भैया रे बटोही हिंद देखि आउ
जहंवा कुहुकी कोइली गावे रे बटोहिया।

(रघुवीर नारायण)

भारतीय स्वातंत्र्य-समर में रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, राजगुरु, अशफाक उल्ला खान जैसे अनेक वीरों को अंग्रेजों द्वारा फाँसी देने की घटनाएँ इतिहास में दर्ज हैं, लेकिन जनता जनार्दन अपने लोक गीतों में उनके बलिदान को यूँ रेखांकित करती है -

धन्य-धन्य भगत सिंहा, धन्य तुम हणि।
पाणि को पिजिया वीरा, पाणि को पिजिया।
फांसी हणि गयो वीरा, आजादी को लिजिया।

हल हल आमाँ वीरा, हल हल आमाँ।
आहा ते वीरा कैं फाँसी है, सात बाजी शामा।
आबा न्है गया वीरा, बैकुंठ का धामा।
तै वीरा आया हो वीरां, फूलों का विमाना॥

विदेशी हुकूमत का ऐसा शासन था कि उनकी सत्ता के विरुद्ध कुछ भी अगर प्रकाशित होता था तो वह उसे तुरंत प्रतिबंधित कर देते थे। उनकी सत्ता के विरुद्ध लिखा एक भी शब्द उनके लिए असह्य था। ऐसे में लोक गीतों ने ही सूत्रधार की कमान सँभाली और देश के प्रत्येक जन के मन में राष्ट्र की अस्मिता का जयघोष कर देशभक्ति का बिगुल फूँका –

आज मैं अंतिम युद्ध करूँगी,
लड़े समर में लाल सामने फिर भी नहीं डरूँगी,
स्वतंत्रता की देवी का खप्पर मैं आज भरूँगी,
कट-कट कर फिरंगियों की लाश पै लाश धरूँगी।

लोक गीतों के महत्व को रेखांकित करते हुए पंजाब केसरी लाला लाजपत राय ने श्री रामनरेश त्रिपाठी को लिखे एक पत्र में कहते हैं कि – **'देश का सच्चा इतिहास और उसकी नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।'**[7]

लोकगीतों के संबंध में स्त्री-स्वर अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी का मानना है कि – **'लोक गीतों में स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी, जिन्हें हमने मूर्ख समझ रखा है, उनके दिमाग से ऐसे-ऐसे कवित्वपूर्ण गीत निकलते हैं कि उन पर हिंदी के कितने ही कवियों की रचनाएँ निछावर की जा सकती हैं।'**[8]

स्वाधीनता के समर में राष्ट्रभक्ति की भावनाओं को जगाने के लिए अनेक लोक गीतों में नारी शक्ति का आह्वान देखने को मिलता है –

हो गई भारी हानि चेतो रे भारत की नारी
भारत नारी हो भारत की नारी
आलस औ निद्रा त्यागो हाँ निद्रा त्यागो
कैसी सोई चद्दर तान के तोरी भारत नारी।

सामाजिक दृष्टि से भी लोकगीतों का महत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक ओर सामाजिक परंपराएं व संस्कार हैं तो दूसरी ओर सामाजिक कुप्रथाएँ यथा- अनमेल विवाह, बाल-विवाह, बहु-विवाह, अंधविश्वास आदि का चित्रण इन गीतों की विशिष्ट विशेषता है । निम्नांकित लोक गीत में अनमेल विवाह पर कितना सटीक व्यंग्य किया गया है –

बरहै बरिसवा कै मोरि रंगरेली असिया बरस के दमाद
निकरि न आवै तू मोरि रंगरेली अजगर ठाढ़ दुवार
बाहर किचकिच आंगन किचकिच बुढ़ऊ गिरे मुँह बाय
सात सखी मिलि बुढ़ऊ उठावैं बुढ़ऊ क सरग देखाय।

इसी प्रकार दहेज-प्रथा एक सामाजिक कोढ़ है, जिसका एक सभ्य समाज में कोई स्थान नहीं हो सकता है। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि जब हम उन्नति के पथ पर सतत अग्रसरित हो रहे हैं, तब हमारे समाज में ऐसी कुप्रथा का प्रचलन निहायत निंदनीय है। दहेज न दे पाने के कारण न जाने कितनी बेटियाँ काल के गाल में जबरन दहेज लोभियों के द्वारा फेंक दी जाती हैं। यही नहीं, दहेज देने का सामर्थ्य न होने के कारण कई बच्चियों को या तो जन्म ही नहीं लेने दिया जाता, उनकी गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है; या तो जन्म के बाद मार दिया जाता है। यही कारण है कि आज देश में लिंगानुपात में भारी असमानता देखने को मिलती है। एक लोक गीत में दहेज-प्रथा के संबंध में एक माँ अपनी बेटी से कहती है–

जेहिरे दिन ऐ बेटी तोहरो जनमवां, सोनवा सकल पीले असुरे
जेहि दिन.....हमरे सिरे बेसहलू गरीरे...
पापी दहेजवा के बादर करेजवा, कितनिन के लूटल सिंगार हे,
बाबु कैसन है रितिया तोहार।

लोक गीतों में समाज व्यवस्था का बड़ा ही सुरुचिपूर्ण और यथार्थ अंकन मिलता है। समाज की प्रत्येक जाति के अपने-अपने लोक गीत हैं, यथा- अहीर/यादव (बिरहा, लोरिक), कुम्हार एवं कहार (कहरवा), पासी (पासिओटा), मुसहर (दीनाभदरी गीत), बढ़ई (गोपी ठाकुर), दुसाध (पचरा) आदि। यही नहीं, खेती का काम

करते हुए किसान अपनी शारीरिक थकावट को दूर करने के लिए, अपना मन बहलाने के लिए अलग-अलग लोक गीत, यथा- रोपाई करते समय रोपनी गीत, निराई करते समय सोहनी गीत, कटाई करते समय कटनी आदि गाते हैं। रोपनी लोक गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

रिमझिम बरसे पनिया, आवा चली धान रोपै धनिया
भरि जइहैं कोठिला ये धनिया, आवा चली धान रोपै धनिया।

लोक गीतों में शोषित किसानों के जीवन का भी यथार्थ अंकन मिलता है, जो न केवल उनकी दयनीय आर्थिक स्थिति को भाषित करता है, उनकी दयनीय सामाजिकता को भी भाखता है। लोक गीतों में जीवन के यह दयनीय बिंब हृदय के मर्म को भेदने वाले हैं-

देसवा के सब धन धान, बिदेसवा में जाए रहे
महंगी पढ़त हर साल, कृषक अकुलाय रहे।

लोक गीतों के माध्यम से पारिवारिक संबंधों की व्याख्या, संस्कारों का महत्व, तीज-त्योहार, व्रत, गंगा-तुलसी महत्व, राम और कृष्ण से जुड़े पौराणिक आख्यानों को लोक गीतों में बड़ी खूबसूरती के साथ पिरोया गया है। एक अवधी लोक गीत में राम नाम को सुमिरते हुए राम-भक्त कहता है -

हमरे तउ रामइ राम धन खेती ।।टेक ।।
पहिले पहिल हम खेती जउ कीना
गंगा जमुनवा की रेती ।।टेक ।।
मन कर बैला सुरति हरवरवा
जब मन चाहय तब हम जोती ।।टेक ।।

वहीं एक लोक गीत में भक्त गोपी अपने आराध्य श्रीकृष्ण को प्यार भरी उलाहना देती हुई कहती है -

तू तो नंदलाल सदा मन कपटी ।।टेक ।।
तब तो कह्या, नैय्या परवा लगउबय
अब कस नैय्या भंवर बिच अरझी ।।टेक ।।
तब तो कह्या हम गगरी भरउबय
अब कस गगरी जमुन घट पटकी ।।टेक ।।
तब तो कह्या हम ब्याहा न करबय
अब कस झुलनी जुलुफ बिच अरझी ।।टेक ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक गीतों के माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ लेखा-जोखा मिलता है। डॉ. सुरेश गौतम लिखते हैं कि - '**आज गाँव के घर-घर में यदि लोक गीतों की गूँज नहीं होती, उसके रस की मादकता जनता के हृदय को आत्मविभोर नहीं करती तो संभवतः साहित्य को संस्कृति का प्रतीक बनने का श्रेय न मिल पाता और न मानव की मानवता ही सुरक्षित रह पाती। साहित्य लोक गीतों से अनुप्राणित होकर स्वाभाविकता प्राप्त करता है। वही साहित्य सृष्टा बन सकता है, क्योंकि लोक गीत अपने आप में पूर्ण हैं, कृत्रिमता से दूर हैं ।**'[9] इन लोक गीतों में हमारा हजार वर्षों का सांस्कृतिक इतिहास सुरक्षित है। ये गीत हमारी आस्था-विश्वास व एकता के शाश्वत प्रतीक हैं। जब भी अपने संघर्षों में हम थके हैं, इन गीतों ने हमारी जीवट जिजीविषा को पोसा है, हमें जूझने की शक्ति दी है। हमें संघर्षों से पर उतरने का साहस दिया है। ❑

संदर्भ सूची :

1. भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता, संपादक-डॉ. सुरेश गौतम, शब्द सेतु प्रकाशन,दिल्ली-110094, संस्करण-2002, पृष्ठ संख्या-252
2. लोकसंस्कृति की रूपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-1988, पृष्ठ संख्या-8
3. भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता, संपादक-डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ संख्या-253
4. भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता, संपादक-डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ संख्या-26
5. उद्धरित, भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता, संपादक-डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ संख्या-334
6. भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता, संपादक-डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ संख्या-26
7. कविता कौमुदी, रामनरेश त्रिपाठी,भाग-5, पृष्ठ संख्या-17
8. कविता कौमुदी, रामनरेश त्रिपाठी,भाग-1, पृष्ठ संख्या-29
9. भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता, संपादक-डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ संख्या-05

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

भारतीय जाति व्यवस्था में अन्य पिछड़े वर्ग की स्थिति

अविनाश जाटव
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
डीएसबी परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
8445578388
avinashjatav1996@gmail.com

प्रो. नीता बोरा शर्मा
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
डीएसबी परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
8126697871

सारांश :

भारतीय समाज की एक विशेषता इसकी जाति-ग्रस्त अर्द्ध-सामंती और पदानुक्रमित प्रकृति है। जाति पर आधारित सामाजिक संबंधों की व्यवस्था कई सदियों से भारतीय समाज की शैली का प्रमुख कारक रही है। सदियों से चली आ रही जातिगत बाधाओं ने समाज के एक वर्ग के सामाजिक अलगाव और आर्थिक उत्पीड़न को उनके दुख और दरिद्रता का कारण बना दिया है। अन्य पिछड़ा वर्ग एक ऐसा वर्ग है, जो दो समुदाय को शामिल करता है, जिसमे हिंदू और गैर-हिंदू दोनों हैं। गैर-हिंदुओं के बीच ओबीसी की पहचान के लिए एक मोटा मानदंड विकसित किया है। (1) सभी अछूतों को किसी भी गैर-हिंदू धर्म में परिवर्तित किया गया और (2) ऐसे व्यावसायिक समुदाय, जिन्हें उनके पारंपरिक वंशानुगत व्यवसाय के नाम से जाना जाता है। जहाँ हिंदू ओबीसी में वे जातियाँ शामिल हैं, जिनकी पारंपरिक सामाजिक और कर्मकांडीय स्थिति अनुसूचित जातियों से ऊपर, लेकिन तथाकथित उच्च जातियों से नीचे रही है। अधिकतर अन्य पिछड़े वर्ग में आने वाली जातियाँ शूद्र वर्ण के पारंपरिक पदानुक्रम के साथ अतिव्यापन की स्थिति में रहती हैं, जिसमें मुख्य रूप से किसान और कारीगर श्रेणी शामिल हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय जाति व्यवस्था के अंतर्गत अन्य पिछड़े वर्ग की स्थिति का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द :

ओबीसी, जाति, वर्ग, भारतीय आदि।

मूल आलेख :

भारत के अन्य दो समूह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विपरीत ओबीसी अलग वर्ग है। ओबीसी अनुसूचित जातियों और जनजातियों की तुलना में काफी अधिक संख्या में हैं, मंडल आयोग का अनुमान है कि ओबीसी भारत की कुल आबादी का लगभग 52 प्रतिशत हैं। **ओबीसी ने भी शूद्रों की तरह कई सामाजिक और**

आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव किया है, फिर भी दोनों समूहों के बीच कुछ भिन्नताएँ हैं।[1] ऐसे कई कारण हैं, जो कि एक वर्ग के रूप में ओबीसी को अनुसूचित जातियों और जनजातियों से अलग मानते हैं : ओबीसी सामाजिक और शैक्षिक रूप से वंचित हैं, लेकिन वे अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूप में सामाजिक अभाव के प्रकार और सीमा से पीड़ित नहीं हैं। संविधान में इनका उल्लेख करने का लक्ष्य अलग-अलग है। **अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संबंध में सदियों के भेदभाव को समाप्त करना और उन्हें मुख्यधारा में लाना है, जबकि ओबीसी के संबंध में इस वर्ग में सामाजिक और शैक्षिक बाधाओं को दूर करना और सरकारी सेवाओं में उनके लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है।**[2]

पारंपरिक जाति व्यवस्था में, ओबीसी को दलितों से ऊपर रखा गया था। इनका आपस में गठबंधन अपने आंतरिक मतभेदों के कारण आसानी से नहीं हो सका है, भले ही उच्च जातियाँ इनकी राजनीतिक विरोधी क्यों न रही हों। इसी तरह, **ओबीसी श्रेणी के तहत, कुछ जातियाँ हैं, जो उच्च स्थान पर हैं, और अन्य जातियाँ निम्न स्थान में काबिज हैं।**[3]

पदानुक्रम और विभाजन के जुड़वा सिद्धांत जाति व्यवस्था को नियंत्रित करते हैं। संक्षेप में, विभाजन का सिद्धांत (पृथककरण, अंतर, विभाजन या प्रतिकर्षण के रूप में भी जाना जाता है) यह दर्शाता है कि कैसे हिंदू समाज कई समूहों और उपसमूहों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक की अलग-अलग विशेषताएँ हैं। पदानुक्रम का सिद्धांत इन समूहों या प्रभागों को उच्च और निम्न के क्रमबद्ध में व्यवस्थित करने को संदर्भित करता है। अक्सर विभिन्न जाति समूहों के बीच पदानुक्रमित संबंधों को ऊर्ध्वाधर संबंधों के रूप में वर्णित किया जाता है, और जाति समूहों को क्षैतिज इकाइयों के रूप में वर्णित किया जाता है। इस प्रकार जाति व्यवस्था के ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज दोनों आयाम हैं। **जहाँ तक ओबीसी को पिछड़ी जातियाँ मानने की बात है तो उनके लिए ये दोनों सिद्धांत शामिल होते हैं।**[4]

हालाँकि 'पिछड़ा' वर्ग शब्द का प्रयोग 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही किया जा रहा था, लेकिन आजादी के बाद भी इसे अखिल भारतीय स्तर पर कोई निश्चित संदर्भ प्राप्त नहीं हुआ था। यह वाक्यांश बॉम्बे और मद्रास की रियासतों के साथ-साथ कोल्हापुर और मैसूर में भी प्रसिद्ध था, जिसने 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में 'पिछड़े वर्गों' के लिए अधिमान्य उपचार स्थापित किया था। हालाँकि, 'पिछड़े वर्ग' का प्रयोग कुछ संदर्भों में व्यापक अर्थ में और अन्य में संकीर्ण अर्थ में किया गया था। ओबीसी शब्द आजादी के समय गैर-अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए 'पिछड़े' पदनाम के रूप में प्रचलित हुआ। संविधान-निर्माताओं ने इस श्रेणी को मान्यता दी, लेकिन इस मुद्दे पर दबाव डालने के बावजूद यह निर्दिष्ट करने से इनकार कर दिया कि इसमें किन समूहों को शामिल किया जाना है। फिर भी, **यह स्पष्ट रूप से परिकल्पना की गई थी कि दलितों और आदिवासियों के अलावा अन्य पिछड़े समूह अधिमान्य प्रावधानों के लिए पात्र थे और जाति मानदंड इन समूहों की पहचान में भूमिका निभा सकते हैं।**[5]

जाति व्यवस्था में अन्य पिछड़ा वर्ग :

भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत पूर्वोदाहरणों को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की पहचान अपेक्षाकृत आसान रही है। कुल मिलाकर अनुसूचित जातियाँ पूर्व-अछूत या हरिजन जातियाँ हैं। तथापि ओबीसी की पहचान कठिनाइयों से भरी हुई है। ब्रिटिश शासन के दौरान अलग-अलग प्रांतों और राज्यों में अलग-अलग समय में सरकारी आदेशों के तहत कई गैर-अस्पृश्य जातियों को पिछड़ा वर्ग के रूप में पहचाना गया था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद राज्य सरकारें, मुख्य रूप से दक्षिणी और पश्चिमी भारत में विशेष रूप से नियुक्त आयोगों के माध्यम से ओबीसी की पहचान करने का प्रयास किया गया है। हालाँकि अखिल भारतीय स्तर पर उन्हें अनुच्छेद 340 के तहत राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक आयोग द्वारा पहचाना जाना है। **काका कालेलकर पहला आयोग व मंडल आयोग नियुक्त होने वाला दूसरा ऐसा आयोग था।**

इन सभी आयोगों की रिपोर्ट और सिफारिशें बेहद विवादास्पद रही हैं।[6]

शब्द 'वर्ग' और 'जाति' के अलग-अलग अर्थ हैं, शब्दार्थ की दृष्टि से समकक्ष नहीं हैं। **'वर्ग' शब्द का क्या अर्थ है, इस पर सामाजिक वैज्ञानिकों में असहमति है। विशेष रूप से, गैर- मार्क्सवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोण के बीच उल्लेखनीय अंतर हैं।**[7] न्यायपालिका ने 'वर्ग' और 'जाति' के बीच शब्दार्थ समतुल्यता के सवाल पर बहुत ध्यान दिया है। इसके रुख को पी. राजेंद्रन बनाम मद्रास राज्य (1968) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के निम्नलिखित उद्धरण से समझा जा सकता है: 'एक जाति भी नागरिकों का एक वर्ग है।' यहाँ 'वर्ग' शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक और सामान्य अर्थ में किया गया है, जिसका अर्थ है समान गुण रखने वाले और एक सामान्य नाम या 'वर्ग' के तहत एक साथ समूहीकृत किए गए कई व्यक्ति। इस अर्थ में महिलाएँ, बच्चे, पिता, माता, डॉक्टर, वकील आदि भी वर्ग हैं। इसलिए पिछड़े वर्गों पर चर्चा करते समय सावधान रहना चाहिए कि वे 'वर्ग' शब्द का उपयोग कैसे करते हैं। विशेष रूप से **किसी शब्द के अर्थ को सूक्ष्मता से बदलने की प्रवृत्ति को रोकना महत्वपूर्ण है।**[8]

हालाँकि अदालतें आम तौर पर 'वर्ग' के लिए 'जाति' शब्द के इस्तेमाल की अनुमति देती हैं, लेकिन वे किसी भी जाति को 'पिछड़ा वर्ग' मानने के लिए विशिष्ट शर्तें तय करती हैं। राजेंद्रन मामले (1968) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा, 'यदि कोई जाति समग्र रूप से सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ी है तो ऐसी जाति के पक्ष में इस आधार पर आरक्षण दिया जा सकता है कि वह नागरिकों का सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा वर्ग है। सुप्रीम कोर्ट ने सागर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के संदर्भ में 'वर्ग' को परिभाषित करते हुए कहा कि यह लोगों के एक सजातीय समूह को संदर्भित करता है, जो कुछ समानताओं या सामान्य लक्षणों के कारण एक साथ समूहीकृत होते हैं और जिन्हें, पद, व्यवसाय, निवास, जाति, धर्म, और इसी तरह स्थिति जैसे कुछ सामान्य गुणों से पहचाना जा सकता है। 1971 के एक फैसले में पेरियाकरुप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने उपरोक्त दोनों विचारों को दोहराया। बलराम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1972) के मामले के फैसले में सुप्रीम कोर्ट एक कदम आगे बढ़ गया, जब उसने कहा कि **एक जाति 'पिछड़ा वर्ग' हो सकती है, भले ही इसमें कुछ व्यक्ति सामाजिक और**

शैक्षिक रूप से सामान्य औसत से ऊपर हों।[9]

भारत के संविधान का अनुच्छेद 16(4) 'नागरिकों के किसी भी पिछड़े वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का प्रावधान करता है, जिसका राज्य की राय में राज्य के तहत सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।' इस अनुच्छेद में 'वर्ग' शब्द की व्याख्या ने मंडल फैसले से पहले सुप्रीम कोर्ट में ही अलग-अलग राय को जन्म दिया था। समाजशास्त्र में 'वर्ग' एक खुली श्रेणी है, जबकि 'जाति' एक बंद श्रेणी है, जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति की वर्ग स्थिति उसके जीवनकाल के दौरान बदल सकती है, लेकिन किसी व्यक्ति की जाति स्थिति, जो एक जन्म लक्षण है, नहीं बदलेगी। राज्य सरकारों की आम तौर पर हमेशा नहीं तो यह मानसिकता रही है कि 'पिछड़ी जातियाँ' और 'पिछड़ा वर्ग' विनिमेय शब्द हैं।

बालाजी वाद में न्यायमूर्ति गजेंद्रगडकर ने इस तथ्य पर जोर दिया कि संविधान में 'पिछड़ा वर्ग' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, न कि 'पिछड़ी जाति' का। उन्होंने आगे बताया कि मुसलमानों और ईसाइयों के मामले में पिछड़ेपन का जाति परीक्षण विफल हो जाएगा। बहुमत के फैसले में स्वतंत्र-पूर्व भारत में 'वर्ग' और 'जाति' शब्दों के उपयोग का उल्लेख किया गया है कि 'दलित वर्ग' शब्द का प्रयोग 'अछूतों' के संदर्भ में किया गया था और 1925 में बॉम्बे प्रांत में 'पिछड़े वर्ग' को ब्राह्मण, मारवाड़ी, पारसी, बनिया और ईसाइयों को छोड़कर सभी के रूप में परिभाषित किया गया था।

बहुमत के फैसले में कहा गया कि यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि 'वर्ग', 'जाति' के विपरीत है या कि एक जाति एक वर्ग नहीं हो सकती है या किसी जाति को कभी भी नागरिकों के पिछड़े वर्ग के रूप में नहीं लिया जा सकता है। संविधान सभा की बहसों, राजेंद्रन, त्रिलोकीनाथ द्वितीय, बैरम और पेरियाकरुप्पन मामलों पर ध्यान देने के बाद बहुमत की राय दोहराई गई : **एक जाति एक सामाजिक वर्ग के अलावा और कुछ नहीं है - एक सामाजिक रूप से सजातीय वर्ग। यह एक व्यावसायिक समूह भी है, जिसमें अंतर यह है कि इसकी सदस्यता वंशानुगत होती है। एक का जन्म इसी से होता है। इसकी सदस्यता अनैच्छिक है।**[10]

एक जाति को लोगों का एक नामित समूह माना जाता है। हालाँकि जैसे ही कोई जातियों की पहचान करना और उन्हें सूचीबद्ध करना शुरू करता है, जाति के नाम समस्याएँ खड़ी कर देते हैं। ये नाम जाति व्यवस्था की गतिशीलता का हिस्सा हैं। वे जितना छिपाते हैं, उतना ही प्रकट करते हैं। प्रत्येक जाति के लिए नाम न केवल जाति समूह की पहचान का प्रतीक है, बल्कि उसकी स्थिति का भी प्रतीक है। कोई भी जाति, जो उससे जुड़े नाम से संकेतित है, उससे अधिक उच्च स्थिति का दावा करने का प्रयास करेगी, वह उच्च स्थिति को दर्शाने वाले एक अलग नाम का उपयोग करने का प्रयास करेगी। इसी प्रकार उच्च स्तर वाली जातियाँ निम्न स्तर वाली जाति को नया नाम देने से इनकार कर देंगी। अक्सर एक जाति के विभिन्न वर्गों के भी अलग-अलग नाम होते हैं। संक्षेप में किसी को यह नहीं मानना चाहिए कि प्रत्येक जाति का नाम एक ही जाति को इंगित करता है या कि प्रत्येक जाति का एक ही नाम है।

जातियों के बीच और प्रत्येक जाति के भीतर असमानता के दोहरे तथ्यों का पिछड़े वर्गों (निश्चित रूप से जातियों) के लिए आरक्षण की नीति के कार्यान्वयन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। **जब अंग्रेजों ने पहली बार आरक्षण की नीति लागू की थी, तब भी विभिन्न जातियों में और प्रत्येक जाति के भीतर धन, आय, साक्षरता, अधिकार आदि का असमान वितरण मौजूद था।**[11]

जाति व्यवस्था में अन्य पिछड़े वर्ग की स्थिति की जाँच के लिए यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि पिछड़ेपन का सामान्य मानदंड क्या है? अनुसूचित जातियों के मामले में अस्पृश्यता एक सामान्य मानदंड है। क्या ओबीसी की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने के लिए कोई स्पष्ट मानदंड है या हो सकता है? इस संबंध में ध्यान देने योग्य मुख्य बात ओबीसी शब्द के अंतर्गत

सम्मिलित जातियों का व्यापक वर्णक्रम है। निचले सिरे पर ऐसी जातियाँ हैं, जो लगभग 'अछूत' और बहुत गरीब हैं, जबकि शीर्ष पर ऐसी जातियाँ हैं, जो धनी और शक्तिशाली हैं और अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ जीवन शैली रखती हैं। मंडल आयोग द्वारा स्वीकृत पिछड़ेपन के ग्यारह संकेतकों में से एक संकेतक है 'अन्य लोगों द्वारा सामाजिक रूप से पिछड़ा मानी जाने वाली जातियाँ/वर्ग।' आयोग ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि ये 'अन्य' कौन हैं। **जाति पदानुक्रम में प्रत्येक जाति अपने से नीचे के सभी लोगों को पिछड़ा मानती है और इसलिए किसी विशेष जाति के पिछड़ेपन के बारे में सभी 'अन्य' लोगों से सहमति से उत्तर देने के लिए कहना अवास्तविक है।**[12]

जैसा कि डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा की बहस के दौरान कहा था- 'पिछड़ा समुदाय वह समुदाय है, जो सरकार की राय में पिछड़ा है।' हालाँकि, केंद्र और राज्य दोनों सरकारें यह काम आयोगों को सौंप देती हैं। इन आयोगों के प्रति उचित सम्मान के साथ, जिनमें से कुछ में सामाजिक वैज्ञानिकों को भी सदस्य के रूप में शामिल किया गया है या उन्हें सलाहकार के रूप में इस्तेमाल किया गया है - मैं यह कहना चाहूँगा कि इन आयोगों ने जातिगत इकाइयों को एक ऐसी कठोरता के साथ निवेश करने की कोशिश की है, जो वास्तव में उनके पास नहीं है। संयोगवश, **प्राचीन काल से हिंदू कानून निर्माताओं ने भी ऐसा ही करने का प्रयास किया है, लेकिन सौभाग्य से सफल नहीं हुए हैं।**[13]

भारतीय समाज सामाजिक समूहों में विभाजित है, आनुवंशिकता स्तरीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार बनी हुई है। ऐसे समूहों में पदानुक्रम के शीर्ष पर रहने वालों को शिक्षा, नौकरशाही और राजनीतिक शक्ति तक शीघ्र पहुँच प्राप्त थी और ऐसे समूहों को संचयी लाभ थे। पदानुक्रम के निचले भाग में मौजूद अन्य लोगों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और सेवा जातियों के बीच, समाज में आदेशात्मक पदों तक पहुँच कम थी और उन्हें संचयी नुकसान का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप **भारतीय समाज में अभिजात वर्ग मुख्य रूप से कुछ सामाजिक समूहों, ब्राह्मणों और उच्च जाति के हिंदुओं से बना है।**[14]

भारत के मुसलमानों के बीच भी हिंदू जाति संरचना की तरह वंश-आधारित सामाजिक स्तरीकरण देखने को मिलता है। भारत की जनगणना 1901 में 133 सामाजिक समूहों को सूचीबद्ध किया गया था, जो पूर्ण या आंशिक रूप से मुस्लिम थे। भारत में समकालीन मुस्लिम समाज को तीन प्रमुख समूहों में बाँटा गया है:- (1) अशरफ, जो अरब, फारस, तुर्किस्तान या अफगानिस्तान जैसी विदेशी भूमि में अपनी उत्पत्ति का पता लगाते हैं। उनमें उच्च जाति के हिंदू भी शामिल हैं, जो इस्लाम में परिवर्तित हो गए, जैसे कि उत्तर प्रदेश में मुस्लिम राजपूत; (2) अजलाफ या मध्य-जाति धर्मांतरित जैसे जोलाहा (बुनकर), धूनिया, कुल्लू, कुंजरा (सब्जी-विक्रेता), हज्जाम (नाई), दर्जी जैसे, जिनके व्यवसाय कर्मकांड से स्वच्छ माने जाते हैं; (3) अरजल या पूर्ववर्ती अछूत जातियों से परिवर्तित।[15]

सामान्य रूप से ओबीसी और विशेष रूप से मुस्लिम ओबीसी के उद्भव और विकास का पता लगाने के बाद यह स्पष्ट है कि संवैधानिक अनिश्चितता के बावजूद ओबीसी को आधिकारिक बोलचाल में एक श्रेणी के रूप में संदर्भित कर सकते हैं :

(1) हिंदू जाति पदानुक्रम में मध्य स्थिति पर कब्जा करने वाले जाति समूह। (2) मुस्लिम मामले में, इसका तात्पर्य व्यावसायिक समूहों से है, जो हिंदू ओबीसी के समान व्यवसाय वाले हैं और अनुसूचित जाति के समकक्ष मुस्लिम भी हैं। **समाजशास्त्रीय श्रेणियों के संदर्भ में, अजलाफ और अर्जल, मुस्लिम ओबीसी के श्रेणी को शामिल करते हैं।**[16]

निष्कर्ष :

भारत के संविधान के अनुसार ओबीसी की पहचान किसी जाति/समुदाय के शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर की जाती है। सामान्य रूप से ओबीसी में बड़ी संख्या में असमान और पदानुक्रमित सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में रखी गई जातियाँ

शामिल हैं : जमींदार मध्यम जातियाँ/मध्यस्थ जातियाँ/मध्यम किसान/कुलक/धनी किसान, साथ ही पारंपरिक जजमानी में सेवाएँ प्रदान करने वाली जातियाँ (सेवा जातियाँ और कारीगर, सीमांत/छोटे किसान, पारंपरिक खेतिहर मजदूर)। ओबीसी श्रेणी में रखी गई कारीगर जातियाँ ऐतिहासिक रूप से अपना आकार बढ़ाने में असमर्थ थीं। उनके पास अपनी लघु-स्तरीय परियोजनाओं को बड़ी इकाइयों में बदलने के लिए प्रारंभिक पूँजी और साक्षरता की कमी थी, जबकि उच्च-जाति श्रेणी में रखी गई व्यापारिक जातियाँ व्यवसाय के रूप में व्यवसाय पर हावी होने के लिए अपने संपर्क और पूँजी का उपयोग करने में सक्षम थीं। 1970 के दशक के मध्य से विभिन्न राज्यों, विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार और कर्नाटक में ओबीसी की पहचान की माँग उठी, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय स्तर पर मंडल आयोग की स्थापना हुई। 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट के कार्यान्वयन के साथ ही कई जातियों को राष्ट्रीय स्तर पर ओबीसी के रूप में पहचाना गया। 1970 के दशक में ओबीसी की पहचान और उनके लिए सकारात्मक कार्रवाई की नीतियों के कार्यान्वयन ने इस समूह के भीतर विविधता के सवाल को सामने ला दिया और ओबीसी श्रेणी के भीतर सबसे वंचित जातियों की पहचान करने की आवश्यकता पैदा हुई ताकि उनको सकारात्मक कार्रवाई का लाभ दिया जा सके। जब से भारत के संविधान में अन्य पिछड़े वर्ग के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं, तब से अन्य पिछड़े वर्ग के मुद्दे ने अधिक न्यायिक ध्यान आकर्षित किया है। ओबीसी के लिए राज्य की कार्रवाई में वृद्धि हुई है और अदालतों में इस विषय में कार्रवाई और निर्णय सुनाने के मामले भी बढ़े हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. वार्ष्णेय, आशुतोष. बैटल्स हाफ वोन: इंडिआस इम्प्रोबेब्ल डेमोक्रेसी. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ-76.
2. शौरी, अरुण. फॉलिंग ओवर बैकवर्डस. हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स: नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ-194.
3. वार्ष्णेय, आशुतोष. बैटल्स हाफ वोन: इंडिआस इम्प्रोबेब्ल डेमोक्रेसी. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ-70.
4. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ-178.
5. वाजपेयी, रचना. डिबेटिंग डिफरेंस: ग्रुप राइट्स एंड लिबरल डेमोक्रेसी इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस: नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ-198.
6. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ- 175
7. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ- 176
8. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ- 176
9. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ- 177
10. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नी दिल्ली, 1996, पृष्ठ-228
11. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नी दिल्ली, 1996, पृष्ठ-179
12. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ-190
13. श्रीनिवास, एम.एन. कास्ट: इट्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी अवतार. पेंगुइन बुक्स: नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ-193
14. चलम, के.एस. कास्ट बेस्ड रिजर्वेशन एंड ह्यूमन डेवलपमेंट इन इंडिया. सेज पब्लिकेशनस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, 2007, पृष्ठ-63
15. महाजन, गुरप्रीत व जोधका, सुरिंदर एस. रिलिजन, कम्युनिटी एंड डेवलपमेंट. रूटलेज पब्लिशर्स: नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-235
16. महाजन, गुरप्रीत व जोधका, सुरिंदर एस. रिलिजन, कम्युनिटी एंड डेवलपमेंट. रूटलेज पब्लिशर्स: नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-236

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में निर्मित ध्वनि चित्र

दिगंत बोरा

सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
जे.डी.एस.जी. महाविद्यालय
बोकाखात, असम
8473813639
borahd52@gmail.com

शोध सार :

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकारों में से हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यास धारा का प्रवर्तन किया है। हिंदी साहित्य का पहला आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' है। रेणु जब ग्राम्य जीवन को अपने कथा का आधार बनाते हैं तो उसकी भाषा भी उसी ग्रामीण जीवन की ही उपज होती है। उनकी अभिव्यक्ति की शैली भी ग्राम्य जीवन के यथार्थ पर ही आधारित है। कहानीकार रेणु ने अपनी कहानियों में ध्वनि पर आधारित बिंब का भी निर्माण किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में ध्वनियों का इतना सार्थक प्रयोग किया है कि ध्वनि की आवाज को पढ़कर ही पाठकों के सामने अनेक चित्र उपस्थित हो जाते हैं। रेणु ने जीव-जंतुओं की ध्वनि से लेकर वाद्ययंत्र की ध्वनि का भी चित्रण किया है। रेणु ने कहीं पर हँसी का ध्वनि चित्र प्रस्तुत किया है तो कहीं पर बालक के रोने की आवाज को। रेणु ने चिड़ियों की आवाज, बरसात की आवाज, बादल का गरजना आदि का ध्वनि बिंब प्रस्तुत किया है। रेणु ने अपनी रचनाओं में शब्द चित्र की सहायता से लोक जीवन को रूप प्रदान करने का कार्य किया है। रेणु ने जहाँ विविध कथा, उपाख्यानों, मिथकों को जोड़कर कहानी की संरचना को नवीन रूप प्रदान किया है, वहाँ विविध प्रकार के बिंबों, शब्द चित्र, ध्वनि चित्र आदि के प्रयोग से कहानी के शब्दों को बुना है। अपनी रचनाओं की संरचना में विविध प्रकार के नाद, सुर, ताल, ध्वनियों का सार्थक प्रयोग किया है। उनकी प्रतिभा सबसे अधिक श्रव्य बिंबों तथा ध्वनि चित्रों के निर्माण में झलकती है।

बीज शब्द :

ध्वनि चित्र, ध्वन्यात्मकता, बिंब, संरचना, लोकजगत आदि।

प्रस्तावना :

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के महान साहित्यकारों में से हैं। रेणु के साहित्य में पाठकों को रस के साथ-साथ तत्कालीन समाज तथा जीवन यथार्थ भी देखने को मिलता है। बदलते हुए यथार्थ के कारण रेणु

के साहित्य में लोगों की बदलती हुई रुचि, पारिवारिक विघटन आदि की झलक देखने को मिलती है। उनके साहित्य का क्षेत्र लोक जीवन से लेकर शहर, कस्बे तक का जीवन है। उपन्यास की जो कहानी है, उनकी कहानियों की भी वही कहानी है। दोनों में कहीं भी अंतर नहीं है। 'हिंदी के आंचलिक साहित्य में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण हिंदी साहित्य में आंचलिक वार्ता ध्वनियों को शब्दों में पिरोने वाले साहित्यकार हैं रेणु। लोक जगत की ध्वनि संवेदना को साहित्य में उकेरने का कार्य रेणु ने किया। छायावादी कवियों ने पशु-पक्षियों की ध्वनियों को शब्द रूप दिया है, परंतु रेणु ने पशु-पक्षियों के स्वरों के साथ-साथ गाँवों की औरतों की गालियाँ, मेला देखने के लिए जाने वाली गाड़ियों की आवाज, साड़ियों की सरसराहट आदि को भी शब्द रूप दिया है। **कथा साहित्य में रूप गठन का ही नहीं, शब्द गठन का भी महत्व है। इसमें भाषा की रूपायण शक्ति के साथ-साथ चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, गतिमयता, एवं परिस्थितियों का भी बोध कराने की क्षमता देखने को मिलती है। केवल लोक गीत और मिथक, दंत कथाओं से ही नहीं, बल्कि निरर्थक पशु-पक्षियों की बोली से लेकर वाद्य यंत्रों की आवाजों से भी गहरे अर्थ ग्रहण की क्षमता रेणु में है।'**[1]

मूल विषय :

कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कहानी 'बट बाबा' में निरधन साहू की खाँसी का ध्वन्यात्मक वर्णन किया है, जिसे पढ़कर पाठकों के सामने उस बूढ़े आदमी की खाँसी तथा स्वास्थ्य का चित्र अपने आप ही उपस्थित हो जाता है। '**कुछ बोलते ही खाँय खाँय करने लगता है।**'[2] तो इसी कहानी में रेणु ने जमींदार के लोगों द्वारा वट वृक्ष पर कुल्हाड़े चलाने की आवाज का वर्णन किया है -'**धड़-धड़-खड़-खड़-खड़ाक**'[3] तो काटे जाने के बाद वट वृक्ष के गिरने की ध्वनि का वर्णन है- '**धड़-धड़-धड़-धड़ाम**'[4]।

कहानीकार रेणु ने अपनी कहानियों में वाद्य यंत्रों की ध्वनियों का चित्रण किया है। उन्होंने कहीं पर ढोलक की आवाज का वर्णन किया है तो कहीं पर मृदंग, नगाड़े की आवाजों को रूप प्रदान किया है। उन्होंने 'पहलवान की ढोलक' कहानी में ढोलक की आवाज को शब्द रूप प्रदान किया है। इस तरह का वर्णन कोई वाद्य यंत्र का विशेषज्ञ ही करने में सक्षम है। रेणु ने मलेरिया और हैजे से पीड़ित गाँव में रात्रि की भीषणता को ललकारते हुए ढोलक की आवाजों का वर्णन किया है, जो संध्या से लेकर सुबह तक बजती रहती थी और लोगों की जिंदगी में आशा का संचार करती थी। '**संध्या से लेकर प्रातः तक एक ही गति से बजती रहती - 'चट्-धा, गिड़्-धा, चट्-धा, गिड़्-धा । अर्थात् - आ जा भिड़जा। बीच-बीच में 'चटाक-चट्-धा, चटाक-चट-धा यानी- उठाकर पटक दे।**'[5] इन ध्वनियों से रेणु ने ढोलक की आवाजों से लोगों के जीवन में जीने की आशा का संचार करने का प्रयास किया है। इन ध्वनि को पढ़कर पाठकों के मन में भी ढोलक की आवाज का चित्र अपने आप उपस्थित हो जाता है। ठीक इसी प्रकार इस कहानी में ही दंगल के मैदान में ढोलक की आवाजों को शब्द चित्र प्रदान किया है। एक ही ढोलक की आवाज दंगल के मैदान में पहलवान का उत्साह बढ़ाती है। कुश्ती में अपने विरोधी को पराजित करने के लिए प्रेरित करता है। '**ढाक्-ढिन्ना, ढाक्-ढिन्ना..... अर्थात् वाह पट्ठे, वाह पट्ठे!!..... चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा अर्थात मत डरना! मत डरना!!**'[6] इन ध्वनि के वर्णन से कुश्ती का मैदान सजीव हो उठता है। 'टोंटी नैन का खेल' कहानी में कीर्तनियों की ढोलक और करताल से निकलती ध्वनि को शब्द रूप प्रदान किया है। '**धाक धिन्ना, ताक धिन्ना.. छनन छनन, छुम्म छन्नन**'।[7] तो इसी कहानी में पायलों की ध्वनि को भी शब्द रूप प्रदान करने में सक्षम हुए हैं - '**छन्न छन्न...छनाक्**'।[8] 'रसप्रिया' कहानी में रेणु ने मृदंग की आवाजों को शब्द रूप प्रदान किया है। मृदंग बजाकर पंचकौड़ी भीख माँगता है- '**धा तिंग धा तिंग।**'[9] इसी कहानी में रेणु ने फूटी हुई भाथी से निकलती हुई आवाज को भी शब्द रूप प्रदान किया है - '**सों य, सों य!**'[10] रेणु ने 'तीसरी कसम' कहानी में नगाड़े की आवाज को शब्द चित्र रूप प्रदान किया है। नगाड़े की आवाज को सुनने वाले व्यक्तियों के मन में भी नगाड़े बजने लगता है। नौटंकी वाले हीराबाई के आगमन की सूचना लोगों

तक पहुँचाने के लिए नगाड़े के साथ घोषित करते हैं- '**.....किर्र...र्र..र्र..... कड़ड़ड़ड़ड़र्र..र्र..घन-घन-धड़ाम----।**'[11] नगाड़े की आवाज सुनकर लोगों का मन भी आनंद तथा उत्साह से नगाड़े की तरह बजने लगता है। 'लाल पान की बेगम' कहानी में रेणु ने बैलों के गले की घंटी की ध्वनि को शब्द रूप प्रदान किया है। '**टुनुर-टुनुर-सुनते ही बिरजू को सड़क से जाती हुई बैलगाड़ियों की याद हो आयी...झुनुर-झुनुर बैलों की झुनकी तुमने सु.....।**'[12] इन ध्वनि को सुनने के पश्चात बिरजू के मन में जाती हुई बैलगाड़ी का चित्र अपने आप उभरने लगता है।

'पहलवान की ढोलक' कहानी में रेणु ने बाघ की आवाज का भी शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। लुट्टन की हाउ हाउ आवाज को सुनकर लोग उसे राजा का बाघ कहा करते थे। लुट्टन कुश्ती में अपना प्रतिद्वंद्वी न पाकर चिड़ियाखाने में बंद बाघ की तरह दहाड़ता रहता था। '**चिड़ियाखाने में, पिंजड़े और जंजीरों को झकझोड़कर बाघ दहाड़ता 'हाँ ऊ, हाँ ऊ!! जिसे सुनने वाले कहते- 'राजा का बाघ बोला'।**'[13] 'रखवाला' कहानी में रेणु ने उजरी गाय की अपनी सद्य:प्रसूता बछड़े के लिए पीछे-पीछे भागकर प्रेम तथा ममता से निकालती आवाजों को शब्द चित्र प्रदान किया है। 'दूध से सफेद बछड़े को गोद में लेकर पूनो आगे आगे भागी जाती थी, पीछे-पीछे सद्य:प्रसूता उजरी '**हुँक हुँक हिंब हिंब' करती दौड़ी जाती थी।**'[14] इस ध्वनि के माध्यम से रेणु ने एक माँ की अपने बछड़े के प्रति प्रेम को व्यक्त करने के लिए ध्वनि बिंब का प्रयोग किया है। 'तीसरी कसम' कहानी में रेणु ने बैलों के डिकरने की आवाजों को शब्द चित्र रूप प्रदान किया है। '**उनके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से डिकरने लगा - बाँ-आँ।**'[15] 'रसप्रिया' कहानी में रेणु ने आसमान में तैरते हुए चील की टिंहकारी को शब्द रूप प्रदान किया है - '**आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिंहकारी भरी - टिं ....ई....टिं-हि-क!**'[16] कहानीकार रेणु ने ध्वनि बिंब द्वारा ही गाय-बैलों की समझदारी को व्यक्त किया है। रेणु की कहानी का सलौने किसन को न देखकर उँ-याँ-याँ करते हुए किसन को ढूँढ़ने के लिए भागा जाता है तो शाम को धूप-दीप के समय शंख-ध्वनि के साथ सुर में सुर मिलाते हुए ऊँ-याँ-याँ करता है। 'काक चरित' कहानी में रेणु ने कौए की आवाजों को शब्द रूप प्रदान किया है। इस कहानी में कौआ की ध्वनि के पीछे छिपे लोक विश्वास को सबके सामने स्पष्ट किया है। एक ही कौआ की ध्वनि सुबह किसनलाल अशुभ मानकर कौए को भगाने का प्रयास करता है, थोड़ी देर बाद शुभ समाचार आने के कारण उसी कौआ की ध्वनि को शुभ मानकर बोआली मछली खिलाता है। 'आठ महीने पहले की बात याद नहीं, लेकिन जरूर इसने अशुभ सुर में काँय-काँय किया होगा। किसनलाल के कानों के आसपास कौओं की बोलियाँ गूँजने लगीं।..... **क:का-क:का-काँ-आँ-आँ-काँ-याँ-याँ-कुर्र-का-केंका-केंका।**'[17]

रेणु ने 'कलाकार' कहानी में नदी में नाव चलने की आवाज को शब्द रूप प्रदान किया है। '**ब्रह्मघाट बाबू ?- पूछता हुआ मल्लाह ने डाँड़ चला दी- कर्र-र्र-र्र-छपा-छप्-कर्र-र्र-र्र-छपा-छप।**'[18] इन शब्दों के माध्यम से कहानीकार रेणु ने नदी पर नाव चलने की आवाजों को शब्द रूप प्रदान किया है, जिसे पढ़कर पाठकों की आँखों के सामने नदी पर नाव चलने का चित्र सजीव हो उठता है।

कहानीकार रेणु ने 'न मिटनेवाली भूख' कहानी में हँसने की ध्वनि को शब्द चित्र रूप प्रदान किया है। रेणु ने पगली गूँगी के हँसने की ध्वनि को शब्द रूप प्रदान किया है। '**गर्भवती पगली हँस रही है - हेंह-हेंह उँहू हेंह उऐं..!!**'[19] 'धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे' कहानी में रेणु ने गोरा सिपाही के अमानवीय अत्याचार से कराहती हुई औरतों की आवाजों को रेणु शब्द चित्र रूप प्रदान करने में सक्षम हुए हैं। '**आह.. सिस...आँयग गि..गि..गि**'[20] इन शब्दों को पढ़कर अमानवीय अत्याचार सहती हुई कराहती औरतों का चित्र पाठकों के सामने उभरता है। इसी प्रकार रेणु 'नित्य लीला' कहानी में किसन के कारण चिंतित यशोदा के कलेजे की धड़कन को शब्द रूप प्रदान करने में सक्षम हुए हैं। इसमें केवल यशोदा के कलेजे की धड़कन का ही वर्णन नहीं हुआ है, उनके कलेजे की धड़कन के द्वारा एक माँ की ममता को रेणु ध्वनि में बाँधने में सफल हुए हैं। '**धक्-धक्-धक्-**

धक्.....किसन अपनी माँ के कलेजे की धड़कन को स्पष्ट सुनता है।'[21] उन्होंने केवल हँसने या रोने की ध्वनि को ही शब्द रूप प्रदान नहीं किया है, बल्कि अपनी कहानियों में उन्होंने हाँकने की ध्वनि को रूप प्रदान किया है – **'उड़नेवाले हर परैवा-पंछी को कौआ समझकर हाँकती -हाँ-स्-स्।'**[22]

कहानीकार रेणु ने 'रसूल मिसतिरी' कहानी में टूटी हुई छत से गिरते हुए बारिश के पानी का शब्द चित्र निर्माण किया है, जिसे पढ़कर पाठकों के मन में गिरते हुए पानी का चित्र उभरता है। **'टूट-टाट-टपकत-खटियो टूट।'**[23] इसी कहानी में रेणु ने मरम्मत का काम करते समय उत्पन्न हुई ध्वनि का भी शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। रसूल मिस्त्री अपने काम के साथ ही गप भी जारी रखता है। रेणु ने शब्द चित्र के माध्यम से उनकी मरम्मत के काम करते समय उत्पन्न हुई ध्वनि का ध्वनि बिंब प्रस्तुत किया है। **'ठुक्-ठुक्-ठुक्, ठुक्-ठुक्-ठुक्।'**[24] इन ध्वनियों को पढ़कर पाठकों के मन में काम करते हुए रसूल की छवि उभरने लगती है। 'रेखाएँ : वृत्तचक्र (एक)' कहानी में रेणु ने हाथ से चाय की प्याली गिरने की आवाजों को शब्द रूप प्रदान किया है। **'हाथ से चाय की प्याली गिरकर 'झन्न'.....।'**[25] इस शब्द को पढ़कर पाठकों के मन में प्याली गिरने का चित्र उभरने लगता है। हाथ से चाय की प्याली गिरने से उत्पन्न हुई ध्वनि के माध्यम से रेणु ने ज्योत्स्ना की मानसिकता को उभारा है। **'धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे' कहानी में रेणु 'ट्-ठाय, ट्-ठाय' गोली चलने की आवाज का बिंबात्मक चित्रण किया है। साथ ही रेणु ने हेंड ग्रेनेड गिरने की ध्वनि को भी शब्द रूप प्रदान किया है** – **'धड़ धड़ाम! धड़ धड़ाम'**[26]। वे 'तीसरी कसम' कहानी में रेल गाड़ी की सीटी तथा हिलने की ध्वनि को शब्द रूप प्रदान करने में सक्षम हुए हैं। हीराबाई जब रौता कंपनी से मथुरा मोहन कंपनी में वापस जाने के लिए स्टेशन पर आती है, उस समय रेणु ने रेल की सीटी तथा हिलने की आवाज को शब्द रूप प्रदान किया है। **'गाड़ी ने सीटी दी। हिरामन को लगा, उसके अंदर से कोई आवाज निकलकर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गयी – कू-उ-उ-उ-इ-स्स.....छि-ई-ई-छक्। गाड़ी हिली।'**[27] इन ध्वनियों के वर्णन से रेणु हिरामन के जीवन तथा उसके अकेलेपन की पीड़ा को भी प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। यह जो गाड़ी हिलती वह केवल गाड़ी मात्र न रहकर उसका जीवन भी बन जाती है, जो हीराबाई के साथ जा रहा है। रेणु ने 'लाल पान की बेगम' कहानी में बैल गाड़ी के चलने से उत्पन्न हुई ध्वनि का भी वर्णन किया है। **'बैल जब दौड़ने लगे और पहिया जब चूँ-चूँ करके घड़घड़ाने लगा तो बिरजू से रहा नहीं गया-'उड़नजहाज की तरह उड़ाओ बप्पा।'**[28] साथ ही इस कहानी में रेणु ने नई साड़ी की आवाज की तरह ही धनखेतों से उत्पन्न आवाजों को चित्र रूप प्रदान किया है। गाड़ी जब धान के खेतों के बीच से होकर गुजरने लगी तो धनखेतों में हवा चलने के कारण धान के पौधे हिलने लगे, जिससे गौने की साड़ी की तरह खसखसाहट जैसी आवाज आने लगी। रेणु ने 'सिरपंचमी का सगुन' कहानी में लुहारसार में लोहे के काम करते समय उत्पन्न हुई ध्वनि का चित्रण किया है। **लोहे की फाल को कठोते में डालने से उत्पन्न हुई आवाज के बारे में वर्णन करते हुए रेणु लिखते हैं कि – 'ठाँ-ठाँ-ठाँ-ठुन्न! ठाँ-ठुन्न! .....कठौते में डाल देता है – छुँ-छुँ-छुँ-ऊँ गड़र्-र् लोहाइन गंधवाली भाप रह-रहकर मँडरा जाती।'**[29] इस कहानी में रेणु ने लोहारसार में धौंकनी चलने की आवाजों को भी शब्द रूप प्रदान किया है – **'मशीन से चलनेवाली घरघराती हुई धौंकनी फुफकार उठी-फू-ऊ-ऊ-ऊ।'**[30] 'टेबुल' कहानी में चाबुक से पीटने से उत्पन्न हुई ध्वनि का वर्णन किया है, जिसे पढ़कर पाठक की आँखों के सामने चाबुक पीटने का दृश्य उभरने लगता है – **'अनुरंजन को लगा, दुर्बा उसे चाबुक से पीटकर चली गयी, सपाक्! सपाक्!'**[31]

इस तरह रेणु अपनी कहानियों में ध्वनि बिंब के प्रयोग द्वारा विविध ध्वनियों को शब्द रूप प्रदान करने में सफल हुए हैं। उन्होंने पशु-पक्षियों की आवाजों से लेकर लोगों के रोने-हँसने से उत्पन्न ध्वनि को भी शब्द रूप प्रदान किया है।

हिंदी भाषा के क्षेत्र में ऐसे अभिनव प्रयोग सर्वप्रथम

शायद रेणु की देन है। भाषा पर इतना अधिकार, ऐसी जबर्दस्त पकड़, इतना गहन परिचय आज तक देखने में नहीं आया। यहाँ रेणु की प्रतिभा ऊँचाई पर पहुँचती नजर आती है।

रेणु के ध्वनि चित्र हिंदी में बहुविख्यात हैं। सर्पों की ध्वनि, ढोल की ध्वनि, तुरही की ध्वनि, खंजरी की ध्वनि, सिंगा की ध्वनि आदि बाजों की ध्वनियों के चित्रण के साथ-साथ कुत्ता, सियार, पक्षी आदि की ध्वनियों का वे बड़ी सफलता से प्रयोग करते हैं। रेणु ने मनुष्य के हास्य, रूदन, प्रहार, आवेग आदि का चित्रण करने के साथ आज की तकनीक में विकसित नई-नई मशीनों की ध्वनियों का भी चित्रण किया है। रेणु का ध्वनि बोध इतना सूक्ष्म है कि उन्होंने लाठी के प्रहार, माइक की फूँक आदि के साथ-साथ कुएँ में जाती जंजीर की आवाज, बादल की गड़गड़ाहट आदि का भी सजीव चित्रण किया है। ❑

संदर्भ सूची :

1. फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में प्रयुक्त शब्द चित्र (मैला आँचल और परती परिकथा के विशेष संदर्भ में), दिगंत बोरा, शोध दिशा (शोध पत्रिका) अंक - 54, पृ - 250
2. भारत यायावर(सं.), रेणु रचनावली- 1, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति - 2012, पृ - 21
3. वही, पृ - 24
4. वही, पृ - 24
5. वही, पृ - 25
6. वही, पृ - 27
7. वही, पृ - 116
8. वही, पृ - 118
9. वही, पृ - 127
10. वही, पृ- 127
11. वही, पृ - 155
12. वही, पृ - 167
13. वही, पृ - 28
14. वही, पृ - 58
15. वही, पृ - 139
16. वही, पृ - 128
17. वही, पृ - 369
18. वही, पृ - 38
19. वही, पृ - 52
20. वही, पृ - 107
21. वही, पृ - 237
22. वही, पृ - 293
23. वही, पृ - 73
24. वही, पृ - 74
25. वही, पृ - 97
26. वही, पृ - 110
27. वही, पृ - 162
28. वही, पृ - 172
29. वही, पृ - 198
30. वही, पृ - 202
31. वही, पृ - 273

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

महात्मा गांधी : शैक्षिक विचार और उनकी प्रासंगिकता

धर्मवीर

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
तेलंगाना : 500046
8332907096
dharmveersarancuk@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूत, अभिनव भारत के निर्माता, अहिंसा और सत्य के पोषक गांधी जी ने मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करने वाले सभी बिंदुओं पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। गांधीवाद के मूल में अहिंसा की भावना है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को बीसवीं सदी का युगपुरुष भी कहा जाता है। उनका जीवन आदर्शों एवं मूल्यों पर पूर्ण रूप से आधारित था। वे प्रयोजनवाद के विचारों से प्रभावित थे। दुनिया भर में आज गांधीजी को महान नेता एवं समाज सुधारक के साथ-साथ शिक्षा दार्शनिक के रूप में भी जाना जाता है। गांधी जी के सामने दलित, पराजित तथा दुखी भारत की पीड़ित आत्मा थी। गांधी जी का अवतार पीड़ित आत्माओं के उद्धार के लिए हुआ था। उनका मानना था कि समाज की उन्नति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। गांधी जी पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान को महत्व ज्यादा देते थे। वे कौशल पूर्ण शिक्षा का प्रबल समर्थन करते हैं। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि **'शिक्षा के सिलसिले में ही शारीरिक धंधे की शिक्षा का भी उल्लेख कर दूँ। इरादा यह था कि सबको कोई उपयोगी धंधा सिखाया जाये।'**[1]

गांधी जी का जीवन दर्शन भारतीय आदर्शवाद पर आधारित था। उनकी दार्शनिक विचारधारा के चार प्रमुख तत्व हैं – सत्य, अहिंसा, निर्भीकता और सत्याग्रह। गांधी जी एक ऐसा व्यक्तित्व हैं, जिसे दुनिया में महामानव के रूप में जाना जाता है। संपूर्ण जगत उन्हें युगपुरुष मानता है। वे न केवल भारत, बल्कि पूरी दुनिया के लिए एक आदर्श पुरुष माने गए हैं। उन्होंने अपने विचारों को जीकर दिखाया, अपने जीवन में उतारा। पूरी दुनिया के सामने उन्होंने भारत की शक्ति का लोहा मनवाया। गांधीजी का महत्व इसलिए नहीं है कि उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व किया, बल्कि इस आजादी की लड़ाई में संस्कृति के आंतरिक मूल्यों का आदर्श उपयोग भी किया। उन्होंने अपने राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर भारत देश का भ्रमण किया और यहाँ की संस्कृति को जाना और समझा। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की

दुर्बलताओं को महसूस किया। सामाजिक भेदभाव, रूढ़िवादिता, धार्मिक अंधविश्वास, गरीबी आदि जो स्वतंत्रता की राह में बाधक थे, को जाना भी। उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण कर सारी व्यवस्थाओं का अध्ययन किया और यहाँ की राजनीति को समझा। भारत के लोगों की गरीबी, अशिक्षा, भाषा और व्यवहार को देखा और समझा। उन्होंने पाया कि हम शारीरिक ही नहीं, अपितु मन से भी अंग्रेजों के गुलाम हैं। वे लिखते हैं कि 'अगर हमारे हाथ में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जा रही अपने लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बंद कर दूँ ...यह एक ऐसी बुराई है, जिसका इलाज तुरंत होना चाहिए। **मैं पाश्चात्य संस्कृति का विरोधी नहीं हूँ, लेकिन मैं अपने घर के खिड़की दरवाजों को खुला रखना चाहता हूँ... विदेशी भाषाओं की ऐसी आँधी न आ जाये कि मैं औंधे मुँह गिर पड़ूँ।**'[2] उन्होंने देखा कि भारत के जीवन को इस ब्रिटिश शासकों ने शिक्षा के माध्यम से बहुत नुकसान पहुँचाया है। गांधी जी शिक्षा को एक 'Beautiful Tree' कहा करते थे। उस वृक्ष के जड़ों में पानी, खाद दिया जाए तो पूरा वृक्ष हरा-भरा रहेगा, अच्छी पत्तियाँ और फूल आएँगे एवं अपनी सुगंध से सारे बाग को महकाएँगे। यदि उसी वृक्ष की जड़ों को काट दिया जाए तो वह नष्ट हो जाएगा। गांधी जी समझते थे कि मानसिक गुलामी से मुक्ति पाने के लिए भारतीय शिक्षा पद्धति बहुत जरूरी है। गांधी जी ने बाल केंद्रित शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने सीखने वाले के व्यक्तित्त्व के विकास को अधिक महत्व दिया। वर्तमान शिक्षा के दोषों को दूर करने के लिए गांधी ने क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए सुझाव दिए।

गांधी जी को ऐसी शिक्षा पद्धति चाहिए थी, जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना सके। वे शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य के अंतर को समाप्त करना चाहते थे। उनका मानना था कि अगर विद्यार्थी सिर्फ निष्क्रिय श्रोता के रूप रहेगा तो शिक्षा का महत्व नहीं रह जाएगा। उनके अनुसार विद्यार्थी एक सक्रिय अनुसंधानकर्ता और प्रयोगकर्ता बने। अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा पद्धति के साथ भी खिलवाड़ किया। अंग्रेज जानते थे कि अगर भारत में व्यापार व शासन करना है तो शिक्षा को अपने नियंत्रण में लेना होगा। शिक्षा को सरकारी नियंत्रण में लिया। अंग्रेजी शिक्षा का प्रारंभ हुआ। गांधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलनों के दौरान महसूस किया कि भारत में आजादी के बाद देश की पुनर्स्थापना करनी है तो शिक्षा ही एक माध्यम है, जो इस देश में आर्थिक, सामाजिक क्रांति ला सकता है।

गांधी जी समझते थे कि भारत में शिक्षा का स्तर सुधारना है तो ग्रामों के माध्यम से ही संभव हो पाएगा, क्योंकि अधिकांश भारत गाँवों में बसता है। इसलिए भारतीय शिक्षा पद्धति के परिणामों की सफलता ग्रामीण शिक्षा पर निर्भर है। उन्होंने भारतीय समाज के लिए बुनियादी शिक्षा को सर्वश्रेष्ठ माना। गांधी सिर्फ अक्षर ज्ञान को शिक्षा नहीं मानते। वे चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे बच्चे की आत्मा जागृत हो। गांधी जी हरिजन में लिखते हैं कि '**मैं तो बच्चे की शिक्षा का प्रारंभ इस तरह करूँगा कि उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाई जाए और जिस क्षण से वह अपनी तालीम शुरू करे उसी क्षण उसे उत्पादन का काम करने योग्य बना दिया जाए। इस तरह की शिक्षा पद्धति में मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास संभव है।**'[3]

महात्मा गांधी के जीवन एवं चिंतन का प्रमुख योगदान शिक्षा के क्षेत्र में था – बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम। इससे गांधी जी एक स्वतंत्र और स्वावलंबी व्यक्ति,

समाज और राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। गांधी जी ने 1935 में शिक्षा अधिवेशन, वर्धा में एक शिक्षा दर्शन रखा, जिसे गांधी जी का शिक्षा दर्शन कहा जाता है। उन्होंने भारतीयों के सामने बुनियादी शिक्षा प्रणाली की नींव रखी, जो भारतीय युवकों को वापस भारतीय परंपरा से जोड़े और भारतीय विचारों से जुड़े। भारत का मूल स्वभाव - आध्यात्मिक था। अंग्रेजों ने इस स्वभाव को अर्थ से जोड़ दिया। गांधी के शिक्षा दर्शन में निम्न बातों पर बल दिया गया - शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखा जाए, इसमें बालक की 7 से 14 वर्ष तक शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य किया जाए, समान शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा प्रणाली का आधार गाँव हो। बालक को केवल किताबी ज्ञान नहीं, उसे शारीरिक श्रम से भी अवगत कराया जाएगा, साथ ही मानवीय मूल्यों के विकास पर ध्यान दिया जाएगा। ऐसी शिक्षा होनी चाहिए, जो सामाजिक भाव और जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करे, जिससे हाथ, सिर और मन तीनों का विकास हो। हमारी शिक्षा के माध्यम से उपयोगी युवक तैयार नहीं करेंगे, उनके विचारों का विकास नहीं करेंगे, तब तक भारत क्या किसी भी राष्ट्र का अग्रणी होना मुश्किल है।

शिक्षा का अर्थ :

शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान नहीं है, लोगों को लिखना-पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी शिक्षा है। भूगोल, बीजगणित, रेखागणित और खगोल विद्या सीख लेना असली शिक्षा नहीं है, बल्कि उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका शरीर और मन उसके वश में है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। व्यक्ति से ही समष्टि है। व्यक्ति में ही समाज परिवर्तन की ताकत है। अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देना गुलामी की बुनियाद को और मजबूत करना है, हमें अपनी भाषा में शिक्षा देनी चाहिए, धर्म की, नीति की शिक्षा देनी चाहिए और ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें हाथों का उपयोग हो। शिक्षा दर्शन में वे मूल रूप से अहिंसक और नैतिक मनुष्य के निर्माण की संकल्पना करते हैं। जो-जो चीज समझ आती है, उसे अपने अनुभवों से आगे ले जाने का प्रयास करते हैं। गांधी जी के कर्म की बड़ी साधना स्थली रही है - वर्धा। उन्हें देशव्यापी अनुभव था। वे मैकाले की शिक्षा पद्धति को हटाकर भारतीय पद्धति लाना चाहते थे, जिसमें आत्मनिर्भरता और व्यक्ति से इंसान बनाने की प्रवृत्ति हो।

गांधी जी ने देखा कि इस देश की समस्या सिर्फ राजनीतिक और स्वतंत्रता ही नहीं, सामाजिक विषमता भी है। इसके लिए सामाजिक निर्माण की आवश्यकता महसूस हुई। शिक्षा में गांधी जी ने शिक्षा को 3R और 3H की संज्ञा दी थी -

3R–Reading, Writing, Arithemetic

3H–Hand, Head, Heart

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो बालक का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास करे। 'हिंद स्वराज' में गांधीजी लिखते हैं - **'शिक्षा का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ केवल अक्षर ज्ञान है तो वह एक हथियार रूप बन जाता है, उसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है।'**[4] वे अपने 'हरिजन' पत्र में लिखते हैं - **'सच्ची शिक्षा वही है, जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के उत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास कर सके और उन्हें प्रकाश में ला सके। साक्षरता न तो शिक्षा का अंतिम ध्येय है, न उससे शिक्षा का आरंभ ही होता है। वह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित बनाने के लिए अनेक साधनों में एक साधन मात्र है। अपने आप में साक्षरता कोई शिक्षा नहीं है।'**[5]

वे शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुए लिखते हैं - **'शिक्षा बालक और बालिका को एक उपयोगी नागरिक नहीं बनाती है, उनके मतानुसार शिक्षा का यह अनिवार्य कार्य है कि वह मनुष्य के शरीर, मन, हृदय और आत्मा का संगतिपूर्ण विकास करे। सच्ची शिक्षा बालक के शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों को प्रकाश में लाती है और प्रेरणा प्रदान करती है।'**[6]

शिक्षा-जीवन के लिए शिक्षा, जीवन के द्वारा शिक्षा, जीवन भर शिक्षा और जीवन के साथ जुड़ी शिक्षा आदि सिद्धांतों पर गांधी जी ने जोर दिया। गांधी जी को लगा कि वर्तमान शिक्षा जीवन से कट गई है । शिक्षा में

जीवंतता कैसे लाई जाए – इस संदर्भ में शिक्षा दर्शन पर विचार किया।

शिक्षा का उद्देश्य :

शिक्षा उद्देश्य आधारित होनी चाहिए – उद्देश्यविहीन शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है। गांधी जी का उद्देश्य था कि शिक्षा से मानव जीवन का सर्वत्तोमुखी विकास हो।

1. **जीविकोपार्जन :** गांधी जी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य के जीविकोपार्जन को मानते हैं। अगर शिक्षा मनुष्य के जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा और मकान) की पूर्ति नहीं करती है तो निरर्थक है। शिक्षा के माध्यम से बालक को जीविकोपार्जन के लिए योग्य बनाया जा सके। गांधी जी ने आत्मनिर्भर वाली शिक्षा पद्धति पर बल दिया है। वे बालक को बेरोजगारी से सुरक्षा वाली शिक्षा देने के पक्ष में थे। हस्त कला कौशल की शिक्षा होनी चाहिए, जिससे बेरोजगारी दूर होगी। इससे भूख के भय से मुक्ति मिलनी चाहिए।

2. **सांस्कृतिक विकास :** वे शिक्षा के माध्यम से अपनी संस्कृति और धरोहर को समृद्ध करने का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि विद्यार्थियों को बैठने, चलने, बोलने और व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करना चाहिए।

व्यक्ति में निहित पूर्णता को उभारना बताया। बालकों में क्रियाशीलता तथा करके सीखने के सिद्धांत को विकसित करने के लिए प्रयोजनवाद का सहारा लिया।

3. **सामंजस्यपूर्ण विकास :** बालक की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित हों। वे बालकों में मानवीय गुणों – सहयोग, पारस्परिक प्रेम, निष्ठा, सहनशीलता, मिलन सरिता जैसे गुणों का विकास करने के पक्ष में थे। उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों के विकास तथा चारित्रिक विकास पर बल दिया।

4. **चारित्रिक विकास :** गांधी जी के अनुसार बिना शिक्षा और पवित्रता के चरित्र व्यर्थ है। गांधी के शिक्षा विचार उनकी आध्यात्मिक, नीतिशास्त्र संबंधी धारणाओं से प्रभावित है। शिक्षा सत्य, अहिंसा एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए।

5. **व्यक्ति की मुक्ति :**

'सा विद्या या मुक्तये' अर्थात शिक्षा या विद्या वही है, जो मुक्त करती है। दासता/ पराधीनता से मुक्ति। बालक का पढ़ना सिर्फ नौकरी के लिए नहीं, ज्ञान के लिए।

गांधी जी का व्यक्तित्व बहुपक्षीय है। महात्मा गांधी एक महान शैक्षिक चिंतक थे। उनका शिक्षा दर्शन व्यावहारिक जीवन पर आधारित था। उन्होंने भारत की प्राचीन परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। शिक्षा जगत में अनेक सुधार लाने के लिए विचार प्रस्तुत किए। हुमायूँ कबीर 'गांधी जी' के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि 'राष्ट्र के लिए गांधीजी की अनेक देनों में नवीन शिक्षा के प्रयोग की देन सबसे महान है। वह तरुण शक्तियों के सहयोग, प्रेम और सत्य के आधार पर एक समुदाय के रूप में रहने की शिक्षा देकर एक नए सामाजिक निर्माण के लिए नागरिकों को तैयार करने का प्रयत्न करती है।'

गांधी जी ने अपने जीवन के प्रारंभ में ही यह अनुभव किया कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विकास का आधार शिक्षा ही है। वे शिक्षा के क्षेत्र में प्रेरणास्रोत हैं। '**महात्मा गांधी जी इस प्रकार समाज में रक्तहीन क्रांति द्वारा लाना चाहते थे और इस प्रकार की समाज की स्थापना के लिए वे शिक्षा को एक सशक्त साधन बनाना चाहते थे।**'[7] गांधी जी लिखते हैं कि मैं भारत के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांत को दृढ़तापूर्वक मानता हूँ। बच्चों को कोई उपयोगी उद्योग सिखाएँ, जिससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास हो सके। शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण करना था। इसके लिए आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक विकास अर्थात जीवन के सभी पक्षों पर बल देते थे। उनका उद्देश्य – सिर्फ नौकरी नहीं था, बच्चों को स्वावलंबी बनाना था। वह शिक्षा किस काम की, जो राष्ट्र समाज एवं शक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। शिक्षार्थी को सुसंस्कृत बनाना शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में केवल मस्तिष्क के प्रशिक्षण

पर बल दिया जाता है। गांधी जी हाथ, हृदय और मस्तिष्क सभी को सुरक्षित करना चाहते थे। गांधी जी की शिक्षा के राष्ट्रीय महत्व को ध्यान रखते हुए कोठारी आयोग (1964-66) ने शिक्षा को राष्ट्र के पुनर्निर्माण का एक साधन के रूप में स्थापित करने पर विचार किया। गांधी जी के जीवन के दो प्रमुख संदेश हैं -

1.मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।
2.जो मैंने किया, कोई साधारण व्यक्ति कर सकता है।

शिक्षा का संबंध जितना व्यक्ति से होता है, उससे अधिक समाज से है। उन्होंने नारी शिक्षा पर बल दिया। अस्पृश्यता उन्मूलन स्वराज का प्रथम पायदान है। गांधीजी के महानायक बनने में अहिंसा की भूमिका सर्वोपरि है। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं कि सत्य का पूर्ण भास अहिंसा के पूर्ण साक्षात्कार से ही संभव है। अर्थात गांधी जी के लिए सत्य और अहिंसा भिन्न-भिन्न मानवीय मूल्य नहीं हैं। गांधीजी को इतिहास की जानकारी थी। महात्मा गांधी एक जननायक थे, जिन्होंने भारत में जनांदोलनों की राजनीति शुरू की और भारतीय स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन को एक जनांदोलन बनाया। शिक्षा पद्धति में गांधी जी महत्वपूर्ण बदलाव करना चाहते थे। इस संदर्भ में प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं -

- सबसे पहली बात यह है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।
- दूसरी ध्यान देने वाली बात है कि शिक्षा पुस्तकीय न हो, बल्कि शिल्प आधारित हो।
- तीसरी बात यह है कि शिक्षा चरित्र निर्माण का साधन होना चाहिए।
- चतुर्थ बात यह है कि शिक्षा से बालक का सर्वांगीण विकास हो।

गांधी जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ लिखना, पढ़ना और अंकगणित की सामान्य जानकारी देना नहीं, बल्कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के कर्म, ज्ञान और भावना का विकास करना है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि गांधी जी का व्यक्तित्व-कृतित्व केवल तत्कालीन समाज की और समय नहीं, बल्कि वर्तमान दौर को समझने और उसे मानवीय धरातल पर बदलने की समग्र अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। आज भी गांधी की प्रासंगिकता और उनके महत्व को सभी स्वीकार करते हैं।

गांधी जी का जीवन लोगों के लिए था। उन्होंने मानवता के लिए बलिदान दे दिया था। गांधी जी ने दुनिया भर को यह दिखला दिया था कि प्रेम, सत्य और अहिंसा का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी के द्वारा देश को आजादी दिलाई। समाज के गरीब, असहाय और अछूतों के लिए किए गए उनके कार्यों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। गांधी जी आधुनिक युग के एक महान दार्शनिक, व्यावहारिक शिक्षा शास्त्री एवं युगांतकारी पुरुष हुए हैं। उनके द्वारा चलाई गई शिक्षा व्यवस्था विकेंद्रित, स्वावलंबी अर्थनीति तथा श्रेणीहीन समाज व्यवस्था पर आधारित है, जो आज भी अत्यंत उपयोगी साबित हो सकती है। समय के बदलते परिप्रेक्ष्य में आज भी गांधीजी के शैक्षिक विचारों ने अपना महत्व नहीं खोया है। गांधी जी की प्रासंगिकता कालजयी है। ❑

संदर्भ :

1. महात्मा गांधी : सत्य के प्रयोग।
2. हरिजन, 31.7.37
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. एल.के. ओड : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1990, पृ. 238

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

‘ টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্রকাৰ আৰু গঠন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন’

উদয়ন বড়া

টাই ভাষাৰ শিক্ষক
ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্র
ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
পিন ঃ ৭৮৬০০৪
৯১০১০৩৬১২৩
udayan1204@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

নামপদৰ এক উল্লেখনীয় ভাগ হ’ল— সর্বনাম শব্দ। বিশেষ্য বা বিশেষ্যৰ বাক্যাংশৰ সলনি ব্যৱহাৰ কৰা শব্দক সর্বনাম শব্দ বোলা হয়। সাধাৰণতে সর্বনাম শব্দই পুৰুষ, লিংগ, বচন অনুসৰি ভিন্ন ৰূপ গ্রহণ কৰে। যেনে- মই, তুমি, তেওঁলোক আদি। গঠনৰ ফালৰ পৰা সর্বনাম শব্দবোৰক মৌলিক আৰু সাধিত ৰূপত পোৱা যায়। মৌলিক সর্বনামৰ তুলনাত সাধিত সর্বনামৰ সংখ্যা অধিক পৰিলক্ষিত হয়। আনহাতে টাই-আহোম ভাষাৰ ভাষিক প্রকৃতি তথা গঠনৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি টাই-কাদাই ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তর্গত কৰা হয়। নৃতাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীৰ পৰা মংগোলীয় প্রজাতিৰ টাই-আহোম জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ প্রচলন বর্তমান উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ উজনি অসমত বিশেষভাৱে পোৱা যায়। ইয়াৰ ভিতৰত শিৱসাগৰ, চৰাইদেউ, যোৰহাট, গোলাঘাট, ডিব্রুগড়, ধেমাজি, লখিমপুৰ, তিনিচুকীয়া, শদিয়া আদি উল্লেখযোগ্য।

টাই ভাষাসমূহ মূলতঃ সুৰীয়া ভাষা। এনে ভাষাসমূহত শব্দৰ অর্থৰ ওপৰত সুৰসমূহে বিশেষভাৱে ক্রিয়া কৰে। টাইমূলীয় ভাষা হিচাপে টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ ক্ষেত্রতো এনে বৈশিষ্ট্যসমূহ পৰিলক্ষিত হয়। উত্তৰ-পূব ভাৰত তথা অসমত বর্তমান টাই-আহোম ভাষাই যথেষ্ট পৰিমাণে বিকাশ লাভ কৰিছে। একেদৰে ভাষিক আৰু সাংস্কৃতিক দৃষ্টিভংগীৰে যথেষ্ট পৰিমাণে ইয়াৰ অধ্যয়ন আৰম্ভ হৈছে। আনহাতে টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দবোৰক প্রধানতঃ দুটা ভাগত ভাগ কৰা হয়। যেনে— মৌলিক আৰু সাধিত। প্রকাৰৰ ক্ষেত্রত টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ সাতটা প্রকাৰ পোৱা যায়। প্রত্যেক ভাষাৰে একোখন ব্যাকৰণ থাকে আৰু সেই ব্যাকৰণৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়ে একোটা ভাষাৰ গাঁথনিক তথা ৰূপতাত্ত্বিক দিশসমূহ প্রতিফলিত হয়। একেদৰে সুৰীয়া ভাষা হ’লেও টাই-আহোম ভাষাতো এনে ব্যাকৰণিক দিশ যেনে—বিশেষ্য, বিশেষণ, সর্বনাম, ক্রিয়া, বিভক্তি, কাৰক, বচন আদি প্রতিফলিত হয়। এনে ৰূপতাত্ত্বিক দিশৰ অংগ হিচাপে টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ অধ্যয়ন গুৰুত্বপূর্ণ।

বীজশব্দ ঃ

টাই-কাদাই, সর্বনাম, বিশেষ্য, বিশেষণ, কাৰক, বিভক্তি, মৌলিক, সাধিত আদি

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ এক উল্লেখনীয় ভাষা হ'ল— টাই ভাষা। টাই ভাষাই দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ চীনদেশৰ য়ুনান প্ৰদেশৰ পৰা আৰম্ভ কৰি উত্তৰ ভিয়েটনাম, লাওচ, থাইলেণ্ড, ম্যানমাৰৰ লগতে উত্তৰ ভাৰত পৰ্যন্ত বিস্তৃতি লাভ কৰিছে। উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ তথা অসম প্ৰদেশত টাই ভাষাৰ ছটা শাখাৰ ভাষাৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। এই ভাষাকেইটা হ'ল— টাই-আহোম, টাই-খামতি, টাই-আইতন, টাই-ফাকে, টাই-টুৰুং আৰু টাই-খাময়াং। এই ভাষাকেইটাৰ ভিতৰত টাই-আহোম ভাষা অন্যতম। এই ভাষাক ভৌগোলিক অৱস্থান ভিত্তিত 'চীন-তিব্বতীয়' আৰু ভাষিক প্ৰকৃতি তথা বৈশিষ্ট্য অনুসৰি 'টাই-কাদাই' ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত ভাষা হিচাপে চিহ্নিত কৰা হয়। আনহাতে নৃতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা টাই-আহোমসকল মংগোলীয় প্ৰজাতিৰ।

অসমত প্ৰচলিত ভিন্ন টাই জনগোষ্ঠীবোৰৰ ভিতৰত টাই-আহোমসকল অতি পুৰণি জনগোষ্ঠী। "ত্ৰয়োদশ শতিকাৰ প্ৰাৰম্ভতে ১২২৮ খ্ৰীষ্টাব্দত আহোমৰ আদি ৰজা ছ্যুকাফাৰ নেতৃত্বত টাই মানুহৰ ঠাল এটাই উত্তৰ-পূব গিৰিপথেদি অসমত প্ৰৱেশ কৰে। সুদীৰ্ঘ ছশটা বছৰ সণ্চালনিকৈ অসমত শাসন কৰা এই লোকসকলকেই থলুৱা লোকসকলে আহোম বোলে"।[৩] টাই-আহোমসকল অসম আগমনৰ পূৰ্বৰে পৰা নিজা ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰে পৰিপূৰ্ণ এক সম্ভ্ৰান্ত জাতি আছিল। অসমতো প্ৰথমাৱস্থাত টাই-আহোমসকলে আহোম ভাষাতে বাৰ্তালাপ কৰাৰ লগতে সাহিত্য চৰ্চা তথা বুৰঞ্জী আৰু বিভিন্ন পুথি-পাঁজি লিখাৰ পৰম্পৰা অব্যাহত ৰাখিছিল। অৱশ্যে পৰৱৰ্তী সময়ত অসমীয়া ভাষাকেই টাই-আহোমসকলে মাতৃভাষাৰূপে ব্যৱহাৰ কৰে। কিন্তু আহোমসকলৰ মহন, দেউধাই, বাইলুং আদি পুৰোহিত শ্ৰেণীয়ে পূজা-পাতল অনুষ্ঠানৰ জৰিয়তে বৰ্তমানেও আহোম ভাষাটো পৰম্পৰাগতভাৱে ব্যৱহাৰ কৰি আছে। ইয়াৰ উপৰি বৰ্তমান সময়ত শিৱসাগৰ আৰু চৰাইদেউ জিলাৰ টাই-আহোম লোকসকলে ব্যৱহাৰ কৰা অসমীয়া ভাষাৰ মাজত যথেষ্ট পৰিমাণে 'টাই-আহোম' ভাষাৰ শব্দৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে- সম্বন্ধবাচক শব্দ, নামবাচক শব্দ, সংস্কৃতি বিষয়ক শব্দ আদি। একেদৰে বিভিন্ন সাঁচিপতীয়া পুথি, বুৰঞ্জী পুথি, অভিধান আদিৰ মাজতো টাই-আহোম ভাষাটোৰ শক্তিশালী ৰূপ এটা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

ভাষাৰ এক উল্লেখযোগ্য অংগ হ'ল ৰূপতত্ত্ব। এই ৰূপতাত্ত্বিক দিশৰে এক উল্লেখনীয় দিশ হ'ল- সর্বনাম শব্দ। এনে সর্বনাম শব্দসমূহ টাই-আহোম ভাষাত কিদৰে গঠন হয় আৰু ইয়াৰ প্ৰকাৰ কেনেকুৱা সেই বিষয়ে বিশ্লেষণ দাঙি ধৰাৰ উদ্দেশ্যে **'টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্ৰকাৰ আৰু গঠন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন'** শীৰ্ষক বিষয়ৰ অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

'টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্ৰকাৰ আৰু গঠন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন'—শীৰ্ষক বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল—

- টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্ৰকাৰ ভেদ কৰা।
- টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ গঠন প্ৰক্ৰিয়া সম্পর্কে বিশ্লেষণ কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ ঃ

'টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্ৰকাৰ আৰু গঠন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন'— শীৰ্ষক বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ তথ্য সংগ্ৰহ আৰু তথ্য বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্ৰত সুকীয়া সুকীয়া পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত সাক্ষাৎকাৰ পদ্ধতি আৰু নমুনা সংগ্ৰহ পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। তথ্য বিশ্লেষণৰ বাবে বর্ণনাত্মক ভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতিৰ উপৰি জনগোষ্ঠীটোৰ ইতিহাস অধ্যয়নৰ বাবে ঐতিহাসিক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হয়। আনহাতে বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ অন্তর্গত গঠনাত্মক ভাষাবিজ্ঞান পদ্ধতিৰ সহায় সর্বনামৰ গাঁথনিক বিশ্লেষণৰ বাবে বিশেষভাৱে লোৱা হৈছে।

একেদৰে এই অধ্যয়নত প্ৰধানতঃ টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্ৰকাৰ আৰু গঠন সম্পর্কে বিজ্ঞানসম্মত আলোচনা দাঙি ধৰা হৈছে। মূলতঃ শিৱসাগৰ আৰু চৰাইদেউ জিলাৰ টাই-আহোম লোকৰ পৰা লাভ কৰা ভাষিক তথ্যৰ ভিত্তিত এই বিশ্লেষণ দাঙি ধৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ উৎস ঃ

'টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনাম শব্দৰ প্রকাৰ আৰু গঠন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন'— শীর্ষক বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ বাবে প্রধানতঃ দুই ধৰণৰ উৎসৰ পৰা তথ্য সংগ্রহ কৰা হয়।

• মুখ্য সমল • গৌণ সমল

মুখ্য সমল ঃ শিৱসাগৰ আৰু চৰাইদেউ জিলাৰ ভিন্ন সমল ব্যক্তিৰ পৰা লাভ কৰা টাই-আহোম ভাষাৰ তথ্যসমূহক মুখ্য সমল হিচাপে গ্রহণ কৰা হৈছে।

গৌণ সমল ঃ চৰকাৰী বা বে-চৰকাৰী বিভিন্ন সংস্থাৰ জৰীপ, ইণ্টাৰনেট আদিৰ পৰা লাভ কৰা তথ্যসমূহ বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰি গৌণ তথ্য হিচাপে সংগ্রহ কৰা হৈছে। ইয়াৰ উপৰি তথ্য সংগ্রহৰ ক্ষেত্রত ব্যৱহৃত কেমেৰা, ম'বাইল, লেপটপ আদি যন্ত্রপাতিসমূহকো গৌণ সমল হিচাপে গ্রহণ কৰা হয়।

১.০ সর্বনাম শব্দৰ প্রকাৰ ঃ

ভাষা বিশেষত বিশেষ্যৰ সলনি ব্যৱহাৰ কৰা শব্দবোৰকে সর্বনাম শব্দ বোলে। টাই-আহোম ভাষাতো এনে সর্বনাম শব্দৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। আনহাতে টাই-আহোম ভাষাত বচন আৰু পুৰুষ অনুসৰি সর্বনাম শব্দৰ সুকীয়া সুকীয়া ৰূপৰ ব্যৱহাৰ হয়। তলত টাই-আহোম ভাষাৰ সর্বনামৰ বিভিন্ন প্রকাৰসমূহ দাঙি ধৰা হ'ল—

- ব্যক্তিবাচক সর্বনাম
- নির্দেশবোধক সর্বনাম
- অনির্দিষ্টতাবাচক সর্বনাম
- প্রশ্নবাচক সর্বনাম
- কালবাচক সর্বনাম
- স্থানবাচক সর্বনাম
- সম্বন্ধবাচক সর্বনাম

১.১ ব্যক্তিবাচক সর্বনাম ঃ

বিশেষ্যৰ সলনি পুৰুষ অনুসৰি ব্যৱহৃত শব্দবোৰকে ব্যক্তিবাচক সর্বনাম বুলি কোৱা হয়। টাই-আহোম ভাষাত এনে সর্বনামবোৰৰ পুৰুষ আৰু বচন অনুসৰি বেলেগ বেলেগ ৰূপ পোৱা যায়।

➢ টাই-আহোম ভাষাত প্রথম পুৰুষ আৰু বচন অনুসৰি ব্যক্তিবাচক সর্বনাম ৰূপবোৰ বেলেগ বেলেগ হয়।

[১] ভীমকান্ত বৰুৱা, ভাষাৰ ইতিবৃত্ত, পৃ. ৮৮

উদাহৰণ—

পুৰুষ	একবচন	বহুবচন
প্রথম	'kau:' মই	'rau' আমি

➢ টাই-আহোম ভাষাত দ্বিতীয় পুৰুষ আৰু বচন অনুসৰি সুকীয়া হোৱাৰ উপৰি দুয়োটা বচনত একোটা সন্মানার্থক ৰূপ 'sau' শব্দ ব্যৱহাৰ কৰিও ব্যক্তিবাচক সর্বনাম গঠন কৰা হয়।

পুৰুষ	একবচন	বহুবচন
দ্বিতীয়	'mau' তুমি / তই	'su:' তোমালোক / তহঁত
	'mau sau' আপুনি	'su: sau' আপোনালোক

➢ টাই-আহোম ভাষাত দ্বিতীয় পুৰুষৰ দৰে তৃতীয় পুৰুষতো বচন আৰু পুৰুষ অনুসৰি ব্যক্তিবাচক সর্বনামৰ ৰূপবোৰ সুকীয়া সুকীয়া হয়। সন্মানার্থক ৰূপ প্রকাশৰ বাবে sau' শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

পুৰুষ	একবচন	বহুবচন
তৃতীয়	'mau' তুমি / তহ	'k^{h}au' তোমালোক / তহঁত
	'man sau'	'k^{h}au sau' তেওঁলোক
	তেওঁ বা তেখেত	বা তেখেতসকল

তলত সাঁচিপতীয়া বুৰঞ্জী পুথিৰ শব্দৰ আধাৰত পুৰুষ অনুসৰি টাই-আহোম ভাষাৰ ব্যক্তিবাচক সর্বনামৰ ৰূপসমূহ তালিকাসহ দাঙি ধৰা হ'ল—

পুৰুষ		বচন	
		একবচন	বহুবচন
প্রথম		'kau' মই	'rau' আমি
দ্বিতীয়	মান্য	'mau' তুমি / তই	'su:' তোমালোক / তহঁত
	সন্মানার্থ	'mau sau' আপুনি	'su: sau' আপোনালোক
তৃতীয়	মান্য	'man 'সি / তাই	'k^{h}au 'সিহঁত
	সন্মানার্থ	'man sau' তেওঁ বা তেখেত	'k^{h}au sau' তেওঁলোক বা তেখেতসকল

তালিকা নং-১ ঃ টাই-আহোম ভাষাৰ ব্যক্তিবাচক সর্বনামৰ প্রকাৰ

উল্লিখিত টাই-আহোম ভাষাৰ ব্যক্তিবাচক সর্বনামসমূহৰ উপৰি কিছুমান কাৰকসূচক ৰূপো এই সর্বনাম শব্দৰ লগত ব্যৱহাৰ হয়। আনহাতে কাৰক অনুসৰি ব্যক্তিবাচক সর্বনামত 'ti:' 'au:' 'lukti:' কাৰকবাচক ৰূপবোৰ মূল শব্দৰ

‘tiː’ ‘auː’ ‘luk tiː’ কাৰকবাচক ৰূপবোৰ মূল শব্দৰ লগত ব্যৱহৃত হয়। অৱশ্যে টাই-আহোম ভাষাত কৰ্তা আৰু সম্বন্ধ কাৰকৰ ধাৰণাযুক্ত ৰূপ নাই, ইয়াৰ সলনি মূল শব্দই ইয়াত ব্যৱহৃত হয়।

তলত এনে ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামৰ সৈতে সংযোগ হোৱা কাৰকসূচক ৰূপসমূহক তালিকাসহ দাঙি ধৰা হ'ল—

কাৰক	বচন	
	একবচন	**বহুবচন**
কৰ্তা	‘kau’ মই	‘rau’ আমি
কৰ্ম	‘tiː kau’ মোক	‘tiː rau’ আমাক
কৰণ	‘auː kau’ মোৰ দ্বাৰা	‘auː kau’ আমাৰ দ্বাৰা
নিমিত্ত	‘tiː kau’ মোলৈ	‘tiː rau’ আমালৈ
অপাদান	‘luk tiː kau’ মোৰ পৰা	‘luk tiː rau’ আমাৰ পৰা
সম্বন্ধ	‘kau’ মোৰ	‘rau’ আমাৰ

তালিকা নং-২ ঃ ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামৰ সৈতে সংযোগ হোৱা কাৰকসূচক ৰূপসমূহ

১.২ নিৰ্দেশবাচক সৰ্বনাম ঃ

টাই-আহোম ভাষাত কোনো প্ৰাণী বা বস্তুক বিশেষভাৱে নিৰ্দেশ কৰি বুজাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা শব্দবোৰেই নিৰ্দেশবাচক সৰ্বনাম। এই সৰ্বনামবোৰক আকৌ ইয়াৰ প্ৰয়োগৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি দুটা ভাগত ভাগ কৰা হয়। যেনে—(ক) নিকটৱৰ্তী (খ) দূৰৱৰ্তী। আনহাতে নিকটৱৰ্তী সৰ্বনাম বুজাবৰ বাবে ‘nai’ আৰু দূৰৱৰ্তী সৰ্বনাম বুজাবৰ বাবে ‘nan’ শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। টাই-আহোম ভাষাত একবচন হ'লে সৰ্বনামৰ আগত আৰু বহুবচন হ'লে সৰ্বনামৰ পিছত নিৰ্দেশবাচক শব্দটো ব্যৱহাৰ হয়।

উদাহৰণ—

নিকটৱৰ্তী **দূৰৱৰ্তী**

একবচন—

‘aː nai’ এইটো ‘aː nan’ সেইটো / সৌটো

‘pʰuː nai’ এইজন ‘pʰuː nan’ সেইজন

বহুবচন—

‘nai kʰau’ এইবোৰ ‘nan kʰau’ সেইবোৰ

নিৰ্দেশবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

‘aː nai rɯn rau’

এইটো আমাৰ ঘৰ।

‘aː nan pi kau’

সেইটো মোৰ কলম।

‘pʰu nai sau pʰa mɯu ban sau pʰa tsɯu zɒn hau tai tsiː zau’

এইজন ৰজাই চাওফা ছিও-জিন্‌ক হত্যা কৰাৰ আদেশ দিলে।

‘taŋ lai nai kʰau tiː mɯŋ’

এইবোৰ সকলো দেশলৈ আগবঢ়ালোঁ।

১.৩ অনিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্বনাম ঃ

যি কোনো বস্তু বা প্ৰাণীক অনিশ্চিত বা অনিৰ্দিষ্ট ৰূপত বুজাবৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা সৰ্বনাম শব্দবোৰেই অনিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্বনাম। আনহাতে টাই-আহোম ভাষাতো এনে সৰ্বনামৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। উদাহৰণ —

‘pʰau tsaŋ’ যিকোনো
‘pʰau kɒ’ কোনো
‘kam phɒŋ’ কিছুমান
‘pʰau kɒi’ কোনোবা

অনিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

‘pʰau tsaŋ hau kʰɒŋ zau’

যি কোনো বস্তু দিলে।

‘pʰau ka bau tsaŋ lau huŋ man’

তেওঁক জনোৱা, কোনোৱে নাজানে ।

‘kun kam phɒŋ ma ti nai’

ইয়ালৈ মানুহ কিছুমান আহিছে।

১.৪ প্ৰশ্নবাচক সৰ্বনাম ঃ

কোনো এক বিষয়ত প্ৰশ্ন কৰিবলৈ বা প্ৰশ্ন সুধিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা সৰ্বনাম শব্দবোৰেই প্ৰশ্নবাচক সৰ্বনাম। টাই-আহোম ভাষাতো এনে প্ৰশ্নবাচক সৰ্বনামৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। উদাহৰণ—

‘tsaŋ’ কি
‘pʰau’ কোন
‘kɯɲ’ কেইটা
‘naŋ ruː’ কেনেকৈ

প্ৰশ্নবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

‘suː mau ka tsaŋ ne’

তোমাৰ নাম কি?

‘pʰau pʰau pai ti le ne’

ফুৰিবলৈ কোন কোন যাবা ?
'le p^{h}aŋ tsiu suː sau baː tsaŋ kai'
বঙালক ধৰোঁগৈ আপোনালোকে বা কি কয় ?
'sau p^{h}a suː k^{h}au kɒ baː naŋ ruː'
ৰজা ছু খামে ভাৰি কেনেকৈ ক'লে।

১.৫ কালবাচক সৰ্বনাম ঃ

যি কোনো কাল বা সময়ৰ ধাৰণা প্ৰদান কৰিব পৰা সৰ্বনাম শব্দবোৰেই কালবাচক সৰ্বনাম। টাই-আহোম ভাষাতো এনে কালবাচক সৰ্বনামৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। তলত তেনে সৰ্বনাম উদাহৰণসহ দাঙি ধৰা হ'ল—

'mɯu nai'	আজি
'saŋ nai'	এতিয়া
'mɯu nan'	এতিয়া
'mɯu ŋa'	কালি
'mɯu p^{h}uk'	কাইলৈ

কালবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

'mɯu nai dɯn tsi sam luk lan p^{h}i ma la luk p^{h}u kɒn luŋ hau mɯŋ hɒ rai g^{h}at'
আজি ফাগুন-চ'ত মাহত লান ফী মা পৰিয়ালৰ লা লুক বৰফুকনে শৰাইঘাটৰ দুৰ্গটো দিলে।
'saŋ nai rau k^{h}a taŋ ɯuŋ k^{h}a'
এতিয়া আমি সকলো দাস।
'naŋ ma mɯu ŋa zau'
কালি তাই আহিল।
'man tak ma mɯu p^{h}uk'
সি কাইলৈ আহিব।

১.৬ স্থানবাচক সৰ্বনাম ঃ

টাই-আহোম ভাষাত স্থানৰ নিৰ্দেশ প্ৰদান কৰা সৰ্বনাম শব্দবোৰকে স্থানবাচক সৰ্বনাম হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হয় আনহাতে টাই-আহোম ভাষাৰ 'tiː' (স্থান) বুজোৱা শব্দটো স্থানবাচক সৰ্বনাম শব্দৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষভাৱে ব্যৱহাৰ হয়। উদাহৰণ—

'kai'	দূৰত
'tiː nɯu'	ওপৰত
'tiː tau'	তলত
'tiː t^{h}ai'	ইয়াত
'tiː t^{h}an'	তাত

স্থানবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

'man sau naŋ laː tiː t^{h}ai'
আপুনি ইয়াতে বহক
'tiː nɯu p^{h}u kin mɯŋ au ma kɒi'
ওপৰৰ ৰাজখোৱাক আনিবলৈ ক'লে।
'tiː tau p^{h}u ruː tsau au ma kɒi'
তলৰ হাজৰিকাক আনিবলৈ ক'লে।
'mau bau ka tiː t^{h}an'
তুমি তালৈ নাযাবা।

১.৭ আত্মবাচক সৰ্বনাম ঃ

টাই-আহোম ভাষাৰ সৰ্বনামৰ বিভিন্ন ৰূপবোৰৰ দৰে আত্মবাচক সৰ্বনামৰো ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। অৱশ্যে এনে সৰ্বনাম এই ভাষাত এটা মাত্ৰ পোৱা যায়। এই সৰ্বনাম যি কোনো বচন আৰু পুৰুষ অনুসৰি একেটা ৰূপে ব্যৱহাৰ হয়। উদাহৰণ—

'pa sau' নিজ / নিজে

আত্মবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

'naŋ pa sau tiː kin'
ছোৱালীজনীয়ে নিজে খাব।
'kau pa sau tak pi tiː kat'
মই নিজে বজাৰলৈ যাম।
'mau pa sau tak het aː mu'
তুমি নিজে কামটো কৰিবা।

১.৮ সম্বন্ধবাচক সৰ্বনাম ঃ

কোনো এক ভাষাৰ বাক্যত ব্যৱহৃত ভিন্ন নাম পদৰ সৈতে সংগতি স্থাপন কৰা সৰ্বনাম শব্দবোৰকে সম্বন্ধবাচক সৰ্বনাম বুলি অভিহিত কৰা হয়। টাই-আহোম ভাষাত এনে সম্বন্ধবাচক সৰ্বনাম একেবাৰে সীমিত বুলি ক'ব পাৰি। উদাহৰণ—

'an' যিজন / যিটো

সম্বন্ধবাচক সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ ঃ

'pɒi an mmu nɯŋ sau tsɯu p^{h}ai pai tiː se mun'
যিটো মাহত স্বৰ্গদেউ ৰংপুৰলৈ গ'ল।
'ban an rau tak pai tiː ha buŋ'
যিটো বাৰে আমি হাবুঙলৈ নাচিবলৈ যাম।

'an rau bau het aː mu uː'

আমি যিটো কাম নকৰো।

২.০ সৰ্বনাম শব্দৰ গঠন ঃ

টাই-আহোম ভাষাত অন্য শব্দৰ দৰে সৰ্বনাম শব্দৰ গঠনৰ বিষয়ে দুই ধৰণে আলোচনা কৰিব পাৰি। যেনে—

- মৌলিক সৰ্বনাম
- সাধিত সৰ্বনাম

অৱশ্যে টাই-আহোম ভাষাৰ সৰ্বনাম শব্দবোৰত গঠনৰ ফালৰ পৰা মৌলিক সৰ্বনামৰ তুলনাত সাধিত সৰ্বনাম অধিক পৰিমাণে ব্যৱহৃত হয়। তলত এনে মৌলিক আৰু সাধিত সৰ্বনামসমূহ উদাহৰণসহ দাঙি ধৰা হ'ল—

২.১ মৌলিক সৰ্বনাম শব্দ ঃ

টাই-আহোম ভাষাত একক অৰ্থবিশিষ্ট সৰ্বনাম শব্দবোৰকে মৌলিক সৰ্বনাম শব্দ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। অৱশ্যে টাই-আহোম ভাষাত এনে মৌলিক শব্দ সীমিত। আনহাতে এই ভাষাৰ মৌলিক সৰ্বনাম একৰূপ আৰু দুই ৰূপবিশিষ্ট হয়। উদাহৰণ—

'zim'	অতীত
'lɯn'	পাছত
'ki'	কিমান
'nau'	ভিতৰ
'rem'	কাষত

মৌলিক সৰ্বনাম শব্দৰ প্ৰয়োগ ঃ

'zim mɯu tɯk rɯk puŋ kʰun luŋ kʰun lai' অতীততে খুন লুঙ খুন লাইক ৰজাৰ দায়িত্বভাৰ দি নমাই পঠালে।

'tɯn **lɯn** pʰa tɯu seŋ pʰɒŋ hum zuː tsau bau kʰɯn'

তাৰ পাছত ৰজা হ'ব পৰা দেৱতা কোনো নাছিল।

'rau kɒ saŋ ruː

আমি এই বিষয়ে জানোঁ।

'**kau** bau ruː kʰɒ nai'

মই এই বিষয়ে নাজানো।

'**lɯn** kun kʰau mɯŋ nau maː zau'

পাছত মানুহবোৰ দেশৰ ভিতৰলৈ সোমাই আহিল।

'raː gʰa pʰu ke luŋ tsat maː zu rem nam tiː hɛt tiː an'

ৰাঘ বৰুৱাই টিলাও নদীৰ কাষতে নাওবোৰৰ সৈতে থাকিল।

২.২ সাধিত সৰ্বনাম শব্দ ঃ

টাই-আহোম ভাষাত দুটা বা ততোধিক মৌলিক শব্দ সংযোগত সাধিত সৰ্বনাম শব্দবোৰ গঠন হয়। উদাহৰণ—

মুক্তৰূপ	মুক্তৰূপ	সাধিত সৰ্বনাম শব্দ
'mau' তুমি +	'sau' সন্মান অৰ্থত =	'mau sau' আপুনি
'tsɯu' +	'sau' =	'tsɯusau'
তোমালোক	সন্মান অৰ্থত	আপোনালোক
'man' তেওঁ +	'sau' সন্মান অৰ্থত =	'man sau' তেওঁলোক
'pin' দিশ +	'nai' এইটো =	'pin nai' এইপিনে
'pin' দিশ +	'nan' সেইটো =	'pin nan' সেইপিনে
'mɯu' সময় +	'nan' সেইটো =	'mɯu nan' সেইসময়ত
'mɯu' সময় +	'nai' এইটো =	'mɯu nai' এইসময়
'mɯu' সময় +	'pʰuk' =	'mɯu pʰuk' কাইলৈ
'saŋ' বৰ্তমান +	'nai' এইটো =	'saŋ nai' এতিয়া

সাধিত সৰ্বনাম শব্দৰ প্ৰয়োগ ঃ

'mau sau tak kʰa pʰau pʰan pʰau kɒ kʰau kam'

আপুনি সততাৰ নামত শপত খোৱাব নোৱাৰিব।

'mau sau tak maː tiː gu aaː haː ti'

স্বৰ্গদেউ আপুনি গুৱাহাটীলৈ আহিব।

'saŋ nai tsɯu sau kau bau pʰa tak pin'

এতিয়া মই আপোনালোকৰ ৰজা হ'ব নিবিচাৰো

'kau kɒ pin pʰɒm tsɯu sau aŋ het tsɯk'

মই আপোনালোকৰ সহায় হ'লে যুদ্ধ কৰিব খোজোঁ।

'kau tsɯu sau kʰa auː '

মই আপোনালোকৰ দাস।

'ban rai seu kʰau sau kin zau'

তেওঁলোকে ৰাইচেও দিনা খালে।

'man sau nai kin mɯŋ sam pi lɯŋ pai pet din zau'

তেওঁৰ শাসন কাল এবছৰ আঠ মাহ।

'mɯu nan tun pʰan pʰu kʰau mɒ tɒk zau'

সেইসময়ত মটকজন ফু-খাউ বংশধৰ আছিল।

'hau mɯu nai pʰu ke luŋ zau '

এনে সময়তে বৰফুকনে দিলে।

‘saŋ nai mau pɒi pai ka ti rɯn mau’

এতিয়া আপুনি আপোনাৰ ঘৰলৈ যাব পাৰে।

‘mɯu nai tiː kaː man ’

এই সময়তে তেওঁ আহিব।

৩.০ সামৰণি ঃ

ভাষাৰ ৰূপতাত্ত্বিক দিশৰ অন্তৰ্গত শব্দ সম্পৰ্কীয় প্ৰায়বোৰ আলোচনাতে বিশেষ্যৰ সমানে সৰ্বনাম শব্দবোৰকো গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হয়। সাধাৰণতে বিশেষ্যৰ পৰিৱৰ্তে ব্যৱহাৰ কৰা সৰ্বনাম শব্দবোৰৰ ভিন্ন প্ৰকাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। টাই-আহোম ভাষাটো সৰ্বনাম শব্দৰ সাতটা প্ৰকাৰৰ পোৱা যায়। গঠনৰ ক্ষেত্ৰত মৌলিক আৰু সাধিত ৰূপত গঠন হয়। অৱশ্যে এই প্ৰকাৰসমূহৰ ভিতৰত ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামৰ শব্দৰ সংখ্যাই বেছি। আনহাতে গঠনৰ ক্ষেত্ৰতো মৌলিকৰ উপৰি সাধিত সৰ্বনামসমূহ দুটা মুক্ত ৰূপৰ সংযোগত গঠন হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। একেদৰে ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামৰ ক্ষেত্ৰত সাধাৰণ সৰ্বনাম শব্দৰ উপৰি বিশেষ সৰ্বনাম বুজাবৰ বাবে বিশেষভাৱে সন্মানাৰ্থ ৰূপ বা শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

তলত এই অধ্যয়নৰ অন্তত লাভ কৰা কিছু সিদ্ধান্ত দাঙি ধৰা হ'ল—

- টাই-আহোম ভাষাত সাত প্ৰকাৰ সৰ্বনাম শব্দ পোৱা যায়।
- টাই আহোম ভাষাৰ বিভিন্ন সৰ্বনামবোৰৰ ভিতৰত ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম উল্লেখযোগ্য। এই সৰ্বনাম গঠনৰ ক্ষেত্ৰত তিনিটা পুৰুষৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। যেনে— প্ৰথম, দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় পুৰুষ। আনহাতে টাই-আহোম ভাষাৰ ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামৰ অংশ বিশেষ সন্মানাৰ্থক ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম শব্দৰ গঠনৰ ক্ষেত্ৰত মৌলিক সৰ্বনামৰ লগত মান্যাৰ্থক ৰূপ যোগ কৰা হয়।
- টাই-আহোম ভাষাত কাৰকৰ ধাৰণা দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত কিছুমান কাৰকসূচক ৰূপৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এনে কাৰকবাচক ৰূপসমূহ হ'ল— ‘tiː’ ‘auː’ ‘luk tiː’ আদি।
- টাই-আহোম ভাষাত কালবাচক, স্থানবাচক আৰু সম্বন্ধবাচক শব্দৰ প্ৰত্যেকৰে সুকীয়া সুকীয়া ৰূপ আছে যদিও ইয়াৰ প্ৰতিটো সৰ্বনামৰ ব্যৱহাৰৰ সংখ্যা একেবাৰে কম।
- টাই-আহোম ভাষাত সৰ্বনাম শব্দৰ গঠন অনুসৰি দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। যেনে— মৌলিক সৰ্বনাম আৰু সাধিত সৰ্বনাম। সাধিত সৰ্বনামৰ তুলনাত মৌলিক সৰ্বনামৰ সংখ্যা কম। সাধিত সৰ্বনামবোৰ দুই ৰূপবিশিষ্ট। অৰ্থাৎ দুটা মৌলিক শব্দ পৰস্পৰ সংযোগ ঘটাই সাধিত সৰ্বনাম গঠন কৰা হয়। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কোঁৱৰ, অৰ্পণা. *ভাষাবিজ্ঞান উপক্ৰমণিকা.* ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, পঞ্চম সংস্কৰণ, ডিচেম্বৰ, ২০১৫

–.*অসমৰ ভাষাৰ বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন.* ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০২০

গগৈ, পুষ্প আৰু বগেন গগৈ (সম্পা). *তাই সংস্কৃতি.* ধেমাজি ঃ পূৰ্বাঞ্চল তাই সাহিত্য সভা, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৮৯

গোহাঁই, আইম্যাখেং. *টাই ভাষাৰ প্ৰাথমিক পাঠ ব্যাকৰণেৰে সৈতে.* ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয় ঃ অসমীয়া বিভাগ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ,অক্টোবৰ, ১৯৯৭

গোহাঁই, ঙি পেথৌন আৰু আমছন গোহাঁই . *টাই ভাষাৰ কথোপকথন (প্ৰাথমিক পাঠ).* ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয় ঃ ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ছেপ্টেম্বৰ, ২০১১

বৰুৱা, ভীমকান্ত. *টাই ভাষা আৰু সংস্কৃতি.* গুৱাহাটী ঃ অশোক বুক ষ্টল, প্ৰথম প্ৰকাশ, ছেপ্টেম্বৰ, ২০১৩

বৰুৱা, ঘনকান্ত. *আহোম প্ৰাইমাৰ.* গুৱাহাটী ঃ বুৰঞ্জী আৰু পুৰাতত্ত্ব বিভাগ, ১৯৮৭

Aronoff, Mark. *Word Formation in Generative Grammar*. United States of America : Printed and bound, Third priting, 1985

Gogoi, Padmeswar. *The Tai and the Tai Kingdoms*. Guwahati University : Dept.of Publication, 1968

Diller, Anthony, V. N Jerold A.àßdmondson and Yongxian Luo.*The Tai-Kadai Language*. Routledgegs, First Publishse, 2008

Benedict, P.K. *Sino-Tibettan A Conspectus.* Cambridge : University press, 1972

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

মামণি ৰয়ছমৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু আৰ. কে. নাৰায়ণৰ 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা

ড° গকুল কুমাৰ দাস

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
দৰং মহাবিদ্যালয়, তেজপুৰ
শোণিতপুৰ, অসম-৭৮৪০০১
৯৮৬৪১৫৭০৫৯
gakuldas07@gmail.com

অৱতৰণিকা ঃ

সাম্প্ৰতিক সাহিত্যক্ষেত্ৰত তুলনামূলক সাহিত্যৰ দৃষ্টিভংগী অতি ব্যাপক আৰু বিশ্বমানৰ বুলি বিবেচনা কৰা হৈছে। সাহিত্যৰ মানদণ্ডক তুলনামূলক বিচাৰে উচ্চ পৰ্যায়লৈ পৰ্যবসিত কৰা দেখা হৈছে। এই ধৰণৰ বিচাৰে সমাজ, সাহিত্য বা সংস্কৃতিৰ স্বকীয় বৈশিষ্ট্যসমূহ নিৰূপণ কৰাত সহায় কৰে। ভাৰতীয় সাহিত্যৰ বিভিন্ন প্ৰাদেশিক পৰিমণ্ডলত চুটিগল্পৰে প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰা সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত মামণি ৰয়ছম গোস্বামী আৰু আৰ.কে. নাৰায়ণ অন্যতম। নিজস্ব ষ্টাইল আৰু বিষয়েৰে গল্পসমূহক দুয়োজন গল্পকাৰে স্বকীয়তা প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে ৰচনা কৰা 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু আৰ. কে. নাৰায়ণৰ 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' শিৰোনামৰ গল্প দুটাৰ তুলনামূলক আলোচনাৰ জৰিয়তে গল্পকাৰ দুগৰাকীৰ গল্পৰ বিশেষত্বসমূহ বিচাৰ কৰিব পৰা যায়। ইয়াৰ উপৰি দুয়োটা গল্পৰ অৰ্ন্তনিহিত তত্ব, সাদৃশ্য, বক্তব্য বিষয়সমূহ আৰু গল্পকাৰৰ দৃষ্টিভংগী সন্দৰ্ভতো তুলনামূলক বিচাৰৰ জৰিয়তে আলোচনা কৰিব পাৰি।

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প - চমু আলোকপাত ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামী অসমৰ সাহিত্যাকাশৰ এটা উজ্বল নক্ষত্ৰ। চুটিগল্পৰে সাহিত্য জীৱন আৰম্ভ কৰা মামণি ৰয়ছমে গল্পৰ সমানুপাতিকভাৱে উপন্যাস ৰচনাৰ জৰিয়তেও খ্যাতি অৰ্জন কৰিছে।

মামণি ৰয়ছমৰ গল্পসমূহ গভীৰ অৰ্ন্তদৃষ্টি সম্পন্ন। জীৱনৰ সঞ্চিত অভিজ্ঞতাসমূহ একত্ৰিত কৰি তেওঁ গল্পত ৰূপদান কৰিছে। জীৱনৰ ঘাত-প্ৰতিঘাত, দুঃখ-যন্ত্ৰণা, জীৱনৰ অৰ্থহীনতা আদি তেওঁ গল্পৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ কৰিবলৈ সমৰ্থ হৈছে। সময়ে সময়ে তেওঁৰ গল্পত প্ৰতিবাদী নাৰীসত্তাই মুৰ দাঙি উঠিছে। কেতিয়াবা আকৌ দৰিদ্ৰ, নিঃস্ব, শ্ৰমজীৱী মানুহৰ জীৱন-যন্ত্ৰণা তেওঁ অতি সাৰ্থক ৰূপত অংকন কৰিছে। মামণি ৰয়ছমৰ শ্ৰেষ্ঠ গল্পসমূহৰ ভিতৰত 'পৰশু পাতৰৰ নাদ', 'উদং বাকচ', 'সংস্কাৰ', 'ৰিণিকি ৰিণিকি দেখিছোঁ যমুনা', 'সন্ধ্যা ললিতা দূৰৈত কান্তা', 'ঈশ্বৰীৰ সংশয় আৰু প্ৰেম', 'দেৱীপীঠৰ তেজ' ইত্যাদি প্ৰধান। মামণি

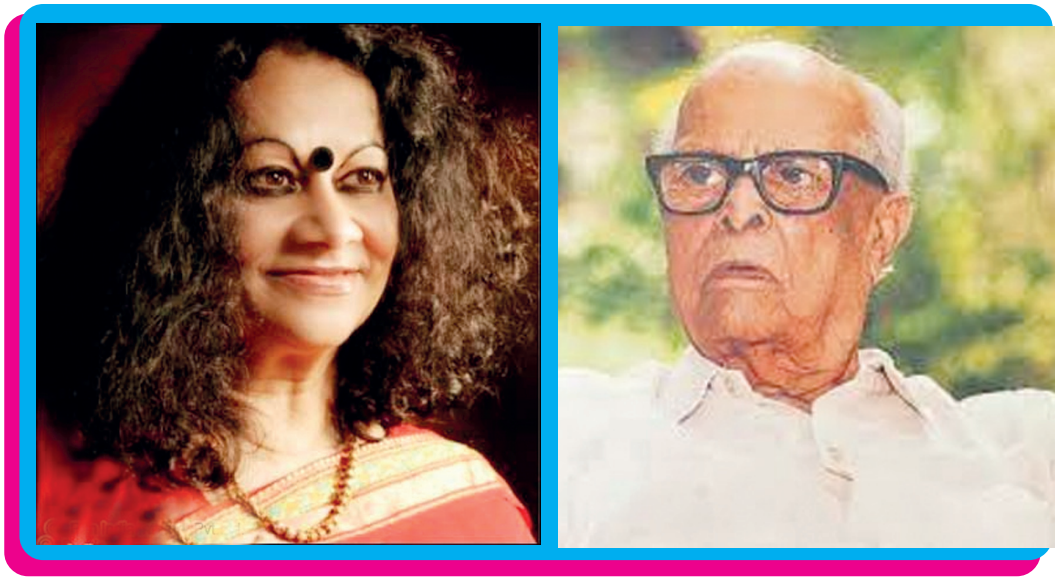

ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সংকলনসমূহ হ'ল- 'চিনাকি মৰম', 'কইনা', 'হৃদয় এক নদীৰ নাম', 'মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ প্ৰিয় গল্প'।

আৰ. কে. নাৰায়ণৰ গল্প - চমু পৰিচয় ঃ

১৯০৬ চনৰ ১০ অক্টোবৰত দক্ষিণ ভাৰতৰ মাদ্ৰাজ (বৰ্তমান চেন্নাই)ত জন্ম লাভ কৰা আৰ.কে. নাৰায়ণ ভাৰতৰ প্ৰসিদ্ধ গল্পকাৰসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম। একেধাৰে উপন্যাস ৰচনাতো তেওঁ আছিল সিদ্ধহস্ত। আৰ.কে. নাৰায়ণে দক্ষিণ ভাৰতৰ এখন সৰু চহৰ মালগুড়িক তেওঁৰ গল্প আৰু উপন্যাসৰ পটভূমি হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। মালগুড়িকেন্দ্ৰিক তেওঁৰ গল্পসমূহ অতি জনপ্ৰিয়। তদুপৰি স্বকীয় কথনভংগীৰে তেওঁ গল্পৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ 'স্বামী'কো পাঠকৰ মাজত জনপ্ৰিয় কৰি তুলিছে। তেওঁৰ উল্লেখযোগ্য গল্প সংকলনসমূহৰ ভিতৰত A horse and two goats, Malgudi days, Under the banyan, Swami and friends আদি প্ৰধান। সূক্ষ্ম বিষয়বস্তুক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচনা কৰা নাৰায়ণৰ গল্পসমূহে পাঠকক গভীৰ মানৱীয় অনুভূতি আৰু ৰসবোধ প্ৰদান কৰে। লগতে তেওঁৰ গল্পত আছে বঞ্চিত আৰু দুৰ্ভাগ্য পীড়িত মানুহৰ জীৱন-যন্ত্ৰণাৰ ছবি।

'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' গল্প দুটাৰ কাহিনী ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু আৰ.কে. নাৰায়ণৰ 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' নামৰ গল্প দুটাই ভাৰতীয় সমাজ ব্যৱস্থাৰ দুৰ্দশাগ্ৰস্ত মানুহশ্ৰেণীক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। গল্প দুটাৰ পটভূমি ভিন্ন — এটাৰ অসম মুলুকৰ লক্ষীমপুৰ জিলাৰ ভিতৰুৱা গাঁও এখন আৰু আনটোৰ দক্ষিণ ভাৰতৰ এখন সৰু চহৰ মালগুড়ি।

মামণি ৰয়ছমৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' গল্পৰ কাহিনী অনুযায়ী পৰশু নামৰ এজন অত্যন্ত দুখীয়া ডেকাক দু�ৰাৰোগ্য ব্যাধিত আক্ৰান্ত ভায়েকৰ সুচিকিৎসাৰ বাবে টকাৰ প্ৰয়োজন হৈছে। ধনৰ অভাৱ পূৰণৰ বাবে সি অফিচে অফিচে ঠিকা বিচাৰি ঘূৰি ফুৰিছে। ৰেচম বিভাগৰ বিষয়া তথা বাবুসকলক খাটনি ধৰি অৱশেষত লাইমেকুৰী নামৰ ঠাইত নাদ খন্দাৰ ঠিকা এটা পালে। নাদ খান্দিবৰ বাবে ধন বিচাৰি গাঁৱৰে মণ্ডলৰ লগত পৰশুৱে ৰহমত কাবুলীৱালাৰ ওচৰ পালেগৈ। ৰহমত পাঠানে মাকৰ থুৰীয়াৰ বিনিময়ত তাক টকা ধাৰলৈ দিলে। পৰশুৱে নাদ খান্দিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। ইতিমধ্যে নাদ খন্দা ঠাই টুকুৰাক লৈ নানা বেমেজালি সৃষ্টি হ'ল- কেতিয়াবা স্থানীয় গঞাই নাদ খান্দিব নিদিয়ে, কেতিয়াবা খান্দি থকা ঠাইত পানী নোলায়। এইদৰে নতুনকৈ ঠিকাদাৰ হৈ পৰা পৰশু অনেক খৰচান্ত হ'ল। অৱশেষত নাদ খন্দা কাম শেষ হ'ল। বিষয়া-বাবুসকলক ভাৰ-ভেটি দি সি অনেক কষ্ট কৰি ঠিকাৰ ধনো

মোকলাই আনিলে। কিন্তু ঠিকাত তাৰ লাভ নহ'ল। মাজতে মধ্যভোগীৰূপত ওলাল চক্রধৰ মণ্ডল। কাবুলীৱালাৰ পৰা ধন ধাৰলৈ লৈ দিয়াৰ বিনিময়ত কম মূল্যতে পৰশুৰ মাকৰ কাণৰ থুৰীয়াযোৰ সৰকাব বিচাৰিলে। গতিকে পৰশু বিমোৰত পৰিল। ভায়েকক উন্নত চিকিৎসাৰ বাবে ভেলোৰলৈকো নিব নোৱাৰে, মাকৰ থুৰীয়াও কাবুলীৱালাৰ পৰা ঘূৰাই আনিব নোৱাৰে— তাৰ এনেহেন অৱস্থা হ'ল। পিছত ৰহমত পাঠানে পৰশুৰ দুর্দশাগ্রস্ত অৱস্থাটো প্রত্যক্ষ কৰি তাক ঋণ মাফ কৰি দিলে আৰু মাকৰ থুৰীয়াযোৰ ঘূৰাই দিলে।

আৰ.কে. নাৰায়ণৰ 'ইঞ্জিন ট্রাব'ল' শীর্ষক গল্পটোত এখন 'ৰোড ৰোলাৰ'ক কেন্দ্র কৰি ঘটা এজন মানুহৰ দুর্দশাৰ ছবিখন অংকন কৰিবলৈ প্রয়াস কৰা হৈছে। গল্পটো প্রথম পুৰুষত ৰচনা কৰা হৈছে আৰু চহৰৰ মেলাত অনুষ্ঠিত ভাগ্যপৰীক্ষা বা লটাৰীৰ টিকট ক্রয়ৰ জৰিয়তে কথকে লাভ কৰিছে এখন ৰোড ৰোলাৰ। ৰোলাৰখনক লৈ তেওঁ ধনী হোৱাৰ স্বপ্ন দেখা পাইছে। একো নহ'লেও ৰোলাৰখনৰ লোহা-লক্কৰ বিক্রী কৰি হ'লেও লাভবান হোৱাৰ স্বপ্ন দেখা পাইছে। পিছে মেলা শেষ হৈ যোৱাৰ পিছতহে আৰম্ভ হৈছে কথকৰ যন্ত্রণা। তেওঁ যিখন ৰোলাৰ লাভ কৰিছিল সেইখন আছিল কাৰিকৰী বিজুতিসম্পন্ন। গতিকে মেলাস্থলী (জিমখানা গ্রাউণ্ড)ৰ পৰা তেওঁ ৰোলাৰখন আঁতৰাব পৰা নাই। ৰোলাৰখন 'জিমখানা গ্রাউণ্ড'ত ৰখাৰ বিনিময়ত কথকে ভাৰা দৈনিক হিচাপত চহৰ প্রশাসনক আদায় দিবলগাতহে পৰিল। 'জিমখানা গ্রাউণ্ড'ৰ ভাৰা ক্রমান্বয়ে বাঢ়ি যোৱাত কথকে নিজৰ ঘৈণীয়েকৰ সোণৰ গহণা পর্যন্ত বন্ধকত থ'বলগীয়া হ'ল। এই লৈ তেওঁ কমিচনাৰ আৰু অন্য দুই-এক ওখ খাপৰ মানুহৰ ওচৰ চাপিছে যদিও কোনেও তেওঁৰ পৰা ৰোলাৰখন ভাৰালৈ বা কিনি ল'বলৈ বিচৰা নাই। এনে সময়তে জিমখানা গ্রাউণ্ডলৈ আগমন ঘটিছে অন্য এক মেলাৰ। ইয়াৰ পৰিপ্রেক্ষিতত স্বাভাৰিকতে কমিচনাৰৰ পৰা কথকে ৰোলাৰখন আঁতৰ কৰাবৰ বাবে জাননী লাভ কৰিছে। এই লৈও কথক বিমোৰত পৰিছে। অৱশেষত ভালেমান বনুৱা, ড্রাইভাৰ আৰু এটা হাতী লৈ তেওঁ ৰোলাৰখন টানি নিয়াৰ প্রয়াস কৰিছে। কিন্তু তাতো তেওঁ বিফল হৈছে। এটা সময়ত ৰোলাৰখন পিছুৱাই আহি মানুহৰ ঘৰ এটা ভাঙিছে আৰু ভয়ার্ত হাতীটোৱেও এখন পকী দেৱাল ভাঙি পেলাইছে। ঘৰ আৰু দেৱালৰ ক্ষতিপূৰণ দিব লগা হোৱাৰ উপৰি ড্রাইভাৰ আৰু বনুৱাকো মজুৰি দিব লগা হৈছে। এনে সময়তে চহৰত প্রৱেশ ঘটিছে এজন সন্যাসী (স্বামীজী)ৰ। এই স্বামীজীয়ে দাবী কৰে যে দেহৰ ওপৰেৰে ৰোলাৰ চলাই লৈ গ'লেও তেওঁৰ একো অনিষ্ট নহয়। কথকে ইয়াৰ সুযোগ লৈ ৰোলাৰখন আঁতৰাব বিচাৰিছিল যদিও স্বামীজীৰ দেহৰ ওপৰেদি ৰোলাৰ চলোৱাৰ ক্ষেত্রতো শেষমুহূর্তত আইনী বাধা আহি পৰিল। মুঠতে কথক কোনোফালেদিয়েই দুর্দশামুক্ত হ'ব নোৱাৰিলে। ৰোলাৰখন থকা ঠাইতে এটা পৰিত্যক্ত কুৱা আছিল আৰু প্রশাসনে বিভিন্ন উপায় কৰিও কুৱাটো বন্ধ কৰিব পৰা নাছিল। এদিন এটা প্রকাণ্ড ভূমিকম্পই গোটেই চহৰখন কঁপাই তুলিলে আৰু সকলো তচনচ হৈ পৰিল। এই ভূমিকম্পতে ৰোলাৰখন আহি কুঁৱাটোৰ ওপৰত পৰিল আৰু কুঁৱাটো বন্ধ হৈ গ'ল। এই প্রাকৃতিক দুর্যোগটোৱে কথক আৰু কুঁৱাৰ গৰাকী দুয়োলৈ শান্তি আনি দিলে। ৰোডৰোলাৰে সৃষ্টি কৰা সমস্যাৰ পৰা কথক মুক্ত হ'ল আৰু কুঁৱা বন্ধ কৰাৰ বিনিময়ত কেইটামান টকাও লাভ কৰিলে।

'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু 'ইঞ্জিন ট্রাব'ল' গল্প দুটাৰ তুলনামূলক আলোচনা ঃ

ভাৰতীয় সাহিত্যক্ষেত্রৰ দুগৰাকী বিশিষ্ট গল্পলেখক মামণি ৰয়ছম গোস্বামী আৰু আৰ.কে. নাৰায়ণ। ভাৰতৰ দুটা ভিন্ন প্রান্তত অৱস্থান গ্রহণ কৰি দুয়োজন গল্পকাৰে মানুহৰ জীৱন সংগ্রাম আৰু যন্ত্রণাৰ ছবি অংকন কৰা দেখা গৈছে। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' এটা বহু পঠিত আৰু বহু প্রশংসিত গল্প। আৰ.কে. নাৰায়ণৰ মালগুড়ি নামৰ সৰু চহৰখনক কেন্দ্র কৰি ৰচনা কৰা গল্পসমূহৰ ভিতৰত 'ইঞ্জিন ট্রাব'ল' সমালোচকসকলৰ দ্বাৰা বহু প্রশংসিত এটা গল্প।

ভাৰতীয় সাহিত্যৰ দুয়োজন গল্পকাৰৰ এই দুয়োটা গল্পতে দেখা যায় আর্থিকভাৱে অনগ্রসৰ আৰু দুর্দশাগ্রস্ত মানুহৰ কৰুণ চিত্র। মামণি ৰয়ছমৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' গল্পটিত কেন্দ্রীয় চৰিত্র পৰশু এজন দুর্দশাগ্রস্ত আৰু আর্থিকভাৱে অনগ্রসৰ ডেকা। জীৱনৰ সংগ্রাম তাৰ বাবে বৰ কষ্টকৰ। ঘৰত বৃদ্ধ মাতৃ আৰু দু�ৰাৰোগ্য

কৰ্কট ৰোগত আক্ৰান্ত ভাতৃ। অন্যহাতে 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' গল্পটি ৰচিত হৈছে প্ৰথম পুৰুষত আৰু গল্পটিৰ কথক এজন নিম্ন মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ লোক। দুয়োটা গল্পৰ দুয়োটা মুখ্য চৰিত্ৰৰ জৰিয়তে আৰ্থিকভাৱে পিছপৰা লোকৰ জীৱন-যন্ত্ৰণা অংকন কৰা হৈছে। মামণি ৰয়ছমৰ গল্পত দেখা গৈছে যে কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ পৰশুৰ সৌভাগ্য উদয় হৈছে ৰেচম সঞ্চালকালয়ৰ পৰা লাভ কৰা এটা ঠিকাৰ জৰিয়তে। তদ্ৰুপ আৰ.কে. নাৰায়ণৰ গল্পৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰটিৰো ভাগ্যলক্ষ্মী সুপ্ৰসন্ন হৈছে লটাৰীৰ পুৰস্কাৰ লাভৰ পিচত। চৰিত্ৰটিয়ে লটাৰীযোগে লাভ কৰা পুৰস্কাৰৰ জৰিয়তে উপকৃত হৈছে আৰু লাভ কৰিছে এখন 'ৰোড ৰোলাৰ'। দুয়োটা গল্পৰে কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ দুটাই নিজৰ দুঃখ আৰু সংকট মোচনৰ উপায় হিচাপে ক্ৰমে ঠিকা আৰু 'ৰোডৰোলাৰ' লাভ কৰি উৎসাহী হৈ পৰিছিল। পৰশুৰ ইচ্ছা আছিল ঠিকাৰ জৰিয়তে লাভ হোৱা ধনেৰে সি তাৰ ৰোগাক্ৰান্ত ভ্ৰাতৃৰ চিকিৎসা কৰাব -- প্ৰয়োজন সাপেক্ষে ভ্ৰাতৃক ভেলোৰলৈ লৈ যাব। আৰ.কে. নাৰায়ণৰ গল্পটিতো কথকে লটাৰীৰ জৰিয়তে লাভ কৰা ৰোলাৰখনকে সম্বল হিচাপে ধনী হোৱাৰ স্বপ্ন দেখা পাইছে - প্ৰয়োজন সাপেক্ষে ৰোলাৰখনৰ লোহা-লক্কৰ বিক্ৰী কৰি হ'লেও ধনী হোৱাৰ সপোন দেখিছে।

'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' গল্প দুটাৰ আৰু অনেক দিশত সমৰূপতা লক্ষ্য কৰা যায়। নিম্নবিত্ত মানুহৰ জীৱনযাত্ৰা সদায় দুঃসহ। যাত্ৰাপথত তেওঁলোকে অনেক ঘাত-প্ৰতিঘাত সহ্য কৰিবলগীয়া হয়। উচ্চবিত্ত মানুহ আৰু তথাকথিত সমাজব্যৱস্থাই এই শ্ৰেণীৰ মানুহক দিয়ে যন্ত্ৰণাৰ উপৰি যন্ত্ৰণা। পৰশু পাতৰে ৰেচম বিভাগৰ পৰা লাভ কৰা কুঁৱা খন্দাৰ ঠিকাৰ ক্ষেত্ৰতো অনেক হাৰাশাস্তিৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হৈছে। ঠিকা লাভ কৰাৰ আগত আৰু পিছত সি লাভ কৰা যন্ত্ৰণা অবৰ্ণনীয় আৰু অসহনীয়। জেঠমহীয়া ৰ'দকো নেওচি ৰেচম বিভাগৰ কাৰ্যবাহী অভিযন্তাৰ কাৰ্যালয়ৰ বাহিৰত পৰ দিব লগা হৈছিল— দীৰ্ঘদিনৰ বাবে অফিছৰ গছৰ তলত খাপ পিটি থাকিবলগীয়া হৈছিল। এনে কৰোতে— 'পৰশুৰ পিঠিৰে ঘামৰ জোল বৈছিল। ডিঙি শুকাই কাঠ হৈ গৈছিল।'[১] বিভিন্ন সময়ত পেটত খুদকণ এটাও নিদিয়াকৈ সি ঠিকা লাভৰ আশাত অপেক্ষা কৰিছিল। আশা-নিৰাশাৰ দোমোজাত ৰৈ থাকোঁতে সি গমেই পোৱা নাছিল যে তাৰ মূৰৰ ওপৰত দুপৰীয়াৰ প্ৰচণ্ড সূর্যই তাণ্ডৱ নৃত্য কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। সি মাথো অনুভৱ কৰিব পাৰিছিল— 'গাৰ ৰস শুহি তাক যেন ভেলিৰ সিটালৈ ৰূপান্তৰ কৰিব।'[২] অনেক কষ্টৰে ৰেচম বিভাগৰ বিষয়া (এ.ডি.এছ.)ক তৈল মৰ্দন বা খাটিৰ কৰি নাদ খন্দা ঠিকা লাভৰ বাবে প্ৰচেষ্টা চলাইছে-- 'আমি গৰীব মানুহ ছাৰ। ভাই এটা গুৱাহাটীৰ কালাপাহাৰ হাস্পতালত কেমোথেৰাপী লৈ পৰি আছে।'[৩]

আৰ.কে. নাৰায়ণৰ 'ইঞ্জিন ট্ৰাব'ল' গল্পটিৰ নায়কৰো তদ্ৰূপ অৱস্থা। লটাৰীযোগে ভাগ্য সুপ্ৰসন্ন হোৱাৰ পিছত যি ৰোডৰোলাৰ তেওঁ লাভ কৰিছে, সেই ৰোডৰোলাৰেই পিছলৈ হৈ পৰিছে তেওঁৰ বাবে গলগ্ৰহৰ প্ৰতীকস্বৰূপ। ৰোলাৰখন মেলাস্থলী (জিমখানা গ্ৰাউণ্ড)ৰ পৰা আঁতৰোৱাবৰ বাবে নগৰ কৰ্তৃপক্ষই গল্পটিৰ নায়কলৈ জাননী জাৰি কৰিছে। ৰোলাৰখন আঁতৰোৱাটো হৈ পৰিছে নায়কৰ প্ৰধান সমস্যা। এই সমস্যা সমাধানৰ উপায় বিচাৰি নায়কে চহৰৰ চেয়াৰমেন আৰু অন্য দুই-এক বিষয়াক লগ ধৰিছে। পৰশুৰ নিচিনাকৈ কথকেও চেয়াৰমেনক খাটনি ধৰিছে যাতে চেয়াৰমেনে ৰোডৰোলাৰখন নগৰ উন্নয়ন কৰ্তৃপক্ষৰ বাবে ভাৰালৈ লয়। কাৰণ নায়কে জানে যে কৰ্তৃপক্ষৰ হাতত নিজা ৰোলাৰ নাই। গতিকে উক্ত কৰ্তৃপক্ষই উক্ত ৰোলাৰখন ভাৰালৈ ল'ব পাৰে।

আধুনিক ভাৰতৰ ইতিহাস প্ৰত্যক্ষ কৰিলে এই কথা স্পষ্ট হৈ পৰে যে বৃটিছ শাসনকালীন ভাৰতত অৰ্থনৈতিক আৰু প্ৰশাসনিক ব্যৱস্থাত ব্যাপক পৰিৱৰ্তন ঘটিল। এই সময়তে ভাৰতত সৃষ্টি হ'ল নতুন পুঁজিবাদী সমাজ ব্যৱস্থা। এই সমাজ ব্যৱস্থাই ভাৰতবৰ্ষৰ শ্ৰেণীসংগ্ৰামখনক বহুধা বিভক্ত কৰি তুলিলে। আমাৰ সমাজ ব্যৱস্থাত সৃষ্টি হ'ল নতুন নতুন শ্ৰেণী।[৪] মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীটো এইসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম। মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীক পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত আকৌ অন্য কেইবাটাও ভাগত বিভক্ত হৈ পৰিল। মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ ওপৰত থাকিল পুঁজিপতি শ্ৰেণীটো; আনহাতে তলত থাকিল শ্ৰমিক শ্ৰেণীটো। শাসন আৰু শোষণ প্ৰক্ৰিয়াৰ মাজেৰে আমাৰ সমাজব্যৱস্থা বৰ্ত্তি থাকিল। তাহানিৰ পৰাই পুঁজিপতি

শ্রেণীটোৰে শ্রমিক বা নিম্নবিত্ত শ্রেণীক শোষণ কৰি আহিছে আৰু আজিও শোষণ কৰি আছে।

মামণি ৰয়ছম আৰু আৰ.কে. নাৰায়ণৰ গল্পতো পুঁজিপতি আৰু শ্রমিক দুয়োটা শ্রেণীৰে প্রতিনিধিত্ব লক্ষ্য কৰা যায়। পুঁজিপতি বা ধনবান শ্রেণীৰ হাতত শ্রমজীৱী শ্রেণীৰ লোক পদে পদে লাঞ্ছিত হোৱা দেখা যায়। মামণি ৰয়ছমৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' গল্পত দেখা গৈছে যে গল্পটোত চিত্রিত চক্রধৰ মণ্ডল আৰু কাবুলীৱালা ৰহমত পাঠান পুঁজিপতি শ্রেণীৰ প্রতিনিধি। আনহাতে পৰশু পাতৰ নামৰ যুৱকজন শ্রমজীৱী শ্রেণীটোৰ প্রতিনিধি। আৰ.কে. নাৰায়ণৰ গল্পটিতো তথাকথিত পুঁজিপতি আৰু শ্রমজীৱী বা নিম্নবিত্ত— দুয়োটা শ্রেণীৰে প্রতিনিধিত্ব দেখা গৈছে। নগৰ উন্নয়ন কমিটিৰ চেয়াৰমেনজন ৰুক্ষ আৰু হৃদয়হীন। তেওঁৰ তথাকথিত দুখীয়া বা আর্থিকভাৱে পিছপৰা শ্রেণীটোৰ প্রতি কোনো ধৰণৰ অনুকম্পা নাই। সামন্তপ্রভুৰ নিচিনা তেওঁৰ চৰিত্রত দুখীয়াৰ দুঃখৰ প্রতি আওকণীয়া মনোভাৱ স্পষ্ট। নিম্নবিত্ত শ্রেণীৰ প্রতিনিধি হিচাপে দেখা দিয়া গল্পটিৰ কথকৰ অনুৰোধৰ প্রতি তেওঁ কোনো কাণষাৰেই দিয়া নাই। গল্পটিত থকা অন্য এটা সদৃশ চৰিত্র হ'ল 'কচ্‌ম'পলিটান ক্লাৰ'ৰ সম্পাদকজন। সম্পাদকজনে কথকক উদ্দেশ্যি কোৱা কথাখিনিয়ে কথকক হুলে বিন্ধাদি বিন্ধিছে— "I'll dispose of it at a concession for you. You have a tennis court to be rolled every morning."[৫] মামণি ৰয়ছমৰ গল্পটিত আকৌ চক্রধৰ মণ্ডলে পৰশুৰ মাকৰ কাণৰ থুৰীয়াযোৰ সৰকোৱাৰ ফন্দি পাঙিছে। মণ্ডলৰ কথাত সেয়া স্পষ্ট-- "ৰহমত পাঠানৰ পৰা পইচা পাতি যোগাৰ কৰি দিলে আন মানুহে মোক শকত ধৰণেই 'কমিশ্চন' দিয়ে। কেইবাবছৰো খাব পৰা জোখেৰে ধান দিয়াৰো উদাহৰণ আছে... তহঁতৰ অৱস্থা দেখি মই বৰ বেছি একো আশা নকৰোঁ। কিন্তু ৰহমত পাঠানৰ ওচৰত বন্ধকিত থোৱা কাণৰ থুৰীয়াযোৰ তহঁতে মোক দিব লাগিব। বিলৰ টকা পোৱাৰ লগে লগে ৰহমতক টকা ওভতাই দিবি। সি থুৰীয়াযোৰ ওভতাই দিব। সঁচা কথা ক'বলৈ গ'লে, থুৰীয়াযোৰত পাঁচ অনাৰ সোণ আছে নে নাই সন্দেহ। মই কিবা এটা তাম অৱশ্যে দিম।"[৬]

গল্প দুটিৰ সামৰণিও প্রায় সদৃশ। মামণি ৰয়ছমৰ গল্পটিত দেখা গৈছে পৰশুৰে অশেষ কষ্টৰ মূৰত নাদ খান্দিবলৈ সক্ষম হৈছে। বিভাগৰ বিষয়াক মেনেজ কৰি (চুৰীয়া-চাদৰ দি মদ খুৱাই) ঠিকাৰ ধন লাভ কৰিছে। আৰ.কে. নাৰায়ণৰ গল্পটিত দেখা গৈছে এটা প্রচণ্ড ভূমিকম্পই গল্পটিৰ নায়কৰ দুঃখ নিবাৰণ কৰিছে। প্রচণ্ড ভূমিকম্পত ৰোলাৰখন আহি এটা কুঁৱাৰ ওপৰত পৰিল। ফলত কুঁৱাটো বন্ধ হৈ থাকিল। ইয়াৰ পৰাই গল্পটিৰ নায়ক আৰু কুঁৱাৰ গৰাকী দুয়োৰে লাভ হ'ল। কুঁৱাৰ গৰাকীয়ে কুঁৱাটো বন্ধ কৰিব বিচাৰিছিল, কিন্তু পৰা নাছিল। ৰোলাৰখন কুঁৱাত পৰাৰ ফলত জিমখানা গ্রাউণ্ডৰ পৰা ৰোলাৰখনো আঁতৰ হ'ল আৰু কুঁৱাটোও বন্ধ হ'ল। দেখা যায়— গল্প দুটাত দুয়োজন নায়কেই শেষলৈ কষ্টৰ বলতেই হওঁক বা ভাগ্যৰ বলতেই হওঁক নিজৰ দুর্দশা সমাপ্ত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

ইয়াৰ উপৰি দুর্দশাগ্রস্ত দুইজন ব্যক্তি— মামণি ৰয়ছমৰ পৰশু আৰু আৰ.কে. নাৰায়ণৰ কথকে জীৱনৰ যন্ত্রণাৰ পৰা মুক্তি পাবলৈ ক্রমে মাতৃ আৰু পত্নীৰ স্বর্ণালংকাৰ বন্ধকত থ'বলগীয়া হৈছে। ভাৰতীয় সমাজব্যৱস্থাত মাতৃ বা পত্নীৰ অলংকাৰ বন্ধকত থ'বলগীয়া হোৱাটো চৰম লজ্জাজনকেই নহয়, ভাৰতীয় পুৰুষে এনেধৰণৰ কার্যক অত্যন্ত অপমানসূচক বুলি জ্ঞান কৰে। কিন্তু দুয়োটা গল্পৰে নায়ক দুজন দুর্ভাগ্য আৰু দুর্দশাৰ বোকাত এনেধৰণে পোত গৈছে যে উপায়বিহীন হৈ চৰম লজ্জাজনক হোৱা সত্বেও নিজৰ মাতৃ বা পত্নীৰ সোণৰ অলংকাৰ বন্ধকত থ'বলগীয়া হৈছে। উদ্দেশ্য কিন্তু দুয়োজনৰে এটাই— দুঃখৰ পৰা মুক্তি।

সামৰণি ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' আৰু আৰ.কে. নাৰায়ণৰ 'ইঞ্জিন ট্রাব'ল' গল্প দুটাৰ পটভূমি ভিন্ন। বিষয়বস্তুতো বিশেষ সাদৃশ্য দেখা নাযায় যদিও দৰিদ্র, দুর্দশাগ্রস্ত আৰু নিপীড়িত মানুহৰ চৰিত্র চিত্রণৰ ক্ষেত্রত গল্প দুটাৰ বিশেষ পার্থক্য নাই। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ দৰিদ্র আৰু বঞ্চিত মানুহৰ প্রতি বিশেষ দৰদ আছে। এই দৰদৰ কথা তেওঁ নিজেই স্পষ্টভাৱে কৈ গৈছে— 'কল্পনা আৰু বাস্তৱৰ মায়াজাল গুঁঠি মই ভালপাওঁ। বঞ্চিতসকলে মানুহৰ মর্যাদা পোৱাৰ

সপোন দেখোঁ। বর্ণনাসমূহ যাতে হুবহু বাস্তৱৰ ৰূপ পাব পাৰে তাৰ বাবে মই কোনো চেষ্টা বাদ নিদিওঁ..... মোৰ চুটিগল্পবোৰৰ মাজত দিয়া বর্ণনাবোৰো মই বাস্তৱৰ ভেঁটিত আঁকিবৰ চেষ্টা কৰোঁ।"[৬] মামণি ৰয়ছমৰ জীৱনৰ এই আদর্শ 'পৰশু পাতৰৰ নাদ' গল্পত স্পষ্ট। আৰ.কে. নাৰায়ণৰ গল্পসমূহ কিছুপৰিমাণে হাস্যৰস উপলব্ধ যদিও গল্পসমূহত তীব্র মানৱীয় অনুভূতি বিদ্যমান। 'ইঞ্জিন ট্রাব'ল' গল্পটিৰ শিৰোনামেই তাৰ তাৎপর্য বহন কৰে। ইঞ্জিন এটাই এজন সাধাৰণ মানুহৰ জীৱনলৈ অনা দুঃখ আৰু যন্ত্রণাৰ ছবিখন গল্পটিত অংকন কৰা হৈছে। মামণি ৰয়ছমৰ গল্পৰ পটভূমি অসম মুলুকৰ লাইমেকুৰী নামৰ এখন অখ্যাত গাঁও, আনহাতে আৰ. কে. নাৰায়ণৰ গল্পটিৰ পটভূমি দক্ষিণ ভাৰতৰ মালগুড়ি নামৰ এখন সৰু চহৰ। পটভূমি আৰু পৰিৱেশ ভিন্ন হ'লেও দুয়োটা গল্পই স্বকীয় আৰু আপোন মহিমাৰে মহিমামণ্ডিত। ❑

তথ্যসূত্র ঃ

১। গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ স্বনির্বাচিত গল্প, পৃ.-৮৩
২। ----------ঃ সদ্যোক্ত গ্রন্থ, পৃ.-৮৩
৩। ----------ঃ সদ্যোক্ত গ্রন্থ, পৃ.-৮৪
৪। মহন্ত, প্রফুল্ল ঃ অসমীয়া মধ্য ৰিত্ত শ্রেণীৰ ইতিহাস, পৃ.-১
৫। Narayan, R.K.ঃ Malgudi Days page-103
৬। গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম ঃ পূর্বোক্ত গ্রন্থ, পৃ.-১১১,১১২

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য সমল ঃ

১। গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ স্বনির্বাচিত গল্প, নেশ্যনেল বুক ট্রাষ্ট, বসন্ত কুঞ্জ, নতুন দিল্লী, দ্বিতীয় পুনৰ মুদ্রণ, ২০০৯
২। Narayan, R.K. ঃ Malgudi Days, Indian thought Publications, Channai, 47th Reprint, 201

গৌণ সমল ঃ

১। গোহাই, ৰাণী (সম্পা.) ঃ হৃদয়ৰ তপস্বিনী, জ্যোতি প্রকাশন, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ১৯৯৯
২। গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম ঃ ঈশ্বৰী, জখমী যাত্রী আৰু অন্যান্য, জ্যোতি প্রকাশন, গুৱাহাটী, ১৯৯১
৩। দত্ত নেওগ, বিভা (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ঃ স্মৰণ সৃজন-মনন, কিৰণ প্রকাশন, ধেমাজি, প্রথম প্রকাশ, জানুৱাৰী, ২০১২
৪। বৰুৱা, প্রহ্লাদ কুমাৰ (সম্পা.) ঃ অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন, বনলতা, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্রকাশ, ২০০৫
৫। ভৰালী, হেমন্ত কুমাৰ (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সমগ্র,বনলতা, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, জুলাই, ২০১১
৬। ---------- ঃ মামণি ৰয়ছম স্বপ্ন দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী, চিত্রলেখা প্রকাশন, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ১৯৯৮
৭। মহন্ত, প্রফুল্ল (সম্পা.) ঃ অসমীয়া মধ্যবিত্ত শ্রেণীৰ ইতিহাস, লয়ার্ছ বুক ষ্টল, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ছেপ্তেম্বৰ, ১৯৯১
৮। ৰাজখোৱা, অৰবিন্দ (সম্পা.) ঃ অসমীয়া চুটি গল্পৰ গতি- প্রকৃতি, দত্ত প্রকাশন, অসমীয়া বিভাগ, উত্তৰ লক্ষীমপুৰ মহাবিদ্যালয়, প্রথম প্রকাশ, জুলাই ২০০৯

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমৰ মেচ জনগোষ্ঠী ঃ এটি ঐতিহাসিক অৱলোকন

ফণীধৰ মেচ

সহকাৰী অধ্যাপক, বুৰঞ্জী বিভাগ
বি এইচ বি কলেজ, সৰুপেটা
বৰপেটা (অসম)
৮৬৩৮৭৫০১৪৮
mechphanidhar123@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ (Abstract) ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব দিশত অৱস্থিত অসম শতাধিক জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বাসভূমি তথা মিলনভূমি। অসমলৈ সময়ে সময়ে বিভিন্ন লোকৰ আগমন ঘটিছে আৰু ইয়াৰ আদৰ, স্নেহ তথা আতিথ্য পৰায়ণতাত সন্তুষ্টি লাভ কৰি অসমকে নিজৰ বাসভূমি হিচাপে বাছি লৈছে। বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভিন্ন সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্যৰ আৰু বৈচিত্র্যতাৰ মাজত সমন্বয় ঘটি ইয়াতে সংহতি স্থাপন হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। অসমৰ এটি অন্যতম জনগোষ্ঠী হ'ল - মেচ জনগোষ্ঠী। তিব্বত-বর্মীয় ভাষা-ভাষী ইণ্ডো-মঙ্গোলীয় উপজাতিৰ মেচসকল অতি প্ৰাচীন কালতে অসমৰ পূব প্ৰান্তৰ ভাৰত বার্মাৰ মধ্যৱর্তী পাটকাই পাহাৰৰ মাজেৰে আহি অসমত প্ৰৱেশ কৰিছিল। ক্ৰমান্বয়ে এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল বিভিন্ন ভাগত বিভক্ত হৈ অসম, উত্তৰবঙ্গ, বাংলাদেশ আৰু নেপালৰো কিছু অংশত বিয়পি পৰিল। আমাৰ এই লানি আলোচনাত অসমৰ মেচ জনগোষ্ঠীৰ ঐতিহাসিক দিশৰ বিষয়ে এক বিদ্যায়তনিক দিশত আলোকপাত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

অসমৰ এটি অন্যতম জনগোষ্ঠী মেচ জনগোষ্ঠীৰ ঐতিহাসিক দিশ সম্পৰ্কে আলোকপাত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। এই ধৰণৰ আলোচনাৰ জৰিয়তে মেচসকল কোন, মেচ শব্দৰ অর্থ আৰু উৎপত্তিৰ উৎস সম্পৰ্কে জ্ঞাত হোৱাৰ লগতে এই অধ্যয়নৰ মূল লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য হৈছে বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়াত মেচ সকলৰ অৱদান সংমিশ্ৰণ আৰু সহ-অৱস্থানৰ কাৰক সমূহে কিদৰে প্ৰভাৱিত কৰিছে। আশা কৰা হৈছে এই ধৰণৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে অসমৰ মেচ জনগোষ্ঠীৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰা। লগতে অসমৰ জাতি গঠনৰ বিৱর্তনৰ বিষয়ে নতুন দিশ উন্মোচিত হ'ব আৰু ন ন গৱেষকসকলে নতুন পথৰ সন্ধান পাব।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই অধ্যয়নৰ মাজেৰে প্ৰাচীন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ - কামৰূপৰ লগতে বর্তমান সময়ৰ অসম ৰাজ্যৰ মেচ জনগোষ্ঠীৰ বিষয়ে এক বিদ্যায়তনিক দিশত অধ্যয়নৰ পথ প্ৰশস্ত কৰা হ'ব।

১.০ অৱতৰণিকা ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৱ দিশত অৱস্থান কৰা অসম ৰাজ্যৰ এটি অন্যতম আদিম জনগোষ্ঠী হ'ল মেচ জনগোষ্ঠী। John Henry Huttonএ তেওঁৰ 'Caste in India' (1946) গ্ৰন্থত ভাৰতীয় উপ-মহাদেশখনক এখন গভীৰ জালৰ লগত তুলনা কৰিছে যিখন জালত এছিয়াৰ বিভিন্ন জাতি, উপজাতি আৰু জনগোষ্ঠীৰ মানুহবোৰ পানীত মাছ ভাহি আহি জালত পৰাৰ দৰে সোমাই পৰিছে। ইয়াত বিভিন্ন ধৰ্ম, বিভিন্ন ভাষা, বিভিন্ন প্ৰথা, বিভিন্ন ৰং বিৰঙৰ মহান বৈচিত্ৰ্যৰ উপাদানৰ সংমিশ্ৰণ ঘটিছে। এই সমস্ত বৈচিত্ৰ্যময় লোকসকল তুলনামূলক স্থিতিশীলতাৰ মাজেৰে একেলগে বসবাস কৰাৰ সক্ষমতা অৰ্জন কৰিছে। নিৰ্দিষ্ট যুগৰ প্ৰয়োজনত একধৰণৰ জৈৱ প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে বিকশিত ৰীতি-নীতিৰ দ্বাৰা একেলগে যুক্ত হৈও একাধিক সমাজ হিচাপেও বৰ্ণনা কৰিব পাৰি।[১] এই ধৰণৰ ইতিহাসৰ অধিকাৰী হ'ল তিব্বত-বৰ্মীয় ভাষাভাষী ইন্দো-মঙ্গোলীয় উপজাতিৰ মেচসকলৰ ইতিহাস। এই মেচসকলে অতি প্ৰাচীন কালতে অসমৰ একেবাৰে পূব প্ৰান্তৰ ভাৰত-বাৰ্মাৰ মধ্যৱৰ্তী পাটকাই পাহাৰৰ মাজেদি অসমলৈ প্ৰৱেশ কৰিছিল। তেওঁলোকে লাহে লাহে বিভিন্ন ভাগত বিভক্ত হৈ সমগ্ৰ অসম, উত্তৰ বঙ্গ, পূৰ্ব বঙ্গ, বাংলাদেশ আৰু নেপালৰো কিছু অংশলৈ বিয়পি পৰিল।

১.১ অসমৰ মেচ জনগোষ্ঠী ঃ

বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাৰমতে "প্ৰাচীন অসমৰ আদিম জনজাতিসকল মেচসকলেই আছিল বুলি উল্লেখ কৰিছে। প্ৰাচীন অসমৰ কোনো নিৰ্ভৰযোগ্য ইতিহাস পোৱা নাযায়। তথাপিও প্ৰাপ্ত কিছু ঐতিহাসিক সমল তথা বিভিন্ন জাতি গোষ্ঠীৰ অৱস্থানবোৰৰ পৰা প্ৰাগৈতিহাসিক কালছোৱাৰ এটা আভাস পোৱা যায়। প্ৰাচীন সংস্কৃত গ্ৰন্থ মহাভাৰত, ৰামায়ণ, পুৰাণসমূহত প্ৰাচীন অসমক প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ আৰু কামৰূপ বুলি উল্লেখ কৰিছে। ইয়াৰ বাসিন্দাসকল ম্লেচ্ছ, কিৰাত, চীন বুলি উল্লেখ আছে। প্ৰাচীন সংস্কৃত আৰু পালি গ্ৰন্থত এই শব্দবিলাক অপমানসূচক অৰ্থত ব্যৱহৃত হৈছিল।"[২]

প্ৰাচীন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা কামৰূপ বা বৰ্তমানৰ অসম, বহু জাতি বহু গোষ্ঠী বহু ভাষা-ভাষীৰ মিলনস্থল। ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূবৰ অংশটো অতি প্ৰাচীন কালৰ পৰা বহু সংস্কৃতিৰ মিলনস্থলী। ইয়াৰ অতি প্ৰাচীন জনগোষ্ঠীসকলৰ ভিতৰত মেচসকলো

অন্যতম। এই মেচ শব্দটো সংস্কৃত 'ম্লেচ্ছ' শব্দৰ অসমীয়া ৰূপান্তৰ বুলি বাণীকান্ত কাকতিয়ে তেওঁৰ 'Assamese: Its Formation and Developement' (পৃষ্ঠা ৪২) নামৰ গ্ৰন্থত মেচ উল্লেখ কৰিছে।[৩] নগেন্দ্ৰ নাথ বসুৱে তেওঁৰ 'প্ৰাচীন কামৰূপৰ সামাজিক ইতিহাস' গ্ৰন্থত (পৃষ্ঠা ১২৮) এই মেচ আৰু কিৰাতসকল প্ৰাচীন অসমৰ অসুৰ বংশৰ অন্তৰ্গত বুলি উল্লেখ কৰিছে।

'সতপথ ব্ৰাহ্মণ'ত প্ৰথম 'ম্লেচ্ছ' সম্পৰ্কে আমি উল্লেখ পাওঁ। ইয়াত ম্লেচ্ছক মিলাক্ষ বুলি উল্লেখ আছে। মিলাক্ষ আৰু মিলাক্ষু পালি আৰু প্ৰাকৃত ভাষাত অনাৰ্যক বুজাবৰ বাবে ব্যৱহাৰ হয়।[৪] এইখনেই হৈছে প্ৰথম সংস্কৃত গ্ৰন্থ, য'ত আৰ্যসকলক ম্লেচ্ছদেশ, ম্লেচ্ছ ভাষা, ম্লেচ্ছ ধৰ্ম আৰু ম্লেচ্ছ জাতিৰ পৰা বাচি থাকিবৰ বাবে পৰামৰ্শ দিছিল। ইয়াত ম্লেচ্ছসকলক অসুৰ বুলি উল্লেখ কৰিছে। গতিকে প্ৰাচীন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ অসুৰ বংশৰ ৰজাসকল এই ম্লেচ্ছ বা অনাৰ্যসকলেই আছিল। মহাভাৰতৰ সভাপৰ্বত উল্লেখ আছে যে কুৰুক্ষেত্ৰৰ যুদ্ধত কৌৰৱৰ হৈ অংশগ্ৰহণ কৰা প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ ৰজা ভগদত্তৰ সৈন্য বাহিনীতো কিৰাত আৰু চীনা সৈন্যৰে গঠিত আছিল। ভগদত্তক ম্লেচ্ছাধিপতি বুলি উল্লেখ কৰিছে। গতিকে প্ৰাচীন অসমলৈ আৰ্য সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱ পৰাৰ আগতে ইয়াত ম্লেচ্ছসকলৰ বিভিন্ন ৰজাৰ দ্বাৰা শাসন চলিছিল। S.K. Chatterji য়ে তেওঁৰ 'Kirata Janakriti' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে "আৰ্য্য সকল পূৰ্ব ভাৰত, উত্তৰবঙ্গ আৰু অসমলৈ অহাৰ আগতে আধুনিক অসম ও লুইতক ম্লেচ্ছ দেশ বা ম্লেচ্ছ বা মেচ জাতিৰ দেশ নামেৰে নামাকৰণ কৰিছিল।"[৫] অৰ্থাৎ আৰ্য্যসকলে প্ৰাচীন কামৰূপলৈ আহি প্ৰথমে লগ পোৱা লোক সকলক ম্লেচ্ছ বুলি উল্লেখ কৰিছিল।

G. A. Grierson তেওঁৰ 'Linguistic Survey of India' গ্ৰন্থত 'মেচ' শব্দটো সংস্কৃত 'ম্লেচ্ছ' শব্দৰ পৰা অহা বুলি উল্লেখ কৰিছে। "মেচ হ'ল ম্লেচ্ছৰ অপভ্ৰংশ। তেওঁলোকে প্ৰাগজ্যোতিষপুৰত চাৰিহাজাৰ বছৰ ৰাজত্ব কৰিছিল। একাদশ শতিকাৰ পৰা তেওঁলোকৰ গুৰুত্ব হ্ৰাস পাবলৈ আৰম্ভ হয়।"[৬]

Endle Sidney তেওঁৰ 'The Kachari' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে, "মেচ সকল নিসন্দেহে বাৰা সকলৰ শাখা (পশ্চিমাঞ্চল) মেচ নামটো প্ৰায় নিশ্চিত ভাৱেই সংস্কৃত শব্দ ম্লেচ্ছৰ এটা অপভ্ৰংশ মাত্ৰ। অৰ্থাৎ ব্ৰাহ্মণ্য দৃষ্টিকোণৰ পৰা এজন ধৰ্ম-কৰ্ম জাত-পাত নমনা লোক।" [৭]

Ralph Lilly Turner তেওঁৰ 'The Comparative Dictionary of Indo Aryan Language' গ্ৰন্থত পোৱা যায় "মেচ্ছ - অনাৰ্য্য - বাংলাত মেচ এটা তিব্বত-বৰ্মীয় জনগোষ্ঠী"। [৮]

B. Liebich এ তেওঁৰ 'Nochmachs Mlechha' ৰচনাত উল্লেখ কৰিছে, "মেচ সকলে সম্ভৱত তেওঁলোকৰ নামটো ম্লেচ্ছ শব্দৰ সৰলীকৰণৰ পৰা পাইছে। এই শব্দটো সাধাৰণতে অনাৰ্যসকলক বুজাবৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়।" [৯]

অসমৰ বুৰঞ্জীবিদ্ H.K. Barpujari তেওঁৰ 'Comprehensive History of Assam' (Vol-I) গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে "ম্লেচ্ছ সম্ভৱত এইক্ষেত্ৰত জন-জাতীয় নাম 'মেচ'ৰ সংস্কৃত ৰূপ।" [১০] ঠিক সেইদৰে N.N. Basu য়ে 'The Social History of Kamarupa' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে "উপেন্দ্ৰ সিনহাৰ বংশতাত্বিক ইতিহাসৰ পৰা আমি জানিব পাৰো যে তিনি-চাৰিহাজাৰ বছৰ ধৰি- 'ম্লেচ্ছ'ক মানুহে মেচলৈ ৰূপান্তৰিত কৰিছে। এই জাতি বা সম্প্ৰদায় প্ৰায় পাঁচ হাজাৰ বছৰ ধৰি কামৰূপত বসবাস কৰি আহিছে।" [১১] আকৌ K.L. Barua ই তেওঁৰ 'àßarly History of Kamrupa' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে "অসমৰ মেচ সকলে এতিয়াও প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ সময়ত আৰ্য সকলে তেওঁলোকৰ পূৰ্বপুৰুষক দিয়া 'ম্লেচ্ছ' নামৰ অপভংশ ৰূপ সংৰক্ষণ কৰি ৰাখিছে।" [১২]

১২০৬ খ্ৰীষ্টাব্দত বখতিয়াৰ খিলিজিয়ে তিব্বত জয় কৰিবলৈ আহোঁতে লগত অহা পৰিব্ৰাজক মিনহাজ উদ্দিন চিৰাগৰ মতে "সেইসময়ত লক্ষণাৱতী আৰু তিৰ্ব্বতৰ মাজৰ অংশত" পাহাৰ আৰু হাবি জংঘলেৰে ভৰি আছিল। এই পৰ্বতীয়া হাবিত সেই সময়ত তিনিটা জনগোষ্ঠীৰ লোকক লগ পাইছিল। তেওঁলোক হ'ল কোঁচ, মেচ আৰু থাৰু বা থিহাৰু।" [১৩]

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা এটা কথাত নিশ্চিত হ'ব পাৰি যে সংস্কৃত ম্লেচ্ছ শব্দৰ পৰা অসমৰ 'মেচ' জনগোষ্ঠীৰ লোক সকলৰ মেচ নামটো আহিছে। তেওঁলোক অসমৰ অতি প্ৰাচীন জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম জনগোষ্ঠী আছিল।

প্ৰাচীন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ, কামৰূপ, মাইবং, খাচপুৰ, কোচবিহাৰ, ত্ৰিপুৰা, বিজনী, মঙলদৈ, গোৱালপাৰা আদি বিভিন্ন ঠাইত বহুতো সৰু-বৰ ৰাজ্যত ম্লেচ্ছসকলে শাসন কৰিছিল। তেজপুৰৰ বাণ ৰজাও এই অসুৰ বা ম্লেচ্ছসকলৰে এজন শাসক আছিল। বৰ্তমান বাংলাদেশৰ কিছু অংশ আৰু উত্তৰ বংগ অতি প্ৰাচীন কালৰ পৰা প্ৰায় ৫০০ বছৰৰ আগলৈকে ম্লেচ্ছসকলৰ দ্বাৰাই শাসিত হৈছিল। অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত এই মেচসকলৰ নামত এতিয়াও বহু ঠাই, অঞ্চল বা গাঁৱৰ নাম শুনিবলৈ পোৱা যায়। বৰ্তমানেও গোৱালপাৰা জিলাত মেচপাৰা জমিদাৰী নামেৰে এখন জমিদাৰী আছে। গোৱালপাৰাৰ তামাৰহাট আৰক্ষী চকীৰ অন্তৰ্গত মৰনৈ চাহ বাগিচাৰ ওচৰত মেচপাৰা বুলি এখন গাঁও আছে। বৰপেটা জিলাৰ ভৱানীপুৰত মেচপাৰা বুলি আন এখন গাঁও পোৱা যায়। ইয়াৰ উপৰিও অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত মেচপাৰা, কছাৰিপাৰা, কছাৰিগাঁও, মেচ গাঁও নামেৰে বহু গাঁৱৰ নাম আমি শুনিবলৈ পাওঁ। ইয়াৰ পৰা আমি এটা কথা নিশ্চিত হ'ব পাৰো যে যোৱা বহু শতিকা ধৰি অসমৰ বিভিন্ন প্ৰান্তত এই মেচসকলে বসবাস কৰি আহিছে। বাণীকান্ত কাকতিয়ে তেওঁৰ গৱেষণা গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে যে কামৰূপ জিলাৰ পশ্চিমফালৰ বড়োসকলে নিজকে মেচ বুলি পৰিচয় দিয়ে আৰু পূবৰখিনিয়ে নিজকে কছাৰী বুলি পৰিচয় দিয়ে। গেইটৰ মতেও প্ৰাচীন অসমত এই মেচসকলে হিমালয়ৰ পাদদেশৰ পৰা ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাৰ বিভিন্ন অংশত বসবাস কৰিছিল। তেওঁলোকক কামৰূপৰ পশ্চিমৰ অংশত মেচ আৰু কামৰূপৰ পূবৰ ফালে কছাৰী নামেৰে ওচৰ-চুবুৰীয়া হিন্দুসকলে নামকৰণ কৰিছিল। Endle-এ তেওঁৰ গ্ৰন্থ 'The Kacharis'-ত উল্লেখ কৰিছে যে এই মেচসকলৰ এটা অংশই হিন্দু ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰি অসমীয়া ভাষা ক'বলৈ লয়। তেওঁলোকে তেওঁলোকৰ মৰ্যাদা বা সন্মান মেচসকলতকৈ বেছি বুলি ভাবিবলৈ ধৰিলে। তেওঁলোকে নিজকে কোচ বুলি পৰিচয় দিয়ে। (পৃষ্ঠা- ৪৮) [১৪]

১২০৬ খৃষ্টাব্দত বংগৰ মুছলমান গৱৰ্ণৰ ইমতিয়াৰ উদ্দিন বিন বখটিয়াৰ খিলিজীয়ে অসমৰ মাজেদি তিব্বত

দখল কৰিবলৈ আহিছিল। সেই সময়ত তেওঁক কামৰূপলৈ বাস্তা দেখুৱাই আনিছিল আলী মেচ্ নামৰ এজন উত্তৰ বংগৰ মেচ শাসকে। খিলিজীৰ লগত অহা মীনহাজ উদ্দিন ছিৰাগে তেওঁৰ কিতাপ 'তবকাত-ই-নাছিৰী'ত এই কথা উল্লেখ কৰিছে।[১৫]

সাধাৰণ অর্থত ম্লেচ্ছ বা মেচ শব্দটো আর্যভাষী হিন্দুসকলে তিব্বত বর্মীয় গোষ্ঠীৰ ভাষা-ভাষী লোকসকলক বুজাবৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। Banikanta Kakati তেওঁৰ পুথি, 'Assamese : Its Formation and Development' N. N. Vasuৰ 'The Social History of Kamrupa' (পৃষ্ঠা- ১২৮), 'Kirata Janakriti' (পৃষ্ঠা- ৯৭), àßndle Sidneyৰ 'The Kachari' ৰ মতে মেচ আৰু কছাৰী একে জনগোষ্ঠী বা সমার্থক বুলি উল্লেখ কৰিছে। সেই মতে কছাৰী শব্দটো মেচৰ বিকল্প হিচাপে ধৰিলে অসমৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহক আমি এনেধৰণেও ক'ব পাৰো। সোণোৱাল-কছাৰী বা সোণোৱাল-মেচ, ঠেঙাল-কছাৰী বা ঠেঙাল-মেচ, লালুং-কছাৰী বা লালুং-মেচ, ডিমাছা-কছাৰী বা ডিমাছা-মেচ ইত্যাদি বুলি উল্লেখ কৰিব পাৰি। বর্তমানে এই বৃহৎ মেচ বা কছাৰী গোষ্ঠীটোক নতুনকৈ বড়ো জনগোষ্ঠী হিচাপে নামকৰণ কৰা হৈছে আৰু স্বীকৃতিও পাইছে। কিন্তু এই বড়ো শব্দটো একেবাৰে আধুনিক আৰু ১৯ শতিকাৰহে সৃষ্টি। W.W Hunterৰ 'A Statistical Survey of Assam'ত উল্লেখ থকা ১৮৭১ চনৰ লোকপিয়লৰ প্রতিবেদনত বড়ো বুলি কোনো জনগোষ্ঠীৰ নাম উল্লেখ নাই।[১৬] আনহাতে ১৯৩৩ চনত অসমত যিকেইটা জনগোষ্ঠীক জনজাতীয় মর্যাদা দিবৰ বাবে ব্রিটিছ চৰকাৰে নথিভুক্ত কৰিছিল তাৰ ভিতৰত আছিল মেচ, কছাৰী, মিচিং আৰু লালুং। ইয়াতো বড়ো বুলি কোনো জনগোষ্ঠীক জনজাতীয় গোষ্ঠী হিচাপে উল্লেখ কৰা নাছিল।[১৭]

ম্লেচ্ছৰ পৰা মেচ আৰু মেচৰ পৰা কোচ আৰু বিভিন্ন কছাৰী গোষ্ঠীৰ সৃষ্টি হৈছে আৰু এই মেচ আৰু কছাৰীৰ পৰাই পিছৰ কালত বড়ো গোষ্ঠী আৰু মেচ ভাষাৰ পৰাই বড়ো ভাষাৰ নামাকৰণ আৰু উদ্ভাৱন হৈছে। এই মেচ ভাষা কোৱা মেচ লোকসকল এতিয়াও উত্তৰ বংগ আৰু নেপালত পোৱা যায়। 'Journal of the Asiatic Society', (No.-92 August, 1839)ত মেচ ভাষাৰ বিভিন্ন শব্দ উদাহৰণ হিচাপে পোৱা যায়।[১৮] অৱশ্যে সেই সময়লৈকে এই মেচসকলৰ ভাষাটো দোৱান পর্যায়তে আছিল আৰু বড়ো ভাষা হিচাপে নামকৰণো হোৱা নাছিল। ভাষাতত্ত্ববিধ বি.এইচ. হডজনে ১৮৪৬ চনত প্রথমবাৰৰ বাবে মেচসকলৰ ভাষাটোক বড়ো ভাষা নামেৰে নামাকৰণ কৰিছিল।[১৯] কিন্তু অসমৰ ক্ষেত্রত উজনি অসমৰ কিছু অসমীয়া ভাষা কোৱা জনজাতীয় লোকেহে নিজকে বর্তমান মেচ-কছাৰী বুলি পৰিচয় দিয়ে। এই মেচ-কছাৰীখিনি প্রাক স্বাধীনতাৰ কালতেই বিভিন্ন সময়ত অর্থনৈতিক কাৰণত নামনি অসমৰ পৰা প্রব্রজন কৰিছিল। বিশেষভাৰে তেওঁলোকে ব্রিটিছে পতা চাহ বাগান বিলাকত কুলি আৰু শ্রমিক হিচাপে কাম কৰিবলৈ গৈছিল। পিছৰ কালত বাহিৰৰ পৰা শ্রমিক আমদানি কৰিবলৈ লোৱাত তেওঁলোকে সেই কামৰ পৰা অব্যাহতি লৈ ওচৰ-পাজৰৰ গাঁওবিলাকত বসতি কৰিবলৈ লয়।

আধুনিক মেচসকলক প্রাচীন কালৰ হিন্দু ধর্ম গ্রন্থত দানৱ, অসুৰ, কিৰাত বা ম্লেচ্ছ হিচাপে উল্লেখ কৰিছে। এটা সময়ত অসম তথা প্রাচীন প্রাগজ্যোতিষপুৰত বা অসমত এই মেচসকলৰ সংখ্যাই আছিল সর্বাধিক। নৃতাত্বিকভাৱেও এই মেচসকল প্রাচীন প্রাগজ্যোতিষপুৰ আৰু কামৰূপৰ মূল ইতিহাস গঢ়োতা। ঐতিহ্য অনুসৰি মেচসকলৰ প্রথম ৰজা আছিল মহিৰংগ দানৱ। তেওঁৰ পিছৰজন আছিল ঘটাসুৰ। তেওঁক নৰক নামৰ অন্য এজন অসুৰে বা ম্লেচ্ছে হত্যা কৰি ক্ষমতা দখল কৰিছিল। এই নৰকক আর্য সংস্কৃতিৰ পিছৰ কালৰ মুখ্য প্রচাৰক শ্রীকৃষ্ণই বধ কৰি তেওঁৰ পুত্র ভগদত্তক প্রাগজ্যোতিষপুৰৰ ৰজা পাতিছিল। এই পৌৰাণিক কাহিনীৰ কিছু হ'লেও ঐতিহাসিক সত্যতা আছে বুলি অনুমান হয়। কাৰণ প্রাচীন প্রাগজ্যোতিষপুৰৰ ৰাজধানী বর্তমানৰ গুৱাহাটীৰ ওচৰে-পাজৰে মহিৰংগ পর্বত, নৰকাসুৰ পাহাৰ, ভগদত্তপুৰ, প্রাগজ্যোতিষপুৰ আদি ঠাইৰ নাম আজিও পোৱা যায়। ইয়াৰ পৰা আমি এটা কথাত নিশ্চিত হ'ব পাৰো যে মহাকাব্যৰ বর্ণনাত এনেকুৱা ঐতিহাসিক তথ্য আছে যাৰ দ্বাৰা প্রমাণিত হয় যে ভগদত্ত অনার্য, তিব্বত-চীনা, কিৰাত জাতিৰ এজন অনার্য ম্লেচ্ছ বা মেচ ৰজা আছিল। ডুবি তাম্রলিপিত ভাস্কৰ বর্মনে নিজকে নৰক, ভগদত্ত আৰু

বজ্রদত্তৰ বংশধৰ বুলি উল্লেখ কৰিছে। বৰগাঁও তাম্ৰলিপি, বৰগঙ্গা তাম্ৰলিপি, নিধানপুৰ তাম্ৰলিপিতো কামৰূপৰ শাসকসকলে নিজকে নৰক, ভগদত্তৰ ভৌম বংশৰ বুলি কৈ নিজে গৰ্ব অনুভৱ কৰিছে।[২০]

ভাস্কৰ বৰ্মনে চীনদেশৰ টাং ৰাজবংশৰ কটকী লি-ই-পিয়াওৰ সৈতে ব্যক্তিগত আলাপত তেওঁৰ পূৰ্বৰ পুৰুষসকল চীনৰ পৰা আহিছিল বুলি উল্লেখ কৰিছে। অৰ্থাৎ তেওঁ নিজকে চীনা মঙ্গোলীয় কিৰাত ম্লেচ্ছৰ বংশধৰ বুলি পৰিচয় দিছিল।[২১]

মেচসকলৰ ৰাজনৈতিক ইতিহাস তৃতীয় শতাব্দীৰ পৰা দ্বাদশ শতাব্দীলৈ স্পষ্টভাৱে প্ৰাচীন কামৰূপত দেখিবলৈ পোৱা যায়। কাৰণ এই সময়ছোৱাতে চীনা পৰিব্ৰাজক হিউয়েনচাঙৰ টোকা, হৰ্ষ চৰিত, নিধানপুৰ তামৰ ফলি আৰু ডুবি তামৰ ফলি আদিত প্ৰাথমিক তথ্য পোৱা যায়। ডুবি তামৰ ফলিত উল্লেখ থকা মতে মহাৰাজ পুষ্যবৰ্মন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ প্ৰথম ৰজা আছিল। নিধানপুৰ তামৰ ফলিৰ লগত থকা ছীল-মোহৰত উল্লেখ থকা মতে প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ মহান ৰজা পুষ্যবৰ্মন বিখ্যাত নৰক-ভগদত্ত আৰু ব্ৰজদত্তৰ বংশধৰ। তেওঁৰ পুত্ৰ ৰজা শ্ৰী সমুদ্ৰ বৰ্মা। সমুদ্ৰ বৰ্মা আৰু দত্তদেৱীৰ সন্তান ৰজা বলবৰ্মা। বলবৰ্মাৰ ৰাণী ৰত্নাৱতীৰ সন্তান ৰজা কল্যাণ বৰ্মা। কল্যাণ বৰ্মা আৰু গন্ধৰ্বৱতীৰ পুত্ৰ শ্ৰী গণপতি বৰ্মা। গণপতি বৰ্মা আৰু যজ্ঞৱতীৰ সন্তান মহেন্দ্ৰ বৰ্মা। এই মহেন্দ্ৰ বৰ্মাই দুটা ঘোঁৰা বলি দি যজ্ঞ কৰিছিল। তেওঁ আৰু শ্ৰীসুব্ৰতাৰ পুত্ৰ শ্ৰী নাৰায়ণ বৰ্মা। নাৰায়ণ বৰ্মা আৰু দেবৱতীৰ পুত্ৰ ভূতি বৰ্মা। ভূতি বৰ্মা আৰু বিদ্যাৱতীৰ পুত্ৰ শ্ৰী চন্দ্ৰমুখ বৰ্মা। চন্দ্ৰমুখ বৰ্মা আৰু শ্ৰীভোগৱতীৰ পুত্ৰ শ্ৰীস্থিৰ বৰ্মা। এই স্থিৰ বৰ্মাই দুটা ঘোঁৰা বলিদান দিছিল। তেওঁৰ পৰা শ্ৰীনাৰায়ণ শ্ৰীসুস্থিৰ বৰ্মাৰ জন্ম হয়। তেওঁ আৰু তেওঁৰ পত্নী শ্ৰীধ্ৰুৱলশ্ৰীৰ পৰা শ্ৰী ভাস্কৰ বৰ্মাই জন্মগ্ৰহণ কৰে। 'The Seal attched to the Dubi Copper plate of Bhaskar Varman.'[২২] (পৃষ্ঠা- ৩৩) কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মনৰ ৰাজত্ব কালতেই চীনা পৰিব্ৰাজক হিউয়েনচাঙে ভাস্কৰ বৰ্মনৰ নিমন্ত্ৰণ ক্ৰমে কামৰূপ ভ্ৰমণলৈ আহিছিল। তেওঁৰ লিখনীৰ পৰা সেই সময়ত কামৰূপত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ নৃতাত্বিক তথ্য পোৱা যায়। সেই বৰ্ণনাসমূহৰ পৰা পোৱা তথ্যৰ লগত বৰ্তমান মেচসকলৰ গোষ্ঠীগত মিল পোৱা যায়। হিউয়েনচাঙৰ বৰ্ণনাত কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মাক ভুলতে ব্ৰাহ্মণ বুলি উল্লেখ কৰিছে। কাৰণ হিউয়েনচাঙে কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মনক নিজৰ ঘৰৰ পূজা-পাতলত পূজাৰী ৰূপত দেখা পাইছিল। কিন্তু বৰ্তমানেও আমি মেচসকলৰ ক্ষেত্ৰত দেখিবলৈ পাও যে তেওঁলোকে নিজৰ ঘৰৰ ধৰ্মীয় কাম-কাজ বা পূজা-পাতল আদি কৰোঁতে (যেনে- মৃতকক পূজা দিওঁতে বা গছৰ তলৰ বৰমাইনীৰ পূজা কৰোঁতে।) ঘৰৰ প্ৰধানজনেই পূজাৰীৰ কাম কৰে। বৰ্মণবংশী ম্লেচ্ছ ৰজাসকলৰ পিছত শালস্তম্ভ বংশৰ ৰজাসকলে কামৰূপত শাসন কৰে। এই শালস্তম্ভ বংশৰ ৰজাসকলৰ অন্যতম ৰত্নপালে তেওঁৰ দ্বাৰা খোদাই কৰোৱা তামৰ ফলিত স্পষ্টভাৱে উল্লেখ কৰিছে 'Salstambha, The lord of the Mlechchhas, took according to the rule obtaining among the kings, the kingdom of the rulers of Naraka's line who had exercised sovereign sway from generation to generation. In his line there flourished Vigraha-stambha and other famous kings numbering twenty. The twenty first king of this line, the illustrious Tyagasinha died without issue. His subjects thought that they were in need of a king of Narak's line and made Barhmapala, who are strong enough to bear the burden of royalty, their king, he having kinship with that line." (Copper plate grant of Ratnapaladev)[২৩]

শালস্তম্ভসকলে নিজকে স্পষ্টভাৱে নৰক-ভগদত্তৰ বংশধৰ আৰু ম্লেচ্ছৰ অধিপতি বুলি গৌৰৱেৰে পৰিচয় দিছিল। এই শালস্তম্ভসকলক বহু পণ্ডিতে শালস্তম্ভ মানে শালকাঠৰ স্তম্ভৰ দৰে মজবুত বুলি ভুল ব্যাখ্যা দিয়া বুলি অনুমান হয়। প্ৰণৱজ্যোতি ডেকাৰ শেহতীয়া গ্ৰন্থ 'নীলাচল কামাখ্যাৰ ইতিহাস আৰু তন্ত্ৰ' ত এই শালস্তম্ভ আচলতে শালিস্তম্ভ নামৰ এটা লুপ্তপ্ৰায় বৌদ্ধধৰ্মীয় সূত্ৰ বুলি উল্লেখ কৰিছে।[২৪] এই কথাৰ আঁতধৰি মই নিজেও কিছু অধ্যয়ন কৰি পাওঁ যে শালিস্তম্ভ মানে সংস্কৃত ভাষাত শালিধানৰ খেতিৰ সূত্ৰ আৰু তিব্বতী ভাষাত শালি খেতিৰ সূত্ৰ। ইয়াৰ পৰা আমি এটা কথা নিশ্চিত হ'ব পাৰো যে শালস্তম্ভসকল সম্ভৱত বৌদ্ধধৰ্মাবলম্বী লোক আছিল আৰু শালিধানৰ খেতি তেওঁলোকৰ মুখ্য জীৱিকা আছিল। আমি মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ কীৰ্তনতো ম্লেচ্ছ আৰু বৌদ্ধধৰ্মীসকলক

একলেগে সমগোত্রত ৰখা দেখিবলৈ পাওঁ।

এনে আলোচনাৰ পৰা বুজা যায় আৰ্য সংস্কৃতিয়ে প্রাচীন অসমক প্রভাৱিত কৰাৰ আগতে ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৱৰ এই অঞ্চলটো অনার্য ম্লেচ্ছসকলৰ বসতিস্থল আছিল। এই মেচসকলৰ পূর্বপুৰুষসকলে বহু শতিকা ধৰি প্রাচীন অসমৰ সমাজ-সংস্কৃতিক প্রভাৱিত কৰি ৰাখিছিল। তেওঁলোকে নিশ্চিতভাৱে এক উন্নত সংস্কৃতিও বহন কৰিছিল। ১২০০ শতাব্দীৰ পিছত প্রায় ৪০০ বছৰ অন্য ক্ষত্রিয় আৰু কায়স্থসকলে শাসন কৰাৰ পিছত পুনৰ মেচসকলে অসমত নিজৰ শাসন প্রতিষ্ঠা কৰিছিল। সেইলোকসকল— হাৰিয়া মণ্ডল মেচৰ পুত্র শিৱ সিংহই প্রতিষ্ঠা কৰা কোচসকলৰ শাসন। শিৱ সিংহৰ ককাক ডম্বাৰু মেচ, পিতা হাৰিয়া মণ্ডল মেচ ইত্যাদি। কোচ ৰাজবংশাৱলী গ্রন্থতো এই লোকসকলৰ পূর্বপুৰুষসকল মেচেই আছিল।[২৫]

১.২ সামৰণি ঃ

প্রাচীন সংস্কৃত গ্রন্থ, পালি গ্রন্থ, পুৰাণ, উপনিষদ, তাম্রলিপি, শিলালিপি আদিত উল্লেখ থকা 'ম্লেচ্ছ' সকলৰে অৱশিষ্ট হ'ল বর্তমান অসমৰ মেচ জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল। এই মেচসকল প্রাগৈতিহাসিক কালৰ পৰা এই অঞ্চলটোত বসবাস কৰি আহিছে। হাজাৰ বছৰ ধৰি এই প্রাচীন প্রাগজ্যোতিষপুৰ কামৰূপ মেচ সকলে শাসন কৰিছিল আৰু মেচ জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে অসমৰ সভ্যতা সংস্কৃতিৰ গঠনত বিশেষ অৱদান দি থৈ গৈছে।[২৬] এটা সময়ত প্রাচীন আৰু মধ্যযুগৰ অসমত এই মেচসকল প্রতিপত্তিশালী আছিল। কিন্তু বর্তমান এই মেচ জনগোষ্ঠীটো একেবাৰে হেৰাই যোৱাৰ উপক্রম হৈছে। ২০০১ চনৰ লোকপিয়লত অসমত মেচ বুলি কোনো জনগোষ্ঠীৰ নাম উল্লেখ নাই। অতি প্রাচীন কালৰ পৰাই অসমত মেচ জনগোষ্ঠীৰ উত্থান আৰু পতনৰ লগত অসমীয়া জাতি গঠন প্রক্রিয়াটো ওতঃপ্রোতভাৱে জড়িত হৈ আছে। অসমীয়া জাতি গঠন প্রক্রিয়াটো ভালদৰে বুজি পাবলৈ হ'লে প্রাচীন মেচসকলৰ উত্থান আৰু পতনৰ বিষয়ে জ্ঞাত হোৱাটো আৱশ্যক। এই মেচ সকলৰ বিষয়ে অসম তথা ভাৰতত আজিলৈকে বিশেষ গৱেষণামূলক অধ্যয়ন হোৱা নাই। আমাৰ এই ধৰণৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতি গঠনৰ প্রক্রিয়া সম্বন্ধে নতুন দিশ উন্মোচন কৰা আৰু জনাৰ অৱকাশ আছে। পৰৱর্তী গৱেষক সকলে এই সম্পর্কে বিস্তৃতভাৱে চিন্তা চর্চা আৰু অধ্যয়নত আগবাঢ়িলে বিদ্যায়তনিক দিশত নতুন তথ্য উদ্‌ঘাটন হ'ব আৰু সুফল পোৱা যাব। ❑

পাদটীকা ঃ

১. Hutton, John Henry : Caste in India, The Cambridge University Press, 1946
২. Barua B.K. : A Cultural History of Assam, 1995 p. 5
৩. Kakati Banikanta : Assamese : Its Formation and Development, LBS Publication, 1995. p- 42
৪. Muller F- Max : Satapatha Brahmana, Vol-XII, III, 2, 1, 24. p.-32
৫. Chatterji Suniti Kumar : 'Kirata Jana Kriti', The Asiatic Society. 1922, p-97
৬. Grierson G. A. : Languistic Survey of India, Vol-3, Pt. II, Calcutta : Office of the Superintendent of Government Printing, India, 1903 Page.1
৭. àßndle Sidney : The Kacharis, Bina Library. p-81
৮. Turner Ralph Lilly : The Comparative Dictionary of Indo Aryan Language, London oxford University Press, 1966, 10389
৯. Liebich B Nochmals : 'Mleccha' Cambridge University Press, Page. 623-626
১০. Barpujari H.K. : Comprehensive History of Assam, Vol- I, Assam Publication Board, Page. 122
১১. Vasu N. N. : Social History of Kamrupa, Northern Book Centre, New Delhi, Vol-1, Page. 128
১২. Barua K.L. : àßarly History of Assam, Rai K. L. Barua Bahadur, Shillong 1933, Page- 37
১৩. Sarkar, J.N. : History of Bengal, Muslim Period 1200-1757 A.D B.R. Publlshing Corporation, Delhi 1943, pp. 9-10
১৪. àß Gait : A History of Assam, Thacker, Spink & Company, 1906. p.-48
১৫. Minhaji-I-Saraj : Tabakat-I-Nasiri, Gilbert & Rivington 1873, London, pp.560-561
১৬. Hunter W.W : A Statistical Account of Assam, Vol-II, pp. 32, 117
১৭. Dewri, Indibar : Janagothiya Samasya Ateet Bartaman Bhabishyat. Journal àßmporiam Nalbari. 2001 p. 46
১৮. Journal of the Asiatic Society, No.-92 August, 1839

১৯ . Hodgson, B.H. : Miscellaneous essays Relating to Indian Subjects. Vol-I, 1880
২০ . Sarma, Mukanda Madhav : Inscriptions of Ancient Assam, Gauhati University Publication. pp. 20-21
২১ . Barpujari, H.K., Comprehensive History of Assam Vol-I, Assam Publication Board, p-202
২২ . Sarma, Mukanda Madhav : The Seal attched to the Dubi Copper plate of Bhaskar Varman. p. 33
২৩ . Sarma, Mukanda Madhav: Copper plate grant of Ratnapaladev pp.160-166
২৪ . শইকীয়া, ৰক্তিম ৰঞ্জন (অনুঃ) নীলাচল কামাখ্যাৰ ইতিহাস আৰু তন্ত্ৰ, বান্ধব, পাণবজাৰ, পৃষ্ঠা-৯
২৫ . শাস্ত্রী বিশ্বনাৰায়ণ আৰু চলিহা ভৱপ্রসাদ (সম্পাঃ) ঃ সূর্যখড়ি দৈৱজ্ঞৰ দৰঙ্গৰ ৰাজ বংশাৱলী, লয়ার্ছ বুক ষ্টল, গুৱাহাটী, ভূমিকা, ২০০২
২৬ . Chatterji, Suniti Kumar : 'Kirata Jana Kriti', The Asiatic Society. 1922, p-97

সহায়ক প্রন্থ ঃ

Barua B.K. : A Cultural History of Assam, 1995
Barpujari H.K. : Comprehensive History of Assam, Vol- I, Assam Publication Board,
Barua K.L. : àßarly History of Assam, Rai K. L. Barua Bahadur, Shillong 1933,
Barpujari, H.K., Comprehensive History of Assam Vol-I, Assam Publication Board,
Chatterji Suniti Kumar : 'Kirata Jana Kriti', The Asiatic Society. 1922,
Chatterji, Suniti Kumar : 'Kirata Jana Kriti', The Asiatic Society. 1922,
Dewri, Indibar : Janagothiya Samasya Ateet Bartaman Bhabishyat. Journal àßmporiam Nalbari. 2001
àßndle Sidney : The Kacharis, Bina Library.
àß Gait : A History of Assam, Thacker, Spink & Company, 1906.
Grierson G. A. : Languistic Survey of India, Vol-3, Pt. II, Calcutta : Office of the Superintendent of Gover.nment Printing, India, 1903
Hutton, John Henry : Caste in India, The Cambridge University Press, 1946
Hunter W.W : A Statistical Account of Assam, Vol-II,
Hodgson, B.H. : Miscellaneous essays Relating to Indian Subjects. Vol-I, 1880
Journal of the Asiatic Society, No.-92 August, 1839
Kakati Banikanta : Assamese : Its Formation and Development, LBS Publication, 1995.
Liebich B Nochmals : 'Mleccha' Cambridge University Press,
Muller F- Max : Satapatha Brahmana, Vol-XII, III, 2, 1, 24.
Minhaji-I-Saraj : Tabakat-I-Nasiri, Gilbert & Rivington 1873, London,
Sarkar, J.N. : History of Bengal, Muslim Period 1200-1757 A.D B.R. Publlshing Corporation, Delhi 1943,
Sarma, Mukanda Madhav : Inscriptions of Ancient Assam, Gauhati University Publication.
Sarma, Mukanda Madhav : The Seal attched to the Dubi Copper plate of Bhaskar Varman.
Sarma, Mukanda Madhav: Copper plate grant of Ratnapaladev
শইকীয়া, ৰক্তিম ৰঞ্জন (অনুঃ) নীলাচল কামাখ্যাৰ ইতিহাস আৰু তন্ত্ৰ, বান্ধব, পাণবজাৰ
শাস্ত্রী বিশ্বনাৰায়ণ আৰু চলিহা ভৱপ্রসাদ (সম্পাঃ) ঃ সূর্যখড়ি দৈৱজ্ঞৰ দৰঙ্গৰ ৰাজ বংশাৱলী, লয়ার্ছ বুক ষ্টল, গুৱাহাটী, ভূমিকা, ২০০২
Turner Ralph Lilly : The Comp.arative Dictionary of Indo Aryan Language, London oxford University Press, 1966, 10389
Vasu N. N. : Social History of Kamrupa, Northern Book Centre, New Delhi, Vol-1,

প্রবন্ধ

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

অসমীয়া আৰু ইংৰাজী অভিধানৰ শব্দসম্ভাৰ ঃ গঠন, উৎস আৰু পৰিৱৰ্তনৰ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

বনশ্রী হাজৰিকা

গৱেষক
আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা আৰু
সাহিত্য অধ্যয়ন বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যায়, গুৱাহাটী-১৪
৯৯৫৭৮৪৯১৫২
hbanasri@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

অসমীয়া ভাষাৰ প্রথম প্রকাশিত অভিধানখন হৈছে আমেৰিকান মিছনেৰী মাইলচ্ ব্রনচ্নৰ দ্বাৰা সংকলিত 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান'। অভিধানখন ১৮৬৭ চনত শিৱসাগৰৰ বেপ্তিষ্ট মিছন প্রেছৰ পৰা ছপা হৈ ওলাইছিল। ইয়াত সন্নিৱিষ্ট প্রবিষ্টিৰ সংখ্যা প্রায় ১৪,০০০ টা। এই সন্নিৱিষ্ট শব্দাৱলীৰ উৎস ভিন ভিন আছিল। গঠনৰ ক্ষেত্রতো দেখা গৈছিল যে এই শব্দাৱলী তৎসম, তদ্ভৱ, অর্ধ-তৎসম, দেশী-বিদেশী শব্দ, উপভাষিক শব্দ, বৈজ্ঞানিক পৰিভাষা আদিৰ সমাহাৰত সৃষ্টি হৈছিল। অভিধানখনৰ শব্দাৱলীৰ দ্বাৰা সেই সময়ৰ সমাজ ব্যৱস্থাত প্রচলিত শব্দৰাজিৰ পৰিচয় পোৱা যায়। আকৌ সেই শব্দাৱলীক বর্তমান সময়ৰ লগত তুলনা কৰিলে কিছু কিছু পৰিৱর্তন পৰিলক্ষিত হয়।

এই অভিধানখনে অসমীয়া ভাষাৰ অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ ক্ষেত্রতো উল্লেখনীয় ভূমিকা গ্রহণ কৰিছিল।

প্রস্তাৱনা ঃ

ভাষা একোটাৰ শব্দসম্ভাৰেই ভাষাটোৰ প্রধান চালিকা শক্তি। এই শব্দসম্ভাৰ আৰু শব্দসম্ভাৰৰ পৰিচয় অভিধান এখনত লিখিত ৰূপত সঞ্চিত হৈ থাকে। প্রকৃততে শব্দ সম্পর্কীয় প্রায় সকলো তথ্যই অভিধান এখনে বহন কৰে অর্থাৎ শব্দসমূহৰ শিল্পসন্মত ৰূপ, আখৰ-জোঁটনি বা বানান, বুৎপত্তি, ব্যাকৰণৰ তথ্য, অর্থ ইত্যাদি তথ্যৰ যোগান ধৰে একোখন অভিধান।

অসমীয়া ভাষাৰ অভিধান চর্চাৰ ইতিহাসলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে অসমীয়া ভাষাৰ অভিধান চর্চাৰ ইতিহাস বেছি প্রাচীন নহয়। অসমীয়া ভাষাৰ অভিধান প্রণয়নৰ শুভাৰম্ভ হয় ঊনবিংশ শতিকাৰ মাজভাগত। বিট্রিছ শাসনাধীন অসমলৈ খ্রীষ্টধর্ম প্রচাৰৰ বাবে অহা আমেৰিকান মিছনেৰী মাইলচ্ ব্রনচ্নৰ 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান' খনেই প্রথম প্রকাশিত অভিধান। অভিধানখন ১৮৬৭ চনত শিৱসাগৰৰ বেপ্তিষ্ট মিছন প্রেছৰ পৰা ছপা হৈ ওলাইছিল। অসমীয়া ভাষাৰ প্রাণ প্রতিষ্ঠাৰ ক্ষেত্রত এই অভিধানখন এক উল্লেখনীয় সংযোজন। কলিকতাৰ

প্রশাসনযন্ত্রই অসমৰ পঢ়াশালি, আদালতৰ পৰা অসমীয়া ভাষা বিতাড়িত কৰিছিল। আমেৰিকাৰ বেপ্তিষ্ট মিছনেৰীসকলে অসমত বাংলাৰ সলনি অসমীয়া ভাষা পুনঃ প্ৰচলনৰ বাবে বৃটিছ প্ৰশাসনৰ সৈতে যি ভাষা ৰণ আৰম্ভ কৰিছিল, বাৰ বছৰৰ কঠোৰ পৰিশ্ৰমৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা ব্ৰহ্মনৰ চৈধ্য হাজাৰ শব্দ সম্বলিত উক্ত অভিধানখনে সেই ৰণখনৰ বাবে এক অভেদ্য বেহু স্বৰূপে থিয় দিছিল। (নেওগ, ৯০)

মাইলচ্ ব্ৰনচ্নে 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান'খন অসমীয়া ভাষীয়ে ইংৰাজী ভাষা আৰু ইংৰাজী ভাষীয়ে অসমীয়া ভাষা শিকিবলৈ সহায়ক হোৱাকৈ প্ৰণয়ন কৰিছিল। এই সন্দৰ্ভত অভিধানখনৰ পাতনিত তেখেতে কৈছিল - "সকলো পুথিৰ মাজত অভিধান অতি প্ৰয়োজনীয়। অনেক ইংৰাজি লোকে অচমিয়া ভাষা শিকিবলৈ ইচ্ছা কৰে, আৰু অনেক অচমিয়া লোকেও ইংৰাজি ভাষা সিকিবলৈ শ্ৰম কৰি আচে। সকলোৰে উপকাৰৰ নিমিত অচমিয়া ভাষাৰে এই প্ৰথম অভিধান সমাপ্ত কৰিলোঁ।" এই অভিধানখনত প্ৰবিষ্টিৰ সংখ্যা প্ৰায় ১৪,০০০ টা। এই শব্দবোৰ উজনি অসমৰ কথিত ভাষা, নাথান ব্ৰাউনে দিয়া শব্দৰ তালিকা আৰু হোৱাইটিঙৰ 'দ' আখৰলৈকে ছপোৱা এখন শব্দাৱলীৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰিছিল বুলি ব্ৰনচ্নে তেওঁৰ 'Preface' শীৰ্ষক পাতনিত উল্লেখ কৰিছিল। লগতে আখৰ-জোঁটনিৰ ক্ষেত্ৰত জাদু�ৰাম ডেকা বৰুৱাৰ আখৰ-জোঁটনিৰ সহায় লোৱাৰ কথা উল্লেখ কৰিছিল। এই অভিধানখনত শব্দসমূহৰ অৰ্থ সংজ্ঞা আৰু প্ৰতিশব্দৰ জৰিয়তে অসমীয়া আৰু ইংৰাজী দুয়োটা ভাষাতে দিয়া হৈছে। অভিধানখন অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰথম প্ৰকাশিত অভিধান হোৱাৰ লগতে প্ৰথম দ্বিভাষিক অভিধানো। অৰ্থৰ লগতে অভিধান খনত ইংৰাজী ব্যাকৰণৰ সম্ভেদ দিয়া হৈছে, 'পৰিশিষ্ট' ত থাকি যোৱা শব্দৰ তালিকা তথা ছপা ভুল আৰু সংশোধনৰো তালিকা সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। এনেদৰে ন-শিকাৰুৰ বাবে প্ৰণয়ন কৰা 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান' খনে অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰথম প্ৰকাশিত অভিধান হিচাপে অভিধানৰ প্ৰাৰম্ভিক পৰ্যায়ৰ সূচনা কৰে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

অভিধানখনৰ শব্দভাণ্ডাৰৰ অধ্যয়নৰ যোগেৰে ঊনবিংশ শতিকাৰ সমাজ জীৱনৰ পৰিচয়সূচক শব্দৰাজি নিৰ্ণয় কৰাৰ লগতে এই শব্দৰাজিৰ উৎস বিচাৰেই অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য। লগতে শব্দকোষখনত সন্নিৱিষ্ট শব্দৰাজি বৰ্তমান অসমীয়া ভাষাটোত কিদৰে ৰক্ষিত হৈছে আৰু বৰ্তমানৰ ভাষিক ৰূপটোৰ পৰা পৃথক হৈছে নেকি এই বিষয়ৰ পৰ্যবেক্ষণো আলোচনাটোৰ উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু উৎস ঃ

বিষয়বস্তুৰ অধ্যয়নৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক আৰু তথ্যৰ উপস্থাপনৰ বাবে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। অধ্যয়নৰ উৎসৰ বাবে মাইলচ্ ব্ৰনচ্নৰ 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান'খনৰ সহায় লোৱা হৈছে।

'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান'ৰ শব্দসম্ভাৰ ঃ

মাইলচ্ ব্ৰনচ্নৰ 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান'খন অসমীয়া ভাষাত প্ৰথম প্ৰকাশিত অভিধান। তেওঁ অসমীয়া আৰু ইংৰাজী দুই ভাষা-ভাষী লোকৰ প্ৰয়োজন পূৰাবৰ অৰ্থে অভিধানখন প্ৰণয়ন কৰি উলিয়াইছিল। অভিধানখনত সন্নিৱিষ্ট শব্দাৱলীৰ উৎসৰ সম্পৰ্কত Preface শীৰ্ষক পাতনিত উল্লেখ কৰি গৈছে। তেওঁ কৈছে, তেওঁ লিপিবদ্ধ কৰা বহুতবোৰ শব্দ জনসাধাৰণৰ মুখৰপৰা ওলোৱা ধৰণে লিখি উলিওৱা হৈছে। (Many of these words have been written as they dropped from the lips of the people), অনুমান কৰা হয় যে, এই জনসাধাৰণ (People) আছিল তেওঁৰ শব্দাৱলীৰ এটি উৎস। তেওঁ কৈছে, "I have thus endeavoured to give the spoken language." নগাঁও অঞ্চলত নিশ্চয় তেওঁৰ সংগ্ৰহ কাৰ্য হৈছিল। ব্ৰনচ্নৰ দ্বিতীয় মূল হ'ল পুৰণি পুথি (বোধ হয় হাতে লেখা পুথিহে)। সেই পুথিসমূহত যিবোৰ সচৰাচৰ মানুহৰ মাজত চলা অ-কঠিন সংস্কৃত শব্দ পোৱা গৈছিল আৰু যিবোৰ তেনেধৰণৰ শব্দ বেপ্তিষ্ট সকলৰ পঢ়াশলীয়া কিতাপ আৰু ধৰ্মপুস্তকৰ অনুবাদবোৰতো ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল, সেইবোৰো অভিধানখনত গ্ৰহণ কৰা হৈছে। কিন্তু এনে শব্দবোৰৰ ধ্বনিতাত্বিক (Phonetic) আৰু অৰ্থগত (Semantic) পৰিৱৰ্তনৰ ফালে তেওঁ বিশেষ চকু ৰাখিছিল। (But it should be borne in mind that they are often used in Assamese, with a modified meaning and a different prnoun) শব্দবোৰ সন্নিৱিষ্ট কৰোঁতে বহুতবাৰ সিবোৰ পৰীক্ষা কৰি চোৱা গৈছিল আৰু সন্দেহৰ স্থলত বৃদ্ধ আৰু অভিজ্ঞ লোকেৰে পৰামৰ্শও কৰা হৈছিল। ইংৰাজী

আৰু অসমীয়াত ব্যাখ্যা দিওঁতে তাক সৰল আৰু ব্যাপকাৰ্থ কৰিবৰ যত্ন কৰা হৈছিল। ব্ৰনচ্‌নে শব্দবোৰৰ বুৎপত্তি নিৰ্দ্দেশ কৰা নাই বা প্ৰয়োগৰ উদ্ধৃতিও দিয়া নাই। (নেওগ, ০.২৭)

তেওঁ নাথান ব্ৰাউনৰ পৰা পোৱা এখন শব্দৰ তালিকা আৰু হোৱাইটিঙৰ দ আখৰ পৰ্য্যন্ত ছপা কৰা এখন শব্দৰ তালিকাৰ কথাও উল্লেখ কৰিছিল। "I am grately indeabted to the Rev. Dr. Brown, for a valuable list of words, and definitions partly given, all in the vernacular, The Rev. Mr. Whiting also printed a list of words as for as the letter দ, without definitions" - (Bronson, iv)

ইয়াৰ পূৰ্ব্বতে (১৮৩৯) জাদুৰাম ডেকাবৰুৱাই এক বিস্তৃত বঙলা-অসমীয়া শব্দকোষ তৈয়াৰ কৰি এফ্ জেন্‌কিন্‌ছ চাহাবক দিছিল। সেইখন সম্ভৱতঃ ব্ৰনচ্‌নৰ হাতত পৰিছিলহি কাৰণে তেওঁ জাদুৰামৰ উচ্চাৰণানুগ বৰ্ণবিন্যাস তেওঁৰ অভিধানৰ বাবে গ্ৰহণ কৰিছে বুলিছে। এই তিনিখন শব্দকোষো ব্ৰনচ্‌নৰ শব্দ সংগ্ৰহৰ উৎসৰ ভিতৰত ধৰিব লাগিব। (নেওগ, ০.২৭)

ব্ৰনচ্‌নে অভিধানখনত শিতান শব্দৰ ব্যাখ্যা আগবঢ়াওঁতে সৰল ৰূপত অসমীয়া আৰু ইংৰাজী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছিল।

শব্দাৱলীৰ গঠন ঃ

অভিধানখনৰ শব্দাৱলীৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিলে দেখা যায় যে, অভিধানখনত নিভাঁজ অসমীয়া শব্দবোৰেহে প্ৰধানকৈ ঠাই পাইছে। তৎসম শব্দৰ সংখ্যা কম। তৎসমৰ তুলনাত তদ্ভৱ শব্দ বেছি। লগতে উচ্চাৰণ ভিত্তিক আখৰ জোঁটনি হোৱাৰ বাবে তৎসম শব্দবোৰে অদ্ধতৎসম ৰূপ লৈছে। এইবোৰৰ উপৰিও অভিধানখনত পুৰণি পুথিত ব্যৱহৃত অসমীয়া শব্দ, আঞ্চলিক উপভাষাৰ শব্দ (কামৰূপী), দেশী শব্দ (আহোম), বিদেশী শব্দৰ (হিন্দী, আৰবী, ফাৰ্চী, ইংৰাজী) প্ৰবিষ্টি অন্তৰ্ভুক্ত হৈছে। দুই এটা অশ্ৰেণীভুক্ত (ধ্বন্যাত্মক, প্ৰতিধ্বন্যাত্মক, দ্বিৰুক্তিবাচক) শব্দৰো প্ৰবিষ্টি অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে।

অভিধানখনৰ প্ৰবিষ্টিয়ে বহন কৰা অৰ্থসমূহ অসমীয়াৰ লগতে ইংৰাজী ভাষাত দিয়া হৈছে আৰু এইবোৰৰ মাজত কেইবাটাও শব্দৰ বৈজ্ঞানিক পৰিভাষা পোৱা গৈছে।

এই শব্দসমূহৰ কিছুমান উল্লেখ কৰি দেখুওঁৱা হ'ল -

তৎসম শব্দ ঃ

অগ্নি - S. জুই, অগনি, হুতাসন, বহ্নি, fire, any violent passion or emotion, as kam ogni, prem ogni, krudh ogni (ব্ৰনচ্‌ন, ৫)

অত্ৰ - ad. ইয়াত, এই ঠাইত, here, in this place. (ব্ৰনচ্‌ন, ৯)

অদ্য - ad. আজি, আজিৰ দিন, to day (ব্ৰনচ্‌ন, ১০)

আঙ্গুলি/আঙ্গুল - S. হাত-ভৰিৰ সাখা, আঙ্গুলিৰ পথালি জোখ, a finger's width in measure (ব্ৰনচ্‌ন, ৩৫)

গণ্ডুস - S. আচমনত হাতৰ তলুআত ধৰা পানি, চলু, a handful of water held in the palm of the hand to wash the mouth. (ব্ৰনচ্‌ন, ১৫২)

ঘিত - S. ঘিও, butter (ব্ৰনচ্‌ন, ১৮২)

সত্য - a. স্বৰূপ, সঁচা, true, real, certain (ব্ৰনচ্‌ন, ৫১২)

পুস্তক - S. পুথি, কিতাপ, গ্ৰন্থ, সাস্ত্ৰ, a book (ব্ৰনচ্‌ন, ৩৫৫)

অৰ্ধ-তৎসম শব্দ ঃ

অসিধ - a. সিধি নোহোআ, অসম্পূৰ্ণ, প্ৰমাণিক, unaccomplished, uncompleted, unsubstantiated (ব্ৰনচ্‌ন, ২৮)

কৰম - S. কাড়া স্ৰাদ্ধ, সৰাধ, a work, an action, funeral obsequies or offering to the manes of the dead (ব্ৰনচ্‌ন, ৯৮)

ধৰমত - ad. স্বৰূপত, জথাৰ্থত, in fact, truly (ব্ৰনচ্‌ন, ৩০৫)

ধিকাৰ - S. নিন্দা, গালি সপনি, বিকৰ্থনা, reproach, abuse (ব্ৰনচ্‌ন, ৩০৬)

ধুৰুৱ - a. থিৰ, নিচই, উত্তৰ কেন্দ্ৰত থকা এটা তৰা, fixed, permanent, stable, certain, sure, with তৰা S. the polar star, the north pole (ব্ৰনচ্‌ন, ৩০৯)

বিচখ্যন-a. উতম, সুন্দৰ, good, beautiful (ব্ৰনচ্‌ন, ৮০২)

পৰিখা - S. প্ৰমাণ বুজা, বিচাৰ, a trial, a temptation, an ordeal assaying, with কৰি, to tempt, to prove, to essay (ব্ৰনচ্‌ন, ৩৩৮)

গিয়াতি - S. একে লগে খোআ বোআ, those who eat and drink together (ব্ৰনচ্‌ন, ১৬১)

তদ্ভৱ শব্দ ঃ

আখৰ - s. অখ্যৰ, বর্ন, a letter of the alphabet, type (ব্রনচ্ন, ৩৩)

আন্ধাৰ - s. এন্ধাৰ নিসা, সূজ্যৰ ৰস্মি নপৰা, অন্ধকাৰ, (ব্রনচ্ন, ৪৩)

কান - s. কর্ণ, কান্ধ, দাঁতি, চৰু কলহৰ ওপৰৰ মোটোকোআ ভাগ (ব্রনচ্ন, ১০৬)

ঘৰ - s. গ্রিহ, থকা ঠাই, পৰিয়াল (ব্রনচ্ন, ১৭৪)

বাৰী - s. ঢাপ বা জেওৰা দিয়া সস্যাদিৰ ঠাই, জল, সৰু মাৰি, a compound, a garden, water, a staff, a strick (ব্রনচ্ন, ৩৯৯)

ধেনু - s. ধনু, মাইকি গৰু, a bow, a cow (ব্রনচ্ন, ৩০৮)

নয়ন - s. চকু, নেত্র, আখি, লোচন, the eye (ব্রনচ্ন, ৩১২)

প্রাচীন অসমীয়া শব্দ ঃ

এহি - a. এই, this, this one (ব্রনচ্ন, ৮১)

এত - ad. ইমান, অতনা, so much, so many (ব্রনচ্ন, ৭৮)

জানিয়োক - v. poetical form of জানোক, let him know (ব্রনচ্ন, ২২৬)

তাসম্বাৰ -pron. সিবিলাকৰ, তেওঁবিলাকৰ, their, (poetic) (ব্রনচ্ন, ২৭১)

ত্রিপথগা -s. গঙ্গা, the Ganges, as supposed to flow through heaven, earth and the infernal regions. (ব্রনচ্ন, ২৭৭) (এইশব্দটো বাল্মীকি ৰামায়ণৰ পৰা আহৰিত)

তুৱা - pron. আপোনাৰ, তোমাৰ, your, (poetical) (ব্রনচ্ন, ২৭৩)

কামৰূপী উপভাষাৰ শব্দ ঃ

আপী -s. সৰু চোৱালিৰ সম্বোধন, a term used in addressing the daughters of any respectable person (ব্রনচ্ন, ৪৩)

ইন্দুৰ - s. এন্দুৰ, মাটিত গাঁত লৈ থকা জন্তু, a ground rat (ব্রনচ্ন, ৫৬)

উদি - a. উদঙ্গ, মুকলি, ঢাকনি নোহোআ, bare, open, uncovered, naked (ব্রনচ্ন, ৬৪)

কতক - a. সৰহ, অধিক, কেতখনি, many, very much, some few (ব্রনচ্ন, ৯১)

কানকুৰিকা -s. পখি এবিধ, a spocies of bird (ব্রনচ্ন, ১০৬)

খবুআ - s. বেৰ আদিৰ দাঁতিত লগোআ খোলা বাঁহ, a bamboo grooved to receive the lower edge of a reed or bamboo wall or partition (ব্রনচ্ন, ১৩৩)

জিঠিঐ - s. গিৰিএকৰ বায়েক, a husband's sister (ব্রনচ্ন, ২২৮)

দাউৰ্াদাউৰি -s. লৰ, বেগা বেগি, haste, speed, with কৈ, ad. hastile (ব্রনচ্ন, ২৯০)

দোহমতি -s. ঘৈণিয়েকৰ বায়েকৰ পৈয়েক, husband of wife's eldest sister (ব্রনচ্ন, ৩০১)

দিহ - s. আঞ্জা, সাক আদি বেঞ্জন, উপাই, পাত্র আদি, curry of varieties (ব্রনচ্ন, ২৯৪)

পহৰ - s. দিপ্তি, প্রকাস, গগন, light, illumination, knowledge (ব্রনচ্ন, ৩৪০)

সৰিল - s. দেহা, কাই, তনু, গা, the physical frame, the human body (ব্রনচ্ন, ৫১৯)

আহোম শব্দ ঃ

আইচ দেউতা -s. আহোম ডাঙ্গৰিয়াৰ তিৰোতা, address of any respectable woman among the Ahoms (ব্রনচ্ন, ২৭)

কাৰেঙ্গ - s. ৰজাৰ অতি ওখ ঘৰ, ৰঙ্গ ঘৰ, a castle, an amphitheater (ব্রনচ্ন, ১০৯)

গগৈ - s. আহোম ডাঙ্গৰিয়াৰ পুত্র নাতিৰ সম্বোধন, a title or address of persons of rank among the Ahoms. (ব্রনচ্ন, ১৫১)

ডোঙা - s. তাকৰ পানি ৰোআ ঠাই, কলাপটুয়াৰ খোল, a puddla, a place of standing water, an extemporized dish of the plantation stalk. (ব্রনচ্ন, ২৫৮)

পুথাও - s. ককাক, আহোমৰ বাপেকৰ বাপেক, a grand father (Ahom) (ব্রনচ্ন, ৩৫২)

বুৰঞ্জী - s. ৰজা আদিৰ আগৰ কালৰ ইতিহাস, a history, a record (ব্রনচ্ন, ৪১৪)

মাইহাঙ্গ - s. ৰজা আদিএ ভাত খোআ সোন আদিৰ পাত্র বিসেস, a kind of gold or silver plate used only by the king and his nobles. (ব্রনচ্ন, ৪৫৪)

লিগিৰি - প্রধান লোকৰ আলধৰা তিৰি (ব্রনচ্ন, ৪৯৭)

অষ্ট্রিমূলীয় শব্দ ঃ

খঙ্গ - s. ক্রোধ, কোপ, anger, wrath, sharpness (ব্রনচ্ন, ১৩০)

কাৰৌ - s. কাৰনি, কাকুতি, entreaty, supplication (ব্রনচ্ন, ১০৮)

জঞ্জাল - s. আহুকাল, জেঙ্গা, বনত আহৰি নোহোআ, আউল বা জোঁট (ব্রনচ্ন, ২১৫)

নোদোকা - a. সকত, নোকোহা, stout, corpulont (ব্রনচ্ন, ৩২৯)

টাঙ্গোন - s. টোকন, লাঠি, a club, a bludgcon (ব্রনচ্ন, ২৪০)

হিন্দী শব্দ ঃ

পইজাৰ - s. জোতা, a shoe, a slipper (ব্রনচ্ন,৩২৯)

পইতালিচ- a. দুকুৰি পাঁচ, forty five (ব্রনচ্ন, ৩৩০)

পঞ্চাইত - s. চালিচ, মেল, বিচাৰ কৰিবলৈ বহা পাঁচজন মেলুআই, a jury consisting of five person from arbitration (ব্রনচ্ন, ৩৩২)

আৰৱী শব্দ ঃ

আদালত - s. সোধৰ সমাজ, a court of justice (ব্রনচ্ন, ৪১)

কবুল - s. সৈ কৰ্হা অঙ্গিকাৰ কৰা, an acknowledgment agreement (ব্রনচ্ন, ৯৫)

কাগজ - s. তুলাপাত, paper (ব্রনচ্ন, ১০৪)

কিতাপ - s. পুস্তক, বহি, পুথি, a book, a volume (ব্রনচ্ন, ১১১)

দৰ্বাৰ - s. ৰাজসভা, ৰাজমেল, a court, a hall of audience (ব্রনচ্ন, ২৮৭)

দস্তখ - s. দস্তখত, হাত আখৰ, চহি, a signature (ব্রনচ্ন, ২৮৯)

দৰমহা - s. মহিলা কৰা কামৰ বেচ, monthly wages, salary (ব্রনচ্ন, ২৮৭)

নবাব/নেবাব -s. বাদস্যাৰ মন্ত্রি বিসেস, a nabob, a viceroy (ব্রনচ্ন, ৩১২)

নান্কাৰ -s. ৰজাই দিয়া নিষ্কৰ ভূমি, rent free land (ব্রনচ্ন, ৩১৫)

পাৰ্চী শব্দ ঃ

কলম - s. কাপ, লিখনি, গচৰ ডাল ধৰা, a pen a cutting or stem of a plant, a scion, a graft. (ব্রনচ্ন, ১০১)

খৰচ - s. ব্যয়, ধন ঢুকুউআ, expenditure, expense, cost (ব্রনচ্ন, ১৩৪)

বজাৰ - s. বেচা কিনা ঠাই, দোকান, পহাৰ, a bazaar, a market place (ব্রনচ্ন, ৩৮২)

মম - s. মৌসিটা, beeswax, with বাতি, a wax, candle (ব্রনচ্ন, ৪৪৭)

পৰ্তুগীজ শব্দ ঃ

আলপিন - s. গাঁতি সলা, কাপৰত মৰা সলা, a pin (ব্রনচ্ন, ৫০)

ইস্ত্রি - s. ধোবাই কাপৰ ঘঁহা জন্ত্র, an instrument for ironing cloth (ব্রনচ্ন, ৫৭)

কবি - s. সাক এবিধ, a cabbage (ব্রনচ্ন, ৯৫)

কাফি -s. চাহৰ দৰে খোৱা এবিধ গছৰ গুটি, coffee (ব্রনচ্ন, ১০৮)

বৈজ্ঞানিক পৰিভাষা ঃ

তুলসি - Ocymam Sanctum (ব্রনচ্ন, ২৭৩)

তেজপাত - Iaurus cassia (ব্রনচ্ন, ২৭৪)

থলপদ্ম - Hibiscus mutabilis (ব্রনচ্ন, ২৭৯)

নকুল - Viveria lehneumon (ব্রনচ্ন, ৩১০)

নহৰু - Allium Sativum (ব্রনচ্ন, ৩১৩)

নিম - Melia Agadinachta (ব্রনচ্ন, ৩২০)

আমলখি -Phyllanthus embica (ব্রনচ্ন, ৪৭)

কৰ্জাটেঙ্গা -Carissa Corodas (ব্রনচ্ন, ৯৯)

বকুল -Minusopo àßlengi (ব্রনচ্ন, ৩৮০)

ৰঙ্গাআলু - Convolvolus Batatas (ব্রনচ্ন, ৪৭৫)

ৰৌ - Cyprimus Denticulatus (ব্রনচ্ন, ৪৮৬)

ৰিঠা - Columba Indica (ব্রনচ্ন, ৪৮২)

লা-পৰুআ - Cocus ficus (ব্রনচ্ন, ৪৯৬)

সিমলু - Bombax Heptaphylla (ব্রনচ্ন, ৫৩৪)

বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ পৰা এটা দিশ স্পষ্ট হৈছে অভিধানখনত সন্নিৱিষ্ট কিছুমান শব্দৰ বৰ্তমান সময়ত অৰ্থ পৰিৱৰ্তন ঘটিছে। অৰ্থ পৰিৱৰ্তনৰ ধাৰাৰে আলোচনা কৰিলে শব্দসমূহৰ অৰ্থ-সংকোচ (Contraction), অৰ্থ-বিস্তাৰ (àßxpansion) আৰু অৰ্থ-সংশ্লেষ (transference) ঘটিছে বুলি ধাৰণা কৰা যায়।

উদাহৰণ স্বৰূপে -

(ক) অৰ্থ-সংকোচ ঘটা শব্দ ঃ

১। কাউচা - s. চৰাই এবিধ, দুষ্ট স্ত্রি (ব্রনচ্ন, ১০৩)

'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান' অনুসৰি 'কাউচা' শব্দৰ অৰ্থ এবিধ চৰাই আৰু দুষ্ট স্ত্রী। কিন্তু বৰ্তমান সময়ত 'কাউচা' শব্দটো কেৱল কাউৰী জাতীয় এবিধ চৰাইক বুজাবলৈ ব্যৱহৃত হয়।

২। দদাই - s. বাপেকৰ ভায়েক, সুদ্রাদিৰ বাঁৰি মাকৰ অন্য পতি (ব্রনচ্ন, ২৮৬)

বৰ্তমান সময়ত এই দদাই শব্দটো কেৱল খুৰা বা দেউতাকৰ ভায়েকক বুজাবলৈ ব্যৱহৃত হয়।

(খ) অৰ্থ-বিস্তাৰ ঘটা শব্দ ঃ

১। চৰ - s. মুকলি হাতেৰে গালত মৰা চৰ (ব্রনচ্ন, ১৯০)

চৰ শব্দই অভিধানখনত শাৰীৰিকভাৱে প্রহাৰ কৰা অৰ্থ বুজাইছে। কিন্তু শব্দটোৱে বৰ্তমান বিভিন্ন অৰ্থ প্রকাশ কৰে। বৰ্তমান ব্যৱহৃত অৰ্থসমূহ হৈছে - বৃদ্ধি হোৱা (যেনে - নৰিয়া চৰিছে), গুপ্ত দূত, গালত কৰা আঘাট, নৈয়ে পলস পেলাই কৰা ওখ মাটি, জন্তুৱে ঘাঁহ খাবলৈ ফুৰা ইত্যাদি।

২। চিয়া - s. নাম, আগলৈ নাম থকা কৰম, পদবি, আগ সৰু (ব্রনচ্ন, ২০২)

অভিধানখনত অন্তর্ভুক্ত চিয়া শব্দই নাম বা পদবি আৰু কোনো বস্তুৰ সৰু সৰু আগ বুজাইছিল। বৰ্তমান এই শব্দটোৱে বিস্তৃত অৰ্থ প্রকাশ কৰে। চিয়া মানে বৰ্তমান সময়ত খ্যাতি বা যশস্যা, ঈশ্বৰ নামত শপত খোৱা, মুছলমানসকলৰ এটা সম্প্রদায়, অসমৰ সম্প্রদায়

বিশেষৰ ভকতীয়া গীত, চিএগ ইত্যাদি ব্যাপক পৰিসৰত অর্থ প্রকাশ কৰে।

(গ) অর্থ-সংশ্লেষ ঘটা শব্দ ঃ

পূর্বতে ব্যৱহৃত সম্পূর্ণ অর্থ এৰি এক নতুন অর্থত ব্যৱহৃত হ'লে তেনে পৰিৱর্তনক অর্থ-সংশ্লেষ বোলা হয়। এনে ধৰণৰ পৰিৱর্তন ঘটা শব্দ অভিধানখনত পোৱা হোৱা নাই।

অভিধানখনৰ শব্দসম্ভাৰৰ ক্ষেত্রত প্রয়োগ হোৱা আখৰ-জোঁটনি সমূহ বর্তমানৰ অভিধান সমূহতকৈ পৃথক। এইবোৰ এনেধৰণৰ -

(ক) স্বৰবর্ণৰ প্রয়োগৰ ক্ষেত্রত হ্রস্ব আৰু দীর্ঘ স্বৰৰ কোনো প্রভেদ নাৰাখি উচ্চাৰণৰ ভিত্তিত কেৱল হ্রস্ব স্বৰৰ প্রয়োগ কৰিছে।

ই, ঈ > ই - ইস্বৰ (ঈশ্বৰ)
ইর্সা (ঈর্ষা) (ব্রনচ্ন, ৫৭)

গৌণৰূপত শব্দ প্রয়োগতো এই বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হৈছে -

অসিম (অসীম) (ব্রনচ্ন, ৫৯)
উ, ঊ > উ উন (ঊন)
উর্ধ (ঊর্ধ) (ব্রনচ্ন, ৬৬)
কাকুতি (কাকূতি) (ব্রনচ্ন, ১৮৭)

(খ) 'চ' আৰু 'ছ' ৰ ভিতৰত 'চ' ৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে।

চত্র (ছত্র),
চাল (ছাল)

(গ) 'জ', 'য' 'ৰ' ভিতৰত কেৱল 'জ' ৰ প্রয়োগ কৰিছে-

জ, য > জ জদি (যদি) (ব্রনচ্ন, ২১৬)
জতঁৰ (যতঁৰ) (ব্রনচ্ন, ১৮৭)

(ঘ) মূর্দ্ধন্য 'ণ' আৰু দন্ত্য 'ন' ৰ ভিতৰত কেৱল দন্ত্য 'ন' ৰ ব্যৱহাৰ হৈছে -

ণ, ন > ন কান (কাণ) (ব্রনচ্ন, ১০৬)
ৰন (ৰণ) (ব্রনচ্ন, ৪৭৭)

কিন্তু যুক্ত অৱস্থাত এই 'ণ' ৰক্ষিত হৈছে।

অখণ্ড (ব্রনচ্ন, ২)

(ঙ) 'শ', 'ষ' আৰু 'স' ৰ ভিতৰত কেৱল 'স' ৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে -

শ, ষ, স > স অংস (অংশ) (ব্রনচ্ন, ১)
উসা (উষা) (ব্রনচ্ন, ৭২)
সস্য (শষ্য) (ব্রনচ্ন, ৫২২)

কিছুমান ক্ষেত্রত 'ষ > খ' ৰূপেও প্রয়োগ হৈছে -

বৰখুন (বৰষুণ) (ব্রনচ্ন, ৩৮৬)

কিন্তু যুক্ত ৰূপত 'ষ' ৰ ব্যৱহাৰ অক্ষুন্ন আছে।

ষ্ট (st) অনিষ্ট (ব্রনচ্ন, ১৩)
ষ্ঠ (sth) প্রতিষ্ঠা (ব্রনচ্ন, ৩৬২)

(চ) 'ড়' ৰ 'ঢ়' ৰ বিকল্প ৰূপে ক্রমে 'ৰ' আৰু 'র্হ' ৰ প্রয়োগ ঘটিছে।

ড় > ৰ কাৰ (কাড়) (ব্রনচ্ন, ১০৪)
ড় > র্হ বর্হা (বঢ়া) (ব্রনচ্ন, ৩৮৮)

(ছ) 'ক্ষ' ৰ পৰিৱর্তে 'খ' আৰু 'খ্য' ৰ বিকল্প প্রয়োগ ঘটিছে -

ক্ষ > খ্য, খ অখ্যৰ (অক্ষৰ) (ব্রনচ্ন, ৪)
খয় (ক্ষয়) (ব্রনচ্ন, ১০৭)

কিন্তু যুক্ত ৰূপত 'ক্ষ' ৰ প্রয়োগ পোৱা গৈছে।

জঐৌ (যঐৌ) (ব্রনচ্ন, ২১৬)

(জ) 'ঞ' ৰ ব্যৱহাৰ এককভাৱে হোৱা নাই একক অৱস্থাত 'ঞ' ক অনুনাসিক ৰূপে চন্দ্রবিন্দুৰে বুজাইছে -

ঞ > য়ঁ চিয়ঁৰ (চিঞৰ) (ব্রনচ্ন, ১৯৯)

কিন্তু সংযুক্ত বর্ণত 'ঞ' ৰ ব্যৱহাৰ পোৱা গৈছে।

চঞ্চল, খঞ্জৰি (ব্রনচ্ন, ১৮৬, ১৩১)

(ঝ) 'ঋ' আৰু 'ৎ' ৰ পৰিৱর্তে ক্রমে 'ৰি' আৰু 'ত' ৰ প্রয়োগ ঘটিছে।

ঋ > ৰি ক্রিপন (কৃপন) (ব্রনচ্ন, ১২৮)
ৎ > ত উত্সৱ (উৎসৱ) (ব্রনচ্ন, ২৬৪)

(ঞ) 'ঙ' ৰ বিকল্প ৰূপে 'ঙ্গ' ৰ ব্যৱহাৰ হৈছে -

ঙ > ঙ্গ ডিঙ্গি (ডিঙি) (ব্রনচ্ন, ২৪৮)
ডোঙ্গা (ডোঙা) (ব্রনচ্ন, ২৪৮)

(ট) 'য়' ৰ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্রত 'য়' আৰু 'ই' এই দুয়োটা ৰূপেই পোৱা গৈছে।

য় > য় এয়ে (ব্রনচ্ন, ৮০)
য় > ই অখ্যই (অক্ষয়) (ব্রনচ্ন, ৪)

(ঠ) 'ৱ' ৰ ব্যৱহাৰ অভিধানখনত 'ৱ', 'অ', 'ও' এই তিনিওটা ৰূপতে হৈছে -

ৱ > ৱ সিৱ (শিৱ) (ব্রনচ্ন, ৫৩৬)
ৱ > অ কেচুআ (কেঁচুৱা) (ব্রনচ্ন, ১২১)
ৱ > ও অভাও (অভাৱ) (ব্রনচ্ন, ১৮)

ব্রনচ্নে এনেদৰে অভিধানখনত প্রবিষ্টিসমূহ উচ্চাৰণ ভিত্তিক আখৰ-জোঁটনি ব্যৱহাৰ কৰি অন্তর্ভুক্ত কৰিছিল।

এইটো অভিধানখনৰ এক উল্লেখনীয় বৈশিষ্ট্য।

উপসংহাৰঃ

মাইলচ্ ব্ৰনচ্নৰ 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান' খনে অসমীয়া ভাষা সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ অনবদ্য অৱদান আগবঢ়াইছে। লগতে অসমীয়া শব্দভাণ্ডাৰৰ পৰিপুষ্টিত অৰিহনা যোগাইছে। সাম্প্ৰতিক সময়ত বিভিন্ন দেশী-বিদেশী ভাষাৰ প্ৰভাৱত অসমীয়া ভাষাৰ পৰা যিদৰে জাতীয় জীৱনত ব্যৱহৃত বিভিন্ন শব্দ হেৰাই যাবলৈ ধৰিছে সেইদৰে মাইলচ্ ব্ৰনচ্নে যিখন অসমীয়া সমাজৰ পটভূমিৰ পৰা শব্দসমূহ সংগ্ৰহ কৰি 'অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান' খন প্ৰণয়ন কৰিছিল, সেই সমাজখনত প্ৰচলিত শব্দসমূহো সময়ৰ লগে লগে ক্ৰমশঃ হেৰাই গৈছে। কিছুমান শব্দৰ অৰ্থ পৰিৱৰ্তন ঘটিছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অসম সাহিত্য সভা। *চন্দ্ৰকান্ত অভিধান*। চতুৰ্থ সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১২। মুদ্ৰিত।

চুতীয়া, বিপিন। *প্ৰাচীন অসমীয়া অভিধান*। প্ৰথম প্ৰকাশ। ধেমাজি কিৰণ প্ৰকাশন, ২০০৭। মুদ্ৰিত।

নেওগ, মহেশ্বৰ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা*। গুৱাহাটীঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০০০। মুদ্ৰিত।

বৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ। *হেমকোষ*। সম্পা. দেৱানন্দ বৰুৱা। ষষ্ঠ সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ হেমকোষ প্ৰকাশন, ২০০৬। মুদ্ৰিত।

মাইলচ্ ব্ৰনচ্ন। *অসমিয়া আৰু ইংৰাজি অভিধান*। প্ৰথম প্ৰকাশ। শিৱসাগৰ ঃ আমেৰিকান বেপ্তিষ্ট মিছন প্ৰেছ, ১৮৬৭ ।মুদ্ৰিত।

https://archive.org.web.27 october, 2016

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী দৃষ্টিভঙ্গীৰ আধাৰত নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন

হিৰণ্য কুমাৰ বৰা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ বিশ্ববিদ্যালয়
নগাঁও-৭৮২০০১
৮৬৩৮২১০৩৯৩
hironyaborah300@gmail.com

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত নৱকান্ত বৰুৱা এক পৰিচিত নাম। ৰোমাণ্টিক যুগত প্ৰচলিত হৃদয়বৃত্তিৰ পৰিৱৰ্ত্তে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত গভীৰ চিন্তা আৰু বুদ্ধিমত্তাৰ গুৰুত্ব এক উল্লেখযোগ্য দিশ। সমগ্ৰ বিশ্বৰ মানৱসভ্যতাৰ ইতিহাসৰ মাজত একক সামঞ্জস্য বিচাৰি পোৱা কবিগৰাকীৰ কবিতাৰ মাজত তদানীন্তন সময়ৰ সামাজিক সমস্যাবোৰৰ বাস্তৱসম্মত বিশ্লেষণ পৰিলক্ষিত হয়। তদুপৰি বুৰঞ্জী, সমসাময়িক সমাজব্যৱস্থা, ৰাজনীতি, দৰ্শন - এই প্ৰতিটো দিশকে কবিগৰাকীয়ে নিজৰ কবিতাৰ মাজত স্থান দিয়া দেখা যায়। নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাসমূহ ইংৰাজী আৰু সমসাময়িক বাংলা কবিৰ কবিতাৰ প্ৰভাৱপুষ্ট হ'লেও সম্পূৰ্ণ মৌলিক গুণসম্পন্ন। অৱশ্যে বিশ্ব জাগতিক পৰিঘটনাৰ অভিজ্ঞতাৰ মূলৰ পৰাই যিহেতু আধুনিক কবিতাৰ আন্তৰ্জাতিক ৰীতিৰ জন্ম, গতিকে সেই ৰীতিৰ অংশীদাৰ হিচাপে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত বিশ্ব সাহিত্যৰ প্ৰভাৱ পৰাটো অস্বাভাৱিক কথা নহয়। ৰচনা শৈলীৰ ফালৰ পৰা গভীৰ প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পধৰ্মী কবিতাসমূহত তদানীন্তন সময়ৰ ক্ষয়িষ্ণু সভ্যতাৰ এখন নিৰ্মম বাস্তৱ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। ৰোমাণ্টিক আৰু আধুনিক যুগৰ যুগসন্ধিৰ সময়চোৱাৰ এগৰাকী উল্লেখযোগ্য কবি হিচাপে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা সম্পৰ্কে যথেষ্ট আলোচনা হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত তেখেতৰ কবিতাৰ প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পবাদৰ লগতে বাংলা সাহিত্যৰ কবি জীবনানন্দ দাশকে আদি কবি সমসাময়িক সময়ৰ আন কবিসকলৰ কাব্য ধাৰাৰ সৈতে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাৰ তুলনামূলক অধ্যয়নো বহুল পৰিমানে হোৱা দেখা যায়। কিন্তু এগৰাকী আধুনিকতাবাদী আৰু সমাজ-সচেতন কবি হিচাপে তেখেতৰ কবিতাৰ মাজত প্ৰকাশিত হোৱা পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তাধাৰা, বিশেষতঃ পৰিৱেশ মার্ক্স বাদী চেতনাৰ সম্পৰ্কে বিশেষ আলোচনা হোৱা দেখা নাযায়। আমাৰ এই আলোচনাৰ মাধ্যমেৰে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত প্ৰতিফলিত পৰিৱেশ মার্ক্স বাদী চিন্তাধাৰাৰ দিশটোৰ সম্পৰ্কে অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য ঃ

সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ মাজত কবিতা অন্যতম। পৰম্পৰাগত দৃষ্টিভংগীৰে নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাসমূহৰ সম্পর্কে ইতিমধ্যে যথেষ্ট চর্চা হৈছে যদিও উত্তৰ-ঔপনিৱেশীক সাহিত্য তত্ত্ব পৰিবেশ সমালোচনা তত্ত্বৰ আধাৰত তেওঁৰ কবিতাসমূহৰ আলোচনাৰ যথেষ্ট থল আছে। আমাৰ এই আলোচনাৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল ঃ

(ক) পৰিবেশ সমালোচনা তত্ত্ব আৰু ইয়াৰ ধাৰণা সম্পর্কে এক আভাস পোৱা।

(খ) অসমীয়া কবিতাত প্রতিফলিত পৰিৱেশ সমালোচনাৰ দিশটো পোহৰাই তোলা

(গ) পৰিবেশ মার্ক্সবাদী দৃষ্টিভঙ্গী সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰা।

উত্তৰ-ঔপনিৱেশীক সাহিত্য সমালোচনাৰ তত্ত্ব হিচাপে সাহিত্যৰ ক্ষেত্রখনত পৰিবেশ সমালোচনা তত্ত্বৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। পাশ্চাত্যৰ সাহিত্যৰ লগতে সর্বভাৰতীয় পর্যায়তো এই তত্ত্বৰ আধাৰত ইতিমধ্যে সাহিত্যৰ সমালোচনা আৰম্ভ হৈছে আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্রতো দুই-এগৰাকী গৱেষকে উপন্যাস, চুটিগল্প আদি বিধাসমূহক বিষয় হিচাপে লৈ গৱেষণাৰ পাতনি মেলিছে যদিও অসমীয়া কবিতাৰ ক্ষেত্রত এই তত্ত্বৰ আধাৰত বর্তমানলৈকে গৱেষণা হোৱা নাই। কিন্তু অসমীয়া কাব্য পৰিক্রমাটোলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, পৰিবেশ সম্পর্কীয় চিন্তা-চর্চাই অসমীয়া কবিতাৰ ক্ষেত্রখনৰ এক বৃহৎ স্থান অধিকাৰ কৰি আছে। বিশেষতঃ নৰকান্ত বৰুৱাকে আদি কৰি অন্যান্য কবিসকলৰ কবিতাত পৰিৱেশ নাৰীবাদ, বহনক্ষম পৰিস্থিতি তন্ত্রৰ ধাৰণা, যুগৰ উন্নতিৰ লগে-লগে পৰিৱেশৰ ওপৰত আধুনিকীকৰণৰ প্রভাৱ, জৈৱ-ৰাজনীতি আদিৰ লগতে মার্ক্সবাদী তত্ত্বৰ আধাৰত পৰিৱেশ সম্পর্কে আলোচনা আদি নব্য বিষয়েও অসমীয়া কবিতাত স্থান লাভ কৰিছে যাৰ সম্পর্কে গৱেষণামূলক অধ্যয়নৰ যথেষ্ট অৱকাশ আছে। সেই দৃষ্টিকোণৰ পৰা 'পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী দৃষ্টিভঙ্গীৰ আধাৰত নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন' শীর্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

'পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী দৃষ্টিভঙ্গীৰ আধাৰত নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন' বিষয়টোৰপৰিসৰে নৰকান্ত বৰুৱাৰ 'মোৰ আৰু পৃথিৱীৰ', 'মহাকাব্যৰ পাণ্ডুলিপি', 'ৰত্নাকৰ আৰু অন্যান্য কবিতা', 'এখন স্বচ্ছ মুখাৰে', 'দলঙত তামীঘৰা' শীর্ষক কবিতা পুথিকেইখনৰ লগতে 'নৰকান্ত বৰুৱাৰ গান আৰু কবিতা সমগ্র' শীর্ষক পুথিখনত প্রকাশিত তেওঁৰ পূর্বে অপ্রকাশিত কবিতাসমূহকো সামৰি ল'ব।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

'পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী দৃষ্টিভঙ্গীৰ আধাৰত নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন' শীর্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ মূল পদ্ধতি হিচাপে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব আৰু তথ্য আহৰণৰ মুখ্য উৎস হিচাপে নৰকান্তবৰুৱাৰ 'মোৰ আৰু পৃথিৱীৰ', 'মহাকাব্যৰ পাণ্ডুলিপি', 'ৰত্নাকৰ আৰু অন্যান্য কবিতা', 'এখন স্বচ্ছ মুখাৰে', 'দলঙত তামীঘৰা' শীর্ষক কবিতা পুথিকেইখনৰ লগতে 'নৰকান্ত বৰুৱাৰ গান আৰু কবিতা সমগ্র' শীর্ষক পুথিখনক সামৰি লোৱা হ'ব। তদুপৰি তথ্য আহৰণৰ গৌণ উৎস হিচাপে নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাৰ আলোচনা সম্বলিত বিভিন্ন গ্রন্থ আৰু কাকত-আলোচনীৰ সহায় লোৱা হ'ব।

১.০০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

ইংৰাজী ভাষাৰ àßco Criticism শব্দটোৰ সমার্থক শব্দ হিচাপে অসমীয়া ভাষাত 'পৰিৱেশ সমালোচনা' শব্দটোৰ প্রয়োগ কৰা হয়। àßco Criticism বা পৰিবেশ সমালোচনা হ'ল উত্তৰ-ঔপনিবেশিক কালৰ এক সাহিত্য সমালোচনা তত্ত্ব, যাৰ আধাৰত সাহিত্যৰ বিধাসমূহত প্রকাশিত পৰিৱেশ সমালোচনাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হয়।

àßco Criticism বা পৰিৱেশ সমালোচনাৰ ধাৰাটো পোন প্রথমে জোচেফ মিকাৰে (Josep Meeker) তেওঁৰ 'The comedy of survival : studies in literary ecology' শীর্ষক গ্রন্থখনৰ মাধ্যমেৰে আৰম্ভ কৰে। অৱশ্যে সাহিত্যৰ তত্ত্ব হিচাপে àßco Criticism ৰ ধাৰণাটো পোন প্রথমে সূচনা কৰে উইলিয়াম ৰুইক্রেটে (William Rueckert) তেওঁৰ 'Literature and àßcology : An àßxperiment in àßco Criticism' শীর্ষক ৰচনাৰাজিত। সাধাৰণ দৃষ্টিৰে àßco Criticism বা পৰিৱেশ সমালোচনা বুলিলে 'সাহিত্যত পৰিৱেশ সচেতনতা' ৰ ধাৰণাটোৱেই মনলৈ আহে যদিও সাহিত্য সমালোচনাৰ তত্ত্ব হিচাপে ইয়াৰ পৰিসৰ যথেষ্ট ব্যাপক। àßco Criticism বা পৰিৱেশ

সমালোচনাই পৰিৱেশ সচেতনতা সম্পৰ্কীয় ধাৰণাৰ লগতে পৰিৱেশ নাৰীবাদ, পৰিৱেশ মার্ক্স বাদ, গভীৰ পৰিস্থিতি বিজ্ঞান, পৰিৱেশ মনোবিজ্ঞান আদি ধাৰণাসমূহক ইয়াৰ পৰিসৰত সামৰি লয়।

যদিও àßco Criticism বা পৰিৱেশ সমালোচনা তত্ত্ব উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক কালত সৃষ্টি হোৱা এক সাহিত্য- সমালোচনা তত্ত্ব, সাহিত্যৰ ক্ষেত্রখনত পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ ধাৰণাটো অতি প্ৰাচীন। এই ক্ষেত্রত সৰ্বভাৰতীয় প্রেক্ষাপটত মহাকাব্যসমূহৰ পৰা আৰম্ভ কৰি কালিদাসৰ 'মেঘদূতম্' কাব্যলৈকে বহুসংখ্যক সাহিত্যৰ কথা আলোচনা কৰিব পৰি। একেদৰেই অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্রটো

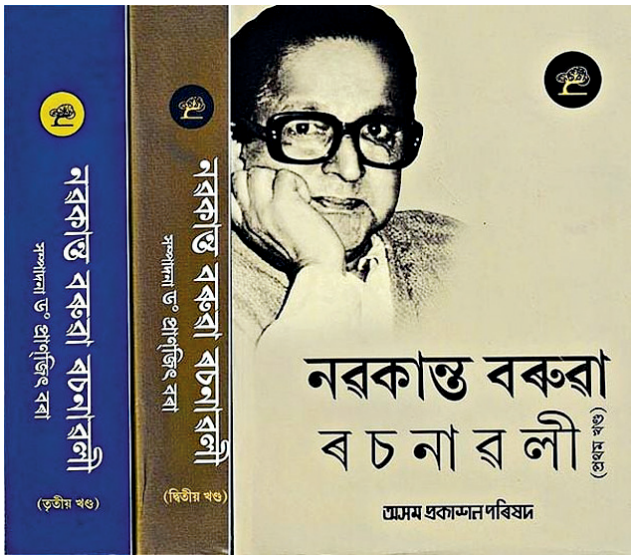

লিখিত সাহিত্যৰ পৰম্পৰা আৰম্ভ হোৱাৰ পূৰ্বৰে পৰা মানুহৰ মুখে-মুখে প্রচলিত মৌখিক লোক-সাহিত্যসমূহতো পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ প্রভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। এই ক্ষেত্রত অসমীয়া লৌকিক সাহিত্যৰ ভেঁটিস্বৰূপ বিহুনাম, বনগীত, গৰখীয়া নাম, ফকৰা-যোজনা, ডাকৰ বচন, আদিৰ মাজত মানুহ আৰু প্রকৃতিৰ গভীৰ সম্পৰ্কৰ ছবি উল্লেখ যোগ্য। এই লোক-সাহিত্যসমূহৰ উপৰি লিখিত সাহিত্যৰ পৰম্পৰাটোলৈ লক্ষ্য কৰিলে প্রাক্-শংকৰ যুগৰ কবি মাধৱ কন্দলীৰ সপ্তকাণ্ড ৰামায়ণৰ পৰা আৰম্ভ কৰি পৰৱৰ্ত্তী সময়ৰ কবি শংকৰদেৱ, মাধৱদেৱ আদিৰ প্রায়সমূহ ৰচনাৰ মাজত পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ প্রভাৱ দেখা যায়। অসমীয়া সাহিত্যৰ 'নৱ-জাগৰণৰ সময়' হিচাপে অভিহিত জোনাকী যুগত ৰচনা হোৱা সাহিত্যসম্ভাৰলৈ লক্ষ্য কৰিলেও তদানীন্তন সময়ত ৰচিত সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰাজিৰ মাজত পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ প্রভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। বিশেষতঃ ইংৰাজী সাহিত্যৰ পৰা বিশ্ব সাহিত্যলৈ বৈ যোৱা ৰমন্যাসবাদৰ ঢোৱে অসমীয়া সাহিত্যকো স্পৰ্শ কৰে, যাৰ পৰিণতি স্বৰূপে ৰমন্যাসিক সাহিত্যৰ অন্যতম লক্ষণ হিচাপে পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাই অসমীয়া সাহিত্যটো স্থান পায়। ইংৰাজ কবি উইলিয়াম ৱর্ডস্বর্থ, পি.বি. শ্যেলী, জন কিট্চ, টি. এচ. এলিয়ট আদিৰ লগতে বাংলা সাহিত্যৰ কবি-সাহিত্যিক ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰ, জীবনানন্দ দাশ আদি সাহিত্যিকৰ সাহিত্যৰ প্রভাৱত অসমীয়া সাহিত্য, বিশেষতঃ অসমীয়া কবিতা প্রকৃতি-সচেতন হৈ উঠে। বিশ্ব-প্রকৃতিৰ মাজত সুখৰ সন্ধান, মানুহ আৰু প্রকৃতিৰ সম্পৰ্ক আদিক সাহিত্যৰ মূল বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ নানান কবিতাৰ ৰচনা হয় আৰু এই ক্ষেত্রত মুখ্য ভূমিকা গ্রহণ কৰে চন্দ্রকুমাৰ আগৰৱালা, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, ৰঘুনাথ চৌধাৰী প্রভৃতি কবিসকলে।

জোনাকী যুগৰ পৰা ৰামধেনু যুগলৈ এই সময় চোৱাৰ মাজত অসমীয়া কবিতাৰ ভাববস্তুৰ যথেষ্ট পৰিৱর্তন সাধন হয় যদিও পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চাৰ এই ধাৰাটো কাব্য পৰিক্রমাৰ মাজেৰে আগুৱাই গৈ ৰাম গগৈ, কেশৱ মহন্ত, হেম বৰুৱা, নীলমণি ফুকন, হোমেন বৰগোহাঁঞি আদি কবিৰ কবিতাৰ মাজত পূর্ণ বিকশিত ৰূপ লাভ কৰে। উল্লেখ্য যে, জোনাকী যুগৰ অসমীয়া কবিতাত প্রতিফলিত যি প্রকৃতি সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা, ই মূলতঃ পৰিৱেশ সচেতনতা আৰু মানুহ আৰু প্রকৃতিৰ মাজৰ সম্পৰ্ক আদিৰ মাজতে সীমাবদ্ধ আছিল কিন্তু পৰৱৰ্ত্তী সময়ত নৱকান্ত বৰুৱাকে প্রমুখ্য কৰি অন্যান্য কবিসকলৰ কবিতাৰ মাজত এই পৰিৱেশ সম্বন্ধীয় চিন্তা-চৰ্চাই প্রসাৰতা লাভ কৰি বহনক্ষম পৰিস্থিতি তন্ত্রৰ ধাৰণা, যুগৰ উন্নতিৰ লগে-লগে পৰিৱেশৰ ওপৰত আধুনিকীকৰণৰ প্রভাৱ, জৈৱ-ৰাজনীতি, পৰিৱেশীয় মার্ক্সবাদ, পৰিৱেশীয় নাৰীবাদ আদিৰ ধাৰণাকো ইয়াৰ পৰিসৰত সামৰি লয়, যাৰ ফলত অসমীয়া কবিতাত পৰিৱেশ সমালোচনাৰ ধাৰণাই এক নতুন মাত্রা লাভ কৰে।

সাম্প্রতিক সময়লৈকে বিদ্যায়তনীক ক্ষেত্রখনত নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাৰ সম্পর্কে যথেষ্ট চর্চা হৈছে যদিও àßco Criticism theory বা পৰিৱেশ সমালোচনা তত্ত্বৰ আধাৰত তেওঁৰ কবিতাসমূহৰ বিশ্লেষণৰ দিশটো বর্তমানলৈকে উপেক্ষিত হৈ আছে। আমাৰ এই আলোচনাৰ মাধ্যমেৰে পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী তত্ত্বৰ আধাৰত নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত প্রতিফলিত পৰিৱেশ সম্পর্কীয় চিন্তা-চর্চাৰ দিশটো বিশ্লেষণৰ প্রয়াস কৰা হ'ব।

১.০১ পৰিৱেশ মার্ক্সবাদ ঃ ধাৰণা আৰু পৰিচয় ঃ

পৰিৱেশ আৰু ইয়াৰ লগত জড়িত প্রভাৱ আৰু প্রক্রিয়াসমূহ অধ্যয়ন আৰু বিশ্লেষণত কার্ল মার্ক্সৰ তত্ত্বসমূহ প্রয়োগকে সাধাৰণতে পৰিৱেশ মার্ক্সবাদ বোলা হয়। মার্ক্সৰ পৰিস্থিতিতন্ত্রৰ ধাৰণাই পুঁজিবাদৰ বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে পৰিৱেশ অৱক্ষয়ৰ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্রত অগ্রণি ভূমিকা গ্রহণ কৰে।

পৰিৱেশ মার্ক্সবাদ এক শেহতীয়া প্রভাৱশালী চিন্তা। ১৯৭৯ চনত বেন এগাৰে তেওঁৰ An introduction to western Marxism শীর্ষক গ্রন্থখনত পোনপ্রথমে এই পৰিৱেশ মার্ক্সবাদৰ ধাৰণাৰ সম্পর্কে ব্যাখা কৰে। পৰিৱেশ মার্ক্সবাদৰ মূল লক্ষ্য হ'ল পুঁজিবাদৰ প্রভাৱত ক্রমশঃ অৱক্ষয়প্রাপ্ত আৰু সংকটাপন্ন পৰিৱেশৰ সম্পর্কে বিশ্লেষণ কৰা আৰু বহনক্ষম বিকাশৰ ধাৰণাৰে তাক পুনৰোজ্জিৱিত কৰা। এক কথাত ক'বলৈ গ'লে পৰিৱেশ মার্ক্স বাদৰ ধাৰণা অনুসৰি সামাজিক অন্যায় আৰু পৰিৱেশ অৱক্ষয়ৰ মূল কাৰণ হ'ল এখন পুঁজিবাদী পৃথিৱী, য'ত যিকোনো মূল্যৰ বিনিময়ত লাভৰ প্রাপ্তিয়েহে মূল মন্ত্র হিচাপে কাম কৰে। মার্ক্সৰ ধাৰণা অনুসৰি 'শ্রম হৈছে বস্তুগত সম্পদৰ পিতৃ আৰু পৃথিৱী হৈছে ইয়াৰ মাতৃ। যিহেতু মার্ক্স বাদে সদায় সমতাৰ ওপৰত প্রতিস্থিত এখন সমাজ প্রতিস্থাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে, সেয়েহে সাম্যবাদী চিন্তাধাৰাৰে উন্নয়ন পৰিকল্পনাৰ বাবে ই সম্পদৰ বহনক্ষম ব্যৱহাৰৰ পোষকতা কৰে। পৰিৱেশ মার্ক্স বাদৰ মতে পুঁজিবাদে যিদৰে সর্বহাৰা শ্রেণীটোক শোষণ কৰি নিজৰ ক্ষমতা আৰু সম্পত্তি বৃদ্ধিত গুৰুত্ব দিয়ে, একেদৰেই প্রকৃতিৰ ওপৰতো অবাধ অত্যাচাৰ কৰি কেৱল নিজৰ লাভ অর্জনৰ বাবে প্রকৃতিক পণ্য সামগ্রী হিচাপেহে ব্যৱহাৰ কৰে। সেয়েহে পৰিৱেশ মার্ক্স বাদে এনে অশুভ শক্তিৰ হাতৰ পৰা পৰিৱেশক সুৰক্ষা প্রদান কৰি বহনক্ষম উন্নয়নৰ জৰিয়তে প্রকৃতি মুক্তিৰ সূচনা কৰে।

পৰিৱেশ মার্ক্সবাদ এনে এক মতাদর্শ, যি পৰম্পৰাগত মার্ক্সবাদী ৰাজনৈতিক মতাদর্শৰ দিশৰোৱক 'ইক'লজি' আৰু 'সেউজ ৰাজনীতি'ৰ সৈতে একত্রিত কৰে। পৰিৱেশ মার্ক্স বাদে প্রকৃতিক কেৱল সম্পদৰ আশ্রয়স্থল হিচাপে গণ্য কৰি আৰু মানুহৰ পৰা ইয়াক বিচ্ছিন্ন কৰি কেৱল ব্যক্তিগত লাভৰ উদ্দেশ্যে পৰিৱেশক ব্যৱহাৰৰ বিৰোধীতা কৰে।

পৰিৱেশবিদ তথা সমালোচক Yu & chen ৰ মতে পৰিৱেশ মার্ক্সবাদ হ'ল এক নতুন চিন্তাধাৰা, যি মার্ক্সবাদী ঐতিহাসিক বিশ্লেষণ পদ্ধতি আৰু শ্রেণী বিশ্লেষণ (Historical Analysis & Class Analysis) পদ্ধতিৰ প্রয়োগৰ দ্বাৰা সাম্প্রতিক পুঁজিবাদী ব্যৱস্থা আৰু উৎপাদন পদ্ধতিক পৰি্ৱেশ বিজ্ঞানৰ দৃষ্টিকোণৰ পৰা সমালোচনা কৰে। এই পৰিৱেশ মার্ক্সবাদৰ মতামত অনুসৰি পৰিৱেশ মার্ক্সবাদে উন্নত দেশসমূহত পুঁজিবাদৰ প্রভাৱত উদ্ভৱ হোৱা পৰিৱেশগত সমস্যা দূৰীকৰণত সহায় কৰাৰ চেষ্টা কৰে। তদুপৰি ই গণ উৎপাদনৰ ঠাইত ক্ষুদ্র উৎপাদনৰ জৰিয়তে প্রাকৃতিক ভাৱসাম্য ৰক্ষাৰ প্রতিও মনোনিৱেশ কৰে।

বিশ্ব সাহিত্যত পৰিৱেশ আৰু ইয়াৰ সৈতে জড়িত সমস্যাসমূহক কেন্দ্র কৰি সাহিত্যচর্চা কোনো নতুন বিষয় নহয়। অতীজৰে পৰা সমাজসচেতক সাহিত্যিকসকলৰ সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধা যেনে - গল্প, উপন্যাস, কবিতা আদিৰ মাজত পৰিৱেশ সম্পর্কীয় চিন্তাধাৰাৰ প্রভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। পৰিবেশ সমালোচনা তত্ত্বৰ পৰিসৰৰ ভিতৰুৱা হিচাপে আলোচিত হোৱা এই পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী অৱধাৰণাক আধাৰ হিচাপে লৈ সাম্প্রতিক সময়ত এনেসমূহ সাহিত্যৰ সমালোচনাত্মক অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে 'পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী সাহিত্য সমালোচনা তত্ত্ব'ৰ উদ্ভৱ হৈছে। এই তত্ত্বৰ মাধ্যমেৰে পৰিৱেশ সচেতনতামূলক সাহিত্যৰ মাজত পৰিৱেশ মার্ক্সবাদী চিন্তাধাৰাৰ উন্মেষৰ সম্পর্কে আলোচনা কৰা হয়।

১.০২ নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত প্ৰতিফলিত পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদী চেতনা ঃ

সাহিত্য সমালোচনাৰ তত্ত্ব হিচাপে পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদ তুলনামূলক ভাৱে এক নতুন ধাৰণা। কিন্তু বিশ্ব সাহিত্যত পৰিৱেশ সচেতনতা সম্পৰ্কীয় চিন্তধাৰা নতুন নহয়। অতীজৰে পৰা সাহিত্যৰ মাজত পৰিৱেশ সচেতনতা সম্পৰ্কীয় চিন্তাধাৰাৰ এক সুঁতি অৱধাৰিত বাবে বৈ অহা দেখা যায়। অসমীয়া সাহিত্যও তাৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। অসমীয়া সাহিত্যতো মৌখিক লোক-সাহিত্যৰ পৰা আৰম্ভ কৰি সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় চিন্তাধাৰাৰ প্ৰৱাহ দেখা যায়। সাহিত্যৰ এই ধাৰাটোক প্ৰতিনিধিত্ব কৰা সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত নৰকান্ত বৰুৱা অন্যতম। উল্লেখ্য যে, ৰামধেনু যুগৰ কবি হিচাপে নৰকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত সাহিত্যৰ তত্ত্ব হিচাপে 'পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদ'ৰ উদ্দেশ্যমূলক প্ৰয়োগ নহ'লেও এগৰাকী সচেতন কবি হিচাপে তেওঁৰ কবিতাত পৰিৱেশ সচেতনতাৰ চিন্তাধাৰা বিদ্যমান। সেই দিশৰ পৰা তেওঁৰ কবিতাসমূহ 'পৰিৱেশ সমালোচনা তত্ত্ব'ৰ আধাৰত আলোচনা কৰাৰ যথেষ্ট অৱকাশ আছে।

পুঁজিবাদী সমাজ ব্যৱস্থাই স্বাৰ্থন্বেষী মনোভাৱেৰে কেৱল ব্যক্তিগত লাভৰ উদ্দেশ্যে প্ৰকৃতিৰ ওপৰত চলোৱা অবাধ অত্যাচাৰৰ বিৰোধীতা কৰাই 'পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদ'ৰ মূল লক্ষ্য। পুঁজিবাদী সমাজব্যৱস্থাৰ এনে সৰ্বগ্ৰাহী প্ৰভাৱৰ বাস্তৱ ছবিখন নৰকান্ত বৰুৱাৰ নৰকান্ত বৰুৱাই তেওঁৰ কবিতাসমূহৰ মাজত সুন্দৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰছে, যাৰ মাধ্যমেৰে তেওঁৰ কবিতাত পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদৰ চেতনা ফুটি উঠিছে। এনে চেতনা প্ৰকাশিত তেওঁৰ এটি কবিতা হ'ল - 'ক্ৰমশঃ'। অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ সমলস্বৰূপ 'তেজীমলাৰ সাধু', 'কমলা কুঁৱৰীৰ সাধু', 'চিলনী জীয়েকৰ সাধু', আদিৰ লগতে বিশ্ব সাহিত্য আৰু শিল্প কলাৰ বিভিন্ন খণ্ডিত চিত্ৰ যেনে - চেলভাডৰ ডালি (Salvador Dali)ৰ অতিবাস্তৱবাদী আন্দোলনৰ সমৰ্থনত অঁকা চিত্ৰ 'The Persistence of Memory' ৰ প্ৰসঙ্গৰ উল্লেখেৰে সজাই তোলা কবিতাটোত কবিগৰাকীয়ে উন্নতিৰ জখলাত আগুৱাই যোৱা মানুহে নিজৰ স্বাৰ্থৰ বাবে প্ৰকৃতিৰ ওপৰত কৰা অত্যাচাৰৰ বাস্তৱ ছবি দাঙি ধৰিছে -

"জানিছিলোঁ জানো এইখন মৰাৰ দেশ
এয়া নৈ পাৰ হৈ
সাউদৰ ডিঙা বেহাবলৈ যায়
অবোধ কেতেকী হয়...
শামুকৰ খোলা ৰ'দত জিলিকি চকুত পিয়াহ লগাই,
পানী ক'ত পানী
ক'ত সেউজীয়া পাৰৰ ধাননী
কাগজৰ পোকে খাই গ'ল নেকি কবিতাৰ সেই ৰং
লুইত শুকান, লুইতত পানী নাই
পাত কুঁৱাবোৰত পাতালৰ পৰা বিহ অহাৰ বাট।"

মানুহৰ অত্যাচাৰত শ্ৰান্ত হৈ পৰা পৃথিৱীৰ বুকুত বাৰে বাৰে কুঠাৰাঘাটৰ কথা উল্লেখ কৰি তেওঁ কৈছে -

" সাউদৰ নাও তথাপি চলিছে
সাউদৰ নাও খৰাং মাটিতো চলে
পানীৰ পিয়াহ সাউদৰ নাই, মা থোন সোণৰ পিয়াহ,
পানী দিম বুলি আমাৰ চ'ৰাতে
গাঁত খানি সোণৰ খনি বিচাৰোঁতে
সাউদে কেৱল পালে
হেজাৰ ফুল কোঁৱৰ, মণি কোঁৱৰৰ
লাওখোলা আৰু জকা...।"

সভ্যতাৰ অগ্ৰগতিৰ লগে লগে মানুহৰ উচ্ছাকাংক্ষাৰ ভৰত ক্ৰমশঃ ক্ষয়িযুঃ হৈ পৰা প্ৰকৃতিৰ মৰ্মবেদনা ফুটি উঠা নৰকান্ত বৰুৱাৰ আন এটা কবিতা হ'ল - 'আমাৰ পৃথিৱী'।

'আমিটো নেপালোঁ হায় পৃথিৱীৰ প্ৰথম যৌৱন
অৰণ্যৰ সেউজী সুৰভী।
নুশুনিলোঁ নক্ষত্ৰৰ পাখিৰ স্পন্দন।
আমাৰ তৰাই মাথো আকাশকে পোহৰ কৰিলে
আৰু উচুপি ৰ'ল
অন্ধকাৰ পৃথিৱীৰ স্বপ্নাতুৰ ক্ষয়িযুঃ কংকাল।'

মাতৃৰ মমতাৰে নিজ সন্তানৰ দৰে প্ৰকৃতিয়ে লালিত-পালিত কৰা মানুহেই প্ৰকৃতিক কিদৰে স্বাৰ্থ পূৰণৰ লালসাত ক্ষতি কৰিবলৈকো কুণ্ঠাবোধ নকৰে, তাৰ অকপট স্বীকাৰোক্তি তেওঁৰ 'কৃপন' শীৰ্ষক কবিতাটোত দেখা যায় -

'তুমি মোক ক্ষম কৰা হে পৃথিৱী
মই যে কৃপণ
তোমাৰ সকলো দান গ্ৰহণ কৰিও

তোমাক যে সঁচাকৈয়ে
ভাল পোৱা নাই,
আকুণ্ঠ স্বীকৃতি মোৰ ঃ
মই অকৃত :।'

অৱশ্যে প্রকৃতিৰ প্রতি মানুহৰ এনে অকৃত: আচৰণক স্বীকাৰ কৰিও কবিগৰাকীয়ে সিন্ধু মথনত নির্গত বিষ পান কৰি নিজে নীলকণ্ঠ হোৱাৰ দৰে প্রকৃতিৰ প্রতি দায়িত্ব আৰু দায়বদ্ধতাৰে আগুৱাই অহাৰ আশা কৰিছে -

' দুখৰ নিশাত আজি হে পৃথিৱী
কৰা মোক নীলকণ্ঠ
পান কৰোঁ এই বিষ
মাটি আৰু আকাশৰ চিৰন্তন সিন্ধু মথনৰ...।'

উল্লিখিত কবিতাকেইটাৰ উপৰি তেখেতৰ 'মাজত ফাগুন' কবিতাটোৰ মাজতো পুঁজিবাদী আধুনিক সমাজত প্রকৃতিৰ ওপৰত চলা অমানুষিক অত্যাচাৰৰ চিত্রখন প্রতিফলিত হোৱা দেখা যায় -"শিহু ঘঁৰিয়াল ক'তনো উজাব

'বিহুৰ বতৰা পাই
লুইতত শিহু নাই
বজাৰত হেনো যৌৱন দিয়া শিহুৰ তেলহে পায়।
কপিলি পাৰৰ ঘঁৰিয়ালবোৰ – সিহঁত গ'লেই
চকুপানীবোৰ দেশপ্রেমিকৰ চকুত থৈ।
ম'হৰ শিঙত মাৰিবলৈকে কঁকিলাৰ দাঁৰো নাই ।'

স্বার্থ সিদ্ধিৰ বাবেই কেনেদৰে প্রকৃতিৰ প্রতিটো সম্পদক ধ্বংসৰ মুখলৈ ঠেলি দিছে, তাৰ এখন জীয়া ছবি কবিতাটিত প্রতিফলিত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

অসমৰ কোনো কোনো অঞ্চলত বিহুৰ আগদিনা বাৰীত ছাগলী এটা এৰি দি সমূহীয়াকৈ চিকাৰ কৰাৰ দৰে খেদি খেদি বন্য উল্লাসেৰে তাক হত্যা কৰি তাৰ মঙহেৰে নিজৰ আসুৰিক ক্ষুধা নিবাৰণ কৰা মানুহৰ যি জান্তৱ ৰীতি, তেনে ৰীতিৰ বিৰুদ্ধে কবিৰ গভীৰ বিষাদগাৰ প্রকাশ পাইছে তেওঁৰ 'চিকাৰী মানুহ' শীর্ষক কবিতাটোত -

'মানুহ নামৰ জন্তুটোক এৰি দিওঁ আমাৰ এৰাবাৰীত
আৰু চিকাৰ কৰি আনো হোলোঙা টোকোনেৰে
আৰু ভোজ ৰান্ধি দিওঁ
আইতাই নিকাকৈ মচি থোৱা চোতালখনত
মানুহ নামৰ দেৱতাজনক সাক্ষীকৈ
মানুহেই দেৱ মানুহেই চাউল সেৱা
মানুহেই...মানুহেই... ।'

চিকাৰ কৰি অনা মানুহৰ মঙহ আকৌ মানুহ নামৰ দেৱতাজনলৈকে আগবঢ়োৱাৰ ধাৰণাটো আপাতত যুক্তিহীন যদিও তাৰ মাজেৰে প্রকৃতার্থত আধুনিকতাবাদী মানুহৰ ভোগবিলাসী মনোভাৱকহে কবিয়ে সমালোচনা কৰিছে।

পশু, পক্ষীৰ পৰা আৰম্ভ কৰি প্রতিটো জাগতিক বস্তুৰ সৃষ্টিৰ অন্তৰালত থকা মূল শক্তিয়েই হ'ল প্রকৃতি। প্রকৃতিৰ বুকুতেই মানৰ সভ্যতাৰো আৰম্ভণি। কিন্তু এই বিনন্দীয়া প্রকৃতিৰ বুকুতে লালিত-পালিত হোৱা মানুহে নিজৰ উচ্চাকাংক্ষা পূৰণ বাবে কিদৰে প্রকৃতিৰে ধ্বংস য: পাতি ক্রমশঃ নিজৰে বিনাশৰ অন্তিম প্রহৰৰ ক্ষণ গণিছে, সেই ভাবনা প্রকাশিত নৱকান্ত বৰুৱা আন এটা উল্লেখযোগ্য কবিতা হ'ল - 'সভ্যতাৰ মুখাগ্নি'। কিদৰে সমগ্র মহাজাগতিক সত্বাটো প্রকৃতিৰ মাজতে আৰম্ভ হৈছে, তাৰ ব্যাখ্যা কৰিবলৈ গৈ কবিতাটিত কবিয়ে কৈছে -

'পৃথিৱীৰ জৰায়ুত বন্দী সূর্যকণা
তৃণ হৈ গছ হৈ আহিল ওলাই
জীৱনৰ পতাকা উৰাই...
এই যে কিমান প্রাণী, পশু, পক্ষী, পতংগ, মকৰ
সকলোটি অৰণ্যৰ আশ্রিত অতিথি
মানুহৰো বিকাশৰ থল
এই বনতল'

প্রকৃতিৰ বুকুতে জন্মা সেই মানুহেই এদিন সভ্যতাৰ মৰিচিকা খেদি কিদৰে নিজৰেই কবৰ খান্দিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে, সেই কথা ক'বলৈ গৈ তেওঁ কৈছে -

'মানুহে আনিলে জুই
অগ্নিদেৱ...মানুহৰ নির্মিত অগ্নিদেৱ
সূর্যৰ পোহৰে হায় মানুহক নিদিলে সন্তোষ...
...সেই প্রেত অগ্নি মুক্ত কৰি
সভ্যতা নামেৰে এক মৰিচিকা খেদি
মানুহে: লাই দিলে জুই...
পাতালৰ অগ্নিশিখা আহি
পনীয়া সোণেৰে কৰি জীৱন বণিজ
গণিছেহি মানুহৰ সভ্যতাৰ অন্তিম প্রহৰ...'

মানুহৰ পৰিকল্পনাবিহীন কৰ্মকাণ্ড আৰু নিয়ন্ত্ৰণহীণ উচ্চাকাংক্ষাৰ ফলত ক্ৰমশঃ ধ্বংসৰ দিশে গতি কৰা মানৱ সভ্যতাক বচোৱাৰ ক্ষমতা থকা একমাত্ৰ শক্তি হিচাপে প্ৰকৃতিকে চিহ্নিত কৰি মাৰ্ক্সবাদী চেতনাৰে শেষত কবিয়ে প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি আহ্বান জনাই কৈছে -

'হে বৃক্ষ, হে তৰু-তৃণ
হে অৰণ্যানী, শ্যামল বনানী
মানুহক ৰক্ষা কৰা
আকৌ এবাৰ দিয়া তোমাৰ সেউজীয়া ছাঁ-ত
মানুহক স্বস্তিৰ আশ্ৰয়।'

আধুনিক মানুহৰ বহনক্ষম উন্নয়নৰ প্ৰতি বিৰাগ আৰু অদূৰদৰ্শী চিন্তাধাৰাৰ ফলত ক্ষয়িষ্ণু প্ৰকৃতিৰ বাস্তৱ চিত্ৰ উত্থাপিত হোৱা নৱকান্ত বৰুৱাৰ আন এটি কবিতা হ'ল - 'ইয়াত নদী আছিল'। সভ্যতাৰ উন্নয়নৰ লগে লগে প্ৰকৃতিৰ ওপৰত পৰা অত্যধিক হেঁচাই কিদৰে পৃথিৱীখনক ক্ৰমশঃ মৃত্যুৰ মুখলৈ ঠেলি দিছে, তাৰ বৰ্ণনা দিবলৈ গৈ কবিয়ে কৈছে -

'কিন্তু মৰুভূমি আহে,
লাহে লাহে মাহে মাহে বছৰে বছৰে
আঁহতৰ খোৰোঙত এপাহি কপৌ ফুল সোনকালে সৰে
গোপন ব্যাধিৰ দৰে লাহে লাহে মচি নিয়ে
প্ৰাণৰ যিমান ৰং, সেউজী সোণালী
আঁকি দিয়ে তামৰঙী এখন আকাশ আৰু
ফুটছাঁই বৰণৰ এখন পৃথিৱী।'

অৰণ্যৰ সেউজীয়া আৱৰণ গুচাই কংক্ৰীতৰ জংঘল গঢ়া আধুনিক মানুহৰ মহানাগৰীক জীৱনৰ অন্তঃসাৰশূন্যতাৰ বাস্তৱ চিত্ৰ নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাৰ মুখ্য উপজীব্য। এনে চেতনা প্ৰকাশিত এটি কবিতা হ'ল - 'হে অৰণ্য, হে মহানগৰ'।

ক্ৰমশঃ প্ৰকৃতিবিমুখ হৈ পৰা যান্ত্ৰিক সমাজখনত উন্নতিৰ মৰিচিকা খেদি মানুহে কিদৰে নিজ হাতে গঢ় দিয়া সভ্যতাৰ জুইকুৰাৰে নিজৰে মুখাগ্নি কৰিবলৈ আগবাঢ়িছে, তাৰ বাস্তৱ উপলব্ধি কবিতাটিৰ মাজ দেখা যায় -

'কাৰ্ফুৰ সময় হ'ল।
সূৰ্যস্নাতা নগৰীৰ আঁচলৰ শেষ ৰশ্মিকণো
শুহি ল'লে ৰাতিৰ আকাশে ;
নিস্তব্ধ মৰণ নামে। নগৰীৰ ধমনীত কৰোঁ অনুভৱ
কাজিৰঙা ডবকাৰ আৰণ্যক অপস্মাৰ
সৰীসৃপ-ক্ৰুৰ মৃত্যু...সৰ্পিল জীৱন;'

প্ৰকৃতি বৰ্জিত এখন সমাজত প্ৰতি পদে পদে অনাকাঙ্খিত ভয় আৰু উৎকণ্ঠাৰ মাজত জীয়াই থকাৰ বাবে মানুহৰ যি দূৰন্ত সংগ্ৰাম, তাৰ চিত্ৰখনো কবিতাটিৰ মাজত পৰিলক্ষিত হৈছে -

টেটুচেপা ট্ৰেফিকৰ দূৰৰ স্পন্দনে
ভয় আৰু আশ্বাসৰ জটিল উৎকণ্ঠা আনে;
(অৰণ্যত চকু ;লে বাঘ আৰু মেচেকাৰ)
জীৱন জীয়াই থাকে। তথাপি জীয়াই থাকে।
আৰু থাকে জীৱিকাৰ গলিৰ সাঁথৰ
অমৃতৰ পুত্ৰ আমি
মৃত্যু-স্নাতা হে মহানগৰ।'

কবিতাটিৰ শেষৰ ফালে উত্থাপিত হোৱা 'অমৃতৰ পুত্ৰ আমি' বাক্যশাৰীৰ মাজেৰে তথাকথিত আধুনিকতাৰ প্ৰতি কবিৰ মনত সঞ্চিত গভীৰ শ্লেষ প্ৰকাশিত হৈছে।

এনেদৰেই নৱকান্ত বৰুৱাৰ পৰিৱেশ সচেতনতামূলক বিভিন্ন কবিতাসমূহৰ মাজত পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদী চিন্তাধাৰাৰ প্ৰতিফলন দেখা যায়।

২.০০ উপসংহাৰ ঃ

ৰোমাণ্টিক, প্ৰগতিবাদ আৰু আধুনিকতাৰ যুগসন্ধিৰ কবি হিচাপে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কাব্যচেতনা একক আৰু অনন্য। এগৰাকী সচেতন কবি হিচাপে বৰুৱাৰ কবিতাৰ মাজত এফালে যদি প্ৰকাশিত হৈছে আধুনিকতাবাদী প্ৰগতিশীল চেতনা, আনফালে আকৌ প্ৰতিভাত হৈছে আধুনিকতাই মানৱ সমাজৰ লগতে প্ৰকৃতিজগতলৈ কঢ়িয়াই অনা সীমাহীন সমস্যাৰ ছবি। তদুপৰি আধুনিকতাবাদী চেতনাৰে উদ্বুদ্ধ কবিগৰাকীৰ কবিতাসমূহৰ মাজত প্ৰকাশ পাইছে পৰিৱেশ নাৰীবাদ, পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদৰ দৰে উত্তৰ-আধুনিক চিন্তাধাৰাৰ প্ৰতিচ্ছবি।

অৱশ্যে এটা কথা উল্লেখযোগ্য যে, নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত পৰিৱেশ নাৰীবাদ, পৰিৱেশ মাৰ্ক্সবাদৰ দৰে উত্তৰ-আধুনিক চিন্তাধাৰাৰ প্ৰকাশ লক্ষ্য কৰিলেও এনে চিন্তাধাৰা সাহিত্যৰ তত্ত্ব হিচাপে কবিগৰাকীৰ কৌশলপূৰ্ণ আৰু উদ্দেশ্যপ্ৰণোদিত প্ৰয়োগ বুলি দাবী কৰিব নোৱাৰি। অৱশ্যে, বিশ্বসাহিত্যৰ বিভিন্ন ধাৰাৰ সৈতে পৰিচয় থকাৰ ফলত তেওঁৰ কাব্যধাৰাত এনে চেতনা গঢ় লোৱাটো একো অস্বাভাৰিক নহয়। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী

অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃ

কলিতা, ৰঞ্জন(সম্পা.), গৱেষকৰ হাত পুথি, বান্ধৱ প্ৰকাশ, ২০১৪, মুদ্ৰিত।

বৰা, দিলিপ, গৱেষণা পদ্ধতি বিতৰ্ক আৰু সিদ্ধান্ত, ৰেখা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০১৭, মুদ্ৰিত।

বৰুৱা, উৎপলা আৰু উদয়ন হাজৰিকা(সম্পা.), নৱকান্ত বৰুৱাৰ গান আৰু কবিতা সমগ্ৰ, ভৱানী প্ৰিণ্ট এণ্ড পাব্লিকেশ্যনচ্, গুৱাহাটী, ২০১১, মুদ্ৰিত।

বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ, জীবনানন্দ দাশ আৰু নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা, কিৰণ প্ৰকাশন, ধেমাজী, ২০০৭, মুদ্ৰিত।

শইকীয়া, নগেন, গৱেষণা পদ্ধতি পৰিচয়, কৌস্তুভ প্ৰকাশন, ডিব্ৰুগড়, ২০১৮, মুদ্ৰিত।

ইংৰাজী গ্ৰন্থ ঃ

Adamson, Join (àßd.), The àßnvironmental Justice Reader Ê. Politics, Poetics and Pedagogy, Tucson Ê. U of Arizona P, 2002 . Printed.

Ahuja, Ram, Research methods, Rawat publications, New Delhi, 2017, Printed .

Anderson, Chris and Lex Runiciman (àßd.), A Forest of voices Ê. Reading and Writing the àßnviroment, Mayfield pub Co,1995, Printed.

Barry, Peter, Beginning Theory Ê. An Introduction to Literery and Cultural Theory,

Manchester UP,2002. Printed

Dass, Veena Noble, Feminism & literature, prestige books, New Delhi, 2009, Printed

Joseph Annamma, Feminism & the Modern American poetry, prestige books, New Delhi, 1996, Printed.

Kothari, C.R. & Gaurav Garg, Research Methodology : Methods and Techniques,

New Age International (P) Limited, London, 2020. Printed

Pandey, p. & Pandey, M.M., Research Methodology : Tools & techniques, Bridge, 2009, printed.

Pathak, R.S.(àßdt.), Indian Response to literary theories (vol-1&2), Creative Books, New Delhi, 1996, printed.

Rivkin, Julie & Michael Ryan, Literary theory : An Anthology, Blackwell publishers, USA, Reprinted, 2022, printed.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

স্থাননাম আৰু প্ৰব্ৰজন
(নলবাৰী জিলাৰ স্থাননামৰ বিশেষ উল্লিখন সহ)

ভাস্কৰজ্যোতি ডেকা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৮৬৩৮৮৯১৬৯৩,
bhaskarjdeka88@gmail.com

০.০০ সাৰাংশ ঃ

প্ৰাচীন কালৰ পৰাই মানুহে এঠাইৰ পৰা আন এঠাইলৈ নিজৰ ঠিকনা পৰিবৰ্তন কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। প্ৰব্ৰজন শব্দটোৱে আহাৰ সংগ্ৰহ আৰু জীৱিকাৰ্থে বাসস্থান সলোৱা কাৰ্যক বুজায়। প্ৰব্ৰজন দুই ধৰণৰ - অন্তৰ্দেশীয় আৰু আন্তঃ দেশীয়। আকৌ স্থায়িত্বৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি ইয়াক অস্থায়ী আৰু স্থায়ী দুটা ভাগত ভগাব পাৰি।

আকৌ স্থাননাম অধ্যয়নৰ জৰিয়তে আমি স্থাননামৰ উৎপত্তি আৰু স্বৰূপৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিব পাৰোঁ। স্থাননামৰ উৎপত্তিৰ লগত বিভিন্ন সাংস্কৃতিক, সামাজিক, ঐতিহাসিক, নৃ-তাত্ত্বিক, ভৌগোলিক, ভাষিক দিশ জড়িত হৈ থকা দেখিবলৈ পোৱা যায়। স্থাননাম আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াত বিভিন্ন কাৰকে ক্ৰিয়া কৰে, তাৰ ভিতৰত প্ৰব্ৰজন অন্যতম। অসমীয়া স্থাননামত বিভিন্ন কাৰকে ক্ৰিয়া কৰে, তাৰ ভিতৰত প্ৰব্ৰজন অন্যতম। অসমীয়া স্থাননামত বিভিন্ন স্থানত সময়ত হোৱা প্ৰব্ৰজনে বিশেষ স্থান দখল কৰি আহিছে। নলবাৰী জিলাৰ স্থাননামৰ ক্ষেত্ৰতো এয়া ব্যতিক্ৰম নহয়। চামে-চামে হোৱা দলবদ্ধ প্ৰব্ৰজনৰ বাবে বিভিন্ন স্থাননাম আহৰিত হৈছিল। এনে প্ৰব্ৰজন মূলতঃ আছিল স্থায়ী অন্তৰ্দেশীয় প্ৰব্ৰজন। খেতিৰ বাবে নতুন স্থানৰ সন্ধান আছিল এনে প্ৰব্ৰজনৰ মূল কাৰণ। আকৌ ৰাজনৈতিক কাৰণতো এনে প্ৰব্ৰজন হোৱাৰ প্ৰমাণো উলাই পৰা বিধৰ নহয়। আনহাতে ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক উৎপীড়নৰ বাবে হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ বাবে আহৰণ হোৱা স্থাননাম তেনেই সীমিত। প্ৰব্ৰজনৰ বাবে আহৰণ হোৱা স্থাননামৰ গঠন অধ্যয়ন কৰিলে দেখা যায় যে পূৰ্বৰ স্থাননাম সলনি নকৰাকৈ বা সামান্য কৰি গঠন হোৱা স্থাননাম সৰহ পৰিমানে দেখিবলৈ পোৱা যায়।

সূচক শব্দ ঃ

স্থাননাম, প্ৰব্ৰজন, কৃষিগত কাৰণ, ৰাজনৈতিক কাৰণ, নলবাৰী জিলা।

১.০০ অৱতৰণিকা ঃ

নামতত্ত্বৰ অন্তৰ্গত বিষয়বোৰৰ ভিতৰত স্থাননামতত্ত্বই এক বিশেষ স্থান দখল কৰি আহিছে। স্থাননাম তত্ত্ব (Toponymy) নামতত্ত্বৰ এটা প্ৰধান

শাখা স্থাননামৰ স্বৰূপ নির্ণয় য'ত অধ্যয়নৰ মূল বিচার্য বিষয় হিচাপে গ্রহণ কৰা হয়। "স্থাননামৰ লগত জড়িত সাংস্কৃতিক, ভৌগোলিক, নৃগোষ্ঠীয়, ঐতিহাসিক আৰু অর্থনৈতিক দিশ স্থাননামত্বই বিজ্ঞানসম্মতভাৱে উন্মোচন কৰে। স্থাননামৰ পৰিবর্তন আৰু পুৱণি নামৰ বিশ্লেষণো স্থান নামতত্ত্বই নিজৰ আওতালৈ আনে"। (ফুকন ৯৩) মুঠৰ ওপৰত স্থান নামতত্ত্ব হৈছে এনে এটা বিষয় যিয়ে স্থাননামৰ লগত জড়িত বিভিন্ন বিভাগ বা বিষয়ৰ আন্তঃ সম্পর্কক পোহৰলৈ আনে।

স্থাননাম সৃষ্টি এটা জটিল বহুমাত্রিক প্রক্রিয়া হোৱা হেতুকে এই বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্রত বিভিন্ন উপাদানৰ বিষয়ে সন্ধান কৰিব লগা হয়। স্থাননামৰ নামকৰণৰ বাবে প্রাচীন কালৰ পৰাই কিছুমান বিশেষ উপাদানক গুৰুত্ব প্রদান কৰা হৈ আহিছে। তাৰ ভিতৰত ভূ-প্রাকৃতিক অৱস্থিতি, ভূ-অৱয়ৱৰ পৰা আহৰিত স্থাননাম আদি ভৌগোলিক উপাদানৰ লগতে ঐতিহাসিক ঘটনাৰ লগত জড়িত স্থাননাম, সাধাৰণ ঘটনাৰ আলমত আহৰিত স্থাননাম আৰু বিভিন্ন সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক উপাদানেৰে গঠিত স্থাননাম আহৰণৰ ক্ষেত্রতো এই কাৰকবোৰৰ প্রভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক কাৰকবোৰ বিশ্লেষণ কৰিলে বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ নামৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ব্যক্তিনামৰ পৰা আহৰিত স্থাননামলৈ এটা বিৰাট পৰিসৰ লক্ষ্য কৰিব পৰা যায়। আকৌ সমাজত প্রচলিত বিভিন্ন কিংবদন্তী বা লোকবিশ্বাস, বিভিন্ন বৃত্তিৰ পৰা আহৰণ কৰা স্থাননাম, ধর্মীয় অনুষ্ঠান আদিৰ পৰা লাভ কৰা স্থাননাম আদিয়ে এই প্রক্রিয়াটোৰ বিশেষ ভূমিকা পালন কৰে। এইদৰে বিভিন্ন সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক কাৰকে স্থাননাম উৎপত্তিত বিশেষ অৰিহণা যোগোৱা পৰিলক্ষিত হয়। স্থাননাম সৃষ্টি প্রক্রিয়াত প্রভূত অৰিহণা যোগোৱা এটা সাংস্কৃতিক আৰু সামাজিক কাৰক হৈছে প্রব্রজন। প্রব্রজনৰ ইতিহাস ধৰি ৰখা বিভিন্ন স্থাননাম অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত দেখিবলৈ পোৱা যায়। নলবাৰী জিলাৰ প্রায় প্রতিটো অংশতে এনে স্থাননাম কম-বেছি পৰিমানে পৰিলক্ষিত হৈছে। এনে স্থাননামবোৰৰ প্রণালীবদ্ধ অধ্যয়নৰ যোগেদি বিভিন্ন সময়ত ঘটা প্রব্রজনৰ বিষয়ে আভাষ লৈ ইয়াৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ভাষাগত তাৎপর্যক বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰিব পাৰি।

০২.০০ প্রব্রজনৰ সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক তাৎপর্য ঃ

মানুহে নিজৰ জীৱন আৰু কর্মৰ বাবে এঠাইৰ পৰা আন এঠাইলৈ স্থান পৰিবর্তন কৰাকে প্রব্রজন বুলি কোৱা হয়। প্রব্রজন মূলতঃ দুই প্রকাৰৰ - আভ্যন্তৰীণ প্রব্রজন (Internal migration) আৰু বহিঃ প্রব্রজন (àßxternal migration)। আভ্যন্তৰীণ প্রব্রজনে কোনো এখন ৰাজ্য বা দেশৰ ভিতৰতে মানুহে এঠাইৰ পৰা আন এঠাইলৈ নিজৰ স্থান সলনি কৰাক বুজায়। আনহাতে বহিঃ প্রব্রজনে কোনো এখন ৰাজ্য বা দেশৰ পৰা আন এখন ৰাজ্য বা দেশলৈ হোৱা মানুহৰ বহিঃ গমনক সূচায়। মানুহে এঠাইৰ পৰা আন এঠাইলৈ নিজৰ স্থান সলনি কৰাৰ আঁৰত কিছুমান কাৰকে ক্রিয়া কৰে। এনে কাৰকবোৰৰ ভিতৰত জন বিস্ফোৰণ, খাদ্যৰ অভাৱ, কর্মসংস্থানৰ অভাৱ, জলবায়ুৰ পৰিবর্তন, নিৰাপত্তাহীনতা আদি অন্যতম। আকৌ স্থায়িত্বৰ ওপৰত নির্ভৰ কৰি ইয়াক স্থায়ী প্রব্রজন আৰু অস্থায়ী প্রব্রজন দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পৰা যায়। স্থায়ী প্রব্রজনত প্রব্রজিত মানুহে এঠাইত স্থায়ী ভাৱে থাকি যায় আৰু অস্থায়ী প্রব্রজনত মানুহে মূলতঃ খাদ্য, সংস্থাপন আৰু নিৰাপত্তাৰ স্বার্থত অস্থায়ীভাৱে এঠাইৰ পৰা আন এঠাইলৈ প্রব্রজন কৰে।

প্রব্রজন হৈছে আদিম কালৰ পৰা মানুহে নিজক সুৰক্ষা দিবৰ বাবে কৰা এক অভিযোজন বুলি সামাজবিজ্ঞানীসকলে আখ্যা দিছে। অন্যান্য জীৱ-জন্তুৰ দৰে মানুহেও আদিম কালত খাদ্য আৰু সুৰক্ষাৰ বাৱে ঠাই সলনি কৰি থকা এটা স্বভাৱগত প্রক্রিয়া ৰূপে গ্রহণ কৰি আহিছিল। আধুনিক সামাজিক ধাৰণাৰ বিকাশ আৰু সলনিৰ লগে-লগে প্রব্রজনেও ৰূপ সলাব ধৰিলে। আদিম অৱস্থাত মানুহে দলবদ্ধ হৈ প্রব্রজন কৰা ঘটনা বর্তমান সময়ত লাহে-লাহে হ্রাস পাব ধৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

পূর্বৰ সময়ত মানুহে দলবদ্ধ ভাৱে কোনো নতুন ঠাই মুকলি কৰি সেই ঠাইত কৃষি বা পশুপালনৰ দৰে বৃত্তিৰে নতুন ঠাইত স্থায়ী বসতিৰ সূচনা কৰিছিল। সাম্প্রতিক প্রব্রজন মূলতঃ জীৱিকাভিত্তিক নগৰীয়া প্রব্রজন। গাই-গুটীয়াভাৱে মানুহে বর্তমান সময়ত দেশ বা বিদেশত জীৱিকাৰ সন্ধানত প্রব্রজন কৰে।

প্রব্রজিত লোকৰ দ্বাৰা গঠিত সমাজখনত সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক দিশত নানা পৰিবর্তন সূচনা হয়। সেই লোকসকলে এটা নতুন সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক

পৰিৱেশৰ মুখা-মুখি হৈ সেই নতুন পৰিৱেশটোৰ লগত নিজকে সমাযোজিত কৰি এটা মিশ্রিত সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক মূল্যবোধ সম্পন্ন পৰিৱেশৰ সৃষ্টি কৰে। সেই পৰিবর্তিত সমাজখনত দেখিবলৈ পোৱা নতুন সামাজিক আৰু বস্তুগত মূল্যবোধ, কৌশল, অভিজ্ঞতা, জ্ঞান আদিক তেওঁলোকে পোনতে কঠিন বস্তু বুলি ভাবে যদিও পিছলৈ তাৰ লগত মিলি যোৱাৰ প্রয়াস কৰে। এনে প্রয়াসৰ লগে লগে তেনে লোকসকলে পূর্বৰ স্থানৰ লগত জড়িত সামাজিক মূল্যবোধ আৰু সাংস্কৃতিক বাতাবৰণক ধৰি ৰাখি নিজস্ব নৃ-গোষ্ঠীয় বা সামাজিক ঐতিহ্যক নিজৰ মাজতেই জীয়াই ৰখাৰ প্রয়াস কৰা দেখা যায়; যাৰ জৰিয়তে প্রব্রজিতসকলে সেই পৰিবর্তিত প্রেক্ষাপটত নিজৰ পূর্বৰ চিনাকি ৰাখিবলৈ সক্ষম হয়।

৩.০০ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

বর্তমানৰ অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল -

(ক) স্থান নাম সৃষ্টিৰ বিভিন্ন কাৰকসমূহৰ ভিতৰত প্রব্রজনৰ ভূমিকা সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰা বর্তমানৰ অধ্যয়নৰ থৈ যোৱা মুখ্য উদ্দেশ্য।

(খ) আমাৰ অধ্যয়নত স্থাননামৰ জৰিয়তে প্রব্রজনে থৈ যোৱা চিহ্নৰ আলমত প্রব্রজনৰ স্থায়িত্ব আৰু কাৰণ সম্বন্ধে আলোকপাত কৰা আন এটা উদ্দেশ্য।

4.00 অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

আমাৰ বর্তমান অধ্যয়নত অসমৰ নলবাৰী জিলাৰ বিভিন্ন স্থাননামৰ উৎপত্তিগত কাৰণ বিশ্লেষণ কৰি তাৰ মাজত নিহিত হৈ থকা প্রব্রজন বিষয়ক বিভিন্ন কাৰকবোৰ ফঁহিয়াই চাই প্রব্রজনৰ স্বৰূপ উদ্ভাসিত কৰাৰ লগতে স্থান নাম সৃষ্টিৰ ঐতিহ্যগত ধাৰণাক বিচাৰ-বিশ্লেষণৰ আওতালৈ অনা হৈছে। এনে কাৰণত সৃষ্টি হোৱা স্থাননামবোৰৰ ভাষাগত দিশৰ বিষয়ে সামান্যৰূপে আলোকপাত কৰাৰ প্রয়াস বর্তমানৰ গৱেষণাৰ আন এক বিচার্য বিষয়।

০৫.০০ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা কর্ম চলাই নিবলৈ সমীক্ষাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি মুখ্যতঃ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

০৬.০০ তথ্যৰ উৎস ঃ

আমাৰ সাম্প্রতিক গৱেষণাৰ বিষয়টো সম্পূর্ণ ৰূপে নলবাৰী জিলাৰ স্থাননাম উৎপত্তিৰ লগত জড়িত। ই কেবল প্রব্রজন কাৰকৰ লগত সম্পর্কিত হোৱা বাবে অধ্যয়নৰ সময়চোৱাত জিলাখনৰ বিভিন্ন ঠাইত সমীক্ষাত্মক পদ্ধতিৰ দ্বাৰা প্রাথমিক তথ্যসমূহ আহৰণ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে। ইয়াৰ উপৰি বিভিন্ন কিতাপ-পত্র, আলোচনী আদিত পোৱা গৌন তথ্যসমূহ সংগ্রহ কৰি অধ্যয়ন আগুৱাই নিয়া হৈছে।

০৭.০০ নলবাৰী জিলাৰ স্থাননাম উৎপত্তিত প্রব্রজনৰ ভূমিকা ঃ

০৭.০১ নলবাৰী জিলাত হোৱা প্রব্রজন ঃ

প্রব্রজন মানুহৰ আদিম কালৰ পৰা চলি অহা সহজাত প্রক্রিয়া। এই কাৰণতে পৃথিৱীৰ সকলো ঠাইতে প্রব্রজনৰ সুস্পষ্ট ইতিহাস দেখিবলৈ পোৱা যায়। অসমৰ নলবাৰী জিলাতো বিভিন্ন সময়ত হোৱা প্রব্রজনৰ বিষয়ে কিছু কথা জনশ্রুতি আৰু পর্যবেক্ষণৰ দ্বাৰা জানিব পাৰি। আন ঠাইৰ দৰে নলবাৰী জিলাৰ প্রব্রজনৰ লিখিত ইতিহাস পোৱাটো দুৰূহ কথা। বহু বছৰ আগৰে পৰা থকা জিলাখনৰ আশে-পাশেৰ ঠাইৰ পৰা বহু বছৰ আগৰ পৰাই সময়ে সময়ে বিভিন্ন কাৰণত চেগা-চেৰোকাকৈ প্রব্রজন হোৱাৰ জনশ্রুতি আছে। আকৌ জিলাখনৰ মধ্যভাগত প্রায় কুৰি শতিকাৰ আৰম্ভণি মানৰ পৰা জনসংখ্যা বৃদ্ধি পাবলৈ ধৰাত উত্তৰফালৰ খালী হাবি-জংঘলেৰে আবৃত্ত ঠাইবোৰ মুকলি কৰি লৈ তেনে ঠাইত প্রথমে পাম পাতি পিছলৈ স্থায়ীভাৱে বসতি কৰাৰ তথ্য পোৱা যায়। ঠিক তেনেদৰে দক্ষিণ প্রান্তৰ বৰক্ষেত্রী অঞ্চলৰ বিভিন্ন ঠাইলৈ মধ্য অঞ্চলৰ মানুহে পাম ধৰি মূলতঃ অস্থায়ী প্রব্রজন কৰা কথা জানিব পাৰি। আকৌ, স্বাধীনতাৰ আগে-পাছে পূর্ববংগৰ বিভিন্ন স্থানৰ পৰা অহা প্রব্রজনকাৰীয়ে জিলাখনৰ দক্ষিণ প্রান্তৰ জন-গাঁথনিক পৰিবর্তিত কৰিছে। বিভিন্ন সময়ত হোৱা এনে প্রব্রজনবোৰ মূলতঃ দলবদ্ধ আছিল বুলি জানিব পৰা গৈছে।

০৭.০২ নলবাৰী জিলাৰ স্থান নাম সৃষ্টিত প্রব্রজনৰ ভূমিকা ঃ

প্রব্রজিত লোকসকলে নতুনকৈ বসতি কৰা স্থানসমূহতে নিজৰ পূর্বৰ স্থানৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যক পৰিবর্তিত সমাজ আৰু সাংস্কৃতিক বাতাবৰণৰ মাজতো ৰক্ষা কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে। তেনে এক ঐতিহ্য ৰক্ষাৰ চেষ্টা হ'ল পূর্বৰ স্থান নামৰ সংৰক্ষণ। নলবাৰী জিলাৰ মাজলৈ বিভিন্ন সময়ৰ আভ্যন্তৰীণভাবে প্রব্রজিত ব্যক্তিসকলে নিজৰ পূর্বৰ স্থাননাম হুবহুৰূপে আৰু সামান্য সলনিৰ দ্বাৰা সংৰক্ষণ কৰিবলৈ প্রসায়

কৰা পৰিলক্ষিত হয়। নলবাৰী জিলাৰ প্ৰব্ৰজনৰ লগত জড়িত স্থাননাম আহৰণৰ প্ৰক্ৰিয়াক দেখিবলৈ পোৱা তিনিটা পদ্ধতিৰ দ্বাৰা উপস্থাপন কৰিব পাৰি।

(ক) পূৰ্বৰ স্থাননাম সলনি নকৰাকৈ নতুন বসতিস্থানৰ নামকৰণ ঃ

প্ৰায় কুৰিশতিকাৰ আদিভাগৰ প্ৰব্ৰজনবোৰ মূলতঃ দলবদ্ধ আছিল। তেওলোকে উৎকৃষ্ট কৃষিৰ আৰু বসবাসৰ বাবে খালী ঠাইৰ সন্ধান কৰিছিল। এই ঠাইবোৰত পূৰ্বৰে পৰা কোনো জনবসতি নথকাৰ বাবে কোনো নিৰ্দিষ্ট নাম নাছিল। পিছলৈ বসতি স্থাপন হ'বলৈ ধৰাত ঠাইখনৰ নামকৰণ অপৰিহাৰ্য হৈ পৰে। নামাকৰণ কৰোতে পোনতে ওচৰ চুবুৰীয়াসকলে তেওঁলোকৰ পূৰ্বৰ বসতি স্থানক নিৰ্দেশ কৰিছিল। আৰু এইদৰে লাহে-লাহে পূৰ্বৰ বসতি স্থানৰ কোনো সাল-সলনি নকৰাকৈ পিছৰ বসতি স্থানেও মান্যতা পোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। নলবাৰী জিলাত এনে ঠাই যথেষ্ট পৰিমাণে পোৱা যায়। নলবাৰী জিলাৰ মধ্যভাগৰ অৰৰা, অময়াপুৰ, মাধাপুৰ, সোনকুৰিহা, বৰগাছা, বনগাঁও আদি ঠাইৰ পৰা মানুহে দলপাতি জিলাখনৰ উত্তৰপ্ৰান্তত স্থায়ীভাৱে বসতি কৰিবলৈ লোৱা বাবে সেই ঠাইবোৰক পূৰ্বৰ নাম সলনি নকৰাকৈ ব্যৱহাৰ কৰি মান্যতা প্ৰদান কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। আকৌ, বৰপেটা জিলাৰ ভুনকুছি আৰু কামৰূপ জিলাৰ আলগাদিয়াৰ পৰা একোদলকৈ মানুহ আহি গুৱাকুছি অঞ্চলত চুবুৰী পাতি বস-বাস কৰিবলৈ লোৱা বাবে সেই চুবুৰী দুটাক পূৰ্বৰ নামেৰে নামকৰণ কৰা বুলি জানিব পাৰি। আনহাতে সত্তৰৰ দশকত গড়াখহনীয়াত ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত জাহ যোৱা লাউপাৰা গাঁৱৰ মানুহবোৰে সৰু সৰু গোটত বিভক্ত হৈ পু�ৰাণ আখিয়া, কাল্‌দি, লোহাৰকাথা আদি গাঁৱত চুবুৰী পাতি বাস কৰিছিল আৰু সেই চুবুৰীবোৰক লাউপাৰা নামেৰে নামকৰণ কৰিছিল। তেনে আন কেইটামান নাম হ'ল- ম'হবিয়নী গাঁৱৰ ঘোলোৰপাৰা চুবুৰী, মাজু সিৰাল গাঁৱৰ সাগৰকুছি চুবুৰী, টিহু অঞ্চলৰ সন্ধেলী গাঁও অন্যতম।

(খ) পূৰ্বৰ স্থাননামৰ সামান্য সাল-সলনিৰ দ্বাৰা আহৰিত স্থান নাম ঃ

প্ৰব্ৰজনৰ পিছৰ সময়চোৱাত কেতিয়াবা গাঁৱৰ নাম আৰু সাধাৰণতে চুবুৰীৰ নামকৰণৰ বাবে পূৰ্বৰ স্থাননামক সামান্য ৰূপত পৰিবৰ্তন কৰি নতুন স্থাননামক সূচিত কৰাৰ প্ৰৱণতা জিলাখনৰ প্ৰায় প্ৰতিটো অংশতে দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণ স্বৰূপে দৰঙ্গীপাৰা নামটোৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কীয় মতক উল্লেখ কৰিব পাৰি -

"বৰ্তমানৰ দৰং জিলাৰ পৰা কেইঘৰমান মানুহ আহি এই অঞ্চলত বসতি স্থাপন কৰিছিল। .... দৰঙৰ লোকসকলে বাস কৰাৰ পিছত আন ঠাইৰ মানুহো এঘৰ-দুঘৰকৈ আহি ইয়াত বসতি স্থাপন কৰে। এই দৰঙীসকলৰ পৰাই গাঁওখনৰ নাম দৰঙীপাৰা হয়।" (ডেকা ৯১) ঠিক তেনেদৰে বুদ্ৰুকুছি গাঁৱৰ বেলশৰীয়াপাৰা মৰোৱা গাঁৱৰ হাজৰা চুবুৰী, কৰিয়া গাঁৱৰ কালেগাপাৰা, ম'হবিয়নী গাঁৱৰ জালকুছীয়া চুবুৰী, বৰ্ণেলা ঢাপ, নিজবাঁহজানী গাঁৱৰ হাজালপাৰ, বংশৰীয়াপাৰা চুবুৰী, মৈৰাদাঙ্গা গাঁৱৰ খানাজেনীয়া চুবুৰী, চুৰচুৰীৰ বজিলাপাৰা, দৌলাশালাৰ আমৃখোলি চুবুৰী, মথুৰাপুৰৰ হেলচাপাৰা, বৰাজোলৰ ধুৰকুছীয়া চুবুৰী, নমাঠিগাঁৱৰ চান্দকুছিয়া চুবুৰী আৰু বাঁহজানীয়া চুবুৰী অন্যতম। আকৌ, বৰক্ষেত্ৰী অঞ্চলৰ ৰামপুৰ গাঁৱৰ পৰা এটা দলগৈ ঘগ্ৰাপাৰৰ উত্তৰ দিশৰ অজাগড়া নামৰ বিলৰ পাৰত বসতি স্থাপন কৰিছিল আৰু দুয়োটা নামৰ সংযোগত গাঁওখনক ৰামপুৰ অজাগড়া হিচাপে নামকৰণ কৰা হয়।

(গ) প্ৰব্ৰজনৰ চিনস্বৰূপে অন্যান্য শব্দৰ দ্বাৰা স্থানৰ নামকৰণ ঃ

নামকৰণ প্ৰক্ৰিয়া এটা জটিল বহুমাত্ৰিক প্ৰক্ৰিয়া হোৱা হেতুকে নামকৰণ প্ৰক্ৰিয়াৰ আঁৰতো কিছুমান সত্য ঘটনা লুকাই থকা পৰিলক্ষিত হয়। প্ৰব্ৰজন বিষয়ক পৰিঘটনা আঁৰত থাকিও এনে নামকৰণ সম্ভৱপৰ কৰি তোলা দেখিবলৈ পোৱা যায়। নলবাৰী জিলাৰ স্থাননামৰ ক্ষেত্ৰত এনে প্ৰক্ৰিয়াৰ দ্বাৰা আহৰিত স্থাননাম একেবাৰে আঙুলিৰ মূৰত লিখিব পৰা বিধৰ।

এনে স্থাননামৰ ভিতৰত বানেকুছি অঞ্চলৰ ডাঙ্গুৰাপাৰা নামটো অন্যতম। পূৰ্বতে এই ঠাইখনিৰ বসতি সেৰেঙা হোৱা বাবে পানীগাঁও সন্ধেলি গাঁৱৰ কিছুমানুহে পোনতে পাম পাতি পিছলৈ স্থায়ী বসতি স্থাপন কৰিছিল। আৰম্ভণিৰে এই ঠাইখিনিৰ হাবি জংঘল কাটি মুকলি কৰি খেতি-বাতি কৰিবৰ উপযোগী কৰিবলৈ কিছুমান ডঙুৰা মানুহে কামত ধৰিছিল বাবে সেইসকলৰ নামেৰে ঠাইখিনিৰ নাম ডাঙ্গুৰাপাৰা ৰখা হৈছিল। তেনেদৰে, কামৰূপ জিলাৰ হাজো অঞ্চলৰ শনিয়াদী গাঁৱৰ পৰা গোষ্ঠীগত উৎপীড়নৰ

বলি হৈ একে সময়তে বহু মানুহ জাপে-জাপে আহি ঘগ্রাপাৰৰ পৰা ৫ কি.মি. উত্তৰৰ ঠাই এখনত বসতি স্থাপন কৰি গাঁও পতাৰ বাবে গাঁওখনৰ নাম জাপ-জাপকুছি ৰখা হয়। আকৌ পানীৰ প্ৰকোপ সহিব নোৱাৰি বাঁহজানী মৌজাৰ জাহা গাঁৱৰ নিকটবৰ্তী অঞ্চলৰ পৰা বহুতো মানুহ অন্যান্য স্থানলৈ স্থায়ী বসতিৰ বাবে স্থানান্তৰিত হৈ সেই এৰি যোৱা ঠাই খিনিক চেৰাবাৰী নামেৰে নামকৰণ কৰা হৈছিল। আকৌ, এই প্ৰসঙ্গত বৰক্ষেত্ৰী অঞ্চলৰ ন-পাৰাপাম নামটো উল্লেখযোগ্য। "আদিতে নখন গাঁওৰ মানুহ উক্ত চাপৰি খণ্ডলৈ গৈ অস্থায়ীভাৱে বসবাস কৰি পাম খাইছিল। সেয়ে গাঁওখনৰ নাম ন-পাৰাপাম হয়।" (ডেকা ৮৬) তেনেদৰে প্ৰব্ৰজনৰ লগত অপ্ৰত্যক্ষ ভাৱে জড়িত নলবাৰী জিলাৰ আন স্থান নাম কেইখনমানৰ ভিতৰত সন্ধা গাঁৱৰ ভূটীয়া চুবুৰী, দৌলাশালৰ এলটপাৰা, আমেৰিকাৰ চ'ক, খালিহাপাৰা আদি উল্লেখযোগ্য।

০৭.০৩ নলবাৰী জিলাৰ স্থাননামৰ লগত সংপৃক্ত প্ৰব্ৰজন সম্বন্ধীয় কাৰকসমূহ ঃ

নলবাৰী জিলাৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ স্থাননাম সৃষ্টিত প্ৰব্ৰজনৰ ভূমিকা লেখত লবলগীয়া। স্থাননামৰ লগত সংপৃক্ত হৈ থকা প্ৰব্ৰজনৰ কাৰণবোৰ ফঁহিয়াই চালে মূল কাৰণ হিচাপে খেতি-বাতিৰ বাবে নতুন স্থানৰ সন্ধানক উল্লেখ কৰিব পাৰি। জনবহুল অঞ্চলবোৰত খেতি কৰা মাটিৰ অভাৱত মানুহে পোনতে খালী হৈ থকা মাটি মোকলাই পাম পাতি পিছলৈ স্থায়ী বসতি স্থাপন কৰিবলৈ লৈছিল। স্থান নাম সৃষ্টিৰ আঁৰত লুকাই থকা প্ৰব্ৰজনৰ আন কাৰকবোৰ হ'ল গড়াখহনীয়া, বানপানী আদি প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগ, ৰাজনৈতিক উৎপীড়ন (বিশেষকৈ মানৰ অত্যাচাৰ) আদি উল্লেখযোগ্য। আকৌ সামাজিক গোষ্ঠীগত উৎপীড়নৰ ফলত হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ একেবাৰে সীমিত।

০৮.০০ সামৰণি ঃ

স্থাননাম সৃষ্টিত ক্ৰিয়া কৰা কাৰকসমূহৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰব্ৰজন বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। এঠাইৰ পৰা আন ঠাইলৈ মানুহৰ স্থায়ী প্ৰব্ৰজনৰ আধাৰত বিভিন্ন ঠাইৰ নামৰ উৎপত্তি হোৱা নলবাৰী জিলাৰ সকলো অঞ্চলতে দেখিবলৈ পোৱা যায়। আনহাতে নলবাৰী জিলাত আভ্যন্তৰীণ প্ৰব্ৰজন আৰু বহিঃ প্ৰব্ৰজন দুয়োটা প্ৰক্ৰিয়া দেখিবলৈ পোৱা যায় যদিও বহিঃ প্ৰব্ৰজনে মুখ্য স্থাননাম সৃষ্টিত অৰিহণা যোগোৱা পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। প্ৰব্ৰজনৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা স্থাননাম সাধাৰণতে পূৰ্বৰ স্থাননাম কোনো সাল-সলনি নকৰাকৈ বা সামান্য সাল-সলনিৰ দ্বাৰা সৃষ্টি কৰা সততে দৃষ্টি গোচৰ হয়। আনহাতে, অপ্ৰত্যক্ষ ভাৱে প্ৰব্ৰজনৰ লগত জড়িত আন শব্দৰ কিছুমানৰ দ্বাৰা ঠাই এখনৰ নামকৰণ কৰা প্ৰক্ৰিয়াৰ সংখ্যা একেবাৰে সীমিত। ❑

প্ৰসঙ্গ সূত্ৰ ঃ

ডেকা; পলাশ কুমাৰ। 'বৰক্ষেত্ৰীৰ ৰাজহ গাঁও সমূহৰ নামৰ উৎপত্তি'। বৰক্ষেত্ৰী দৰ্পণ। সম্পা.। যোগেন্দ্ৰ নাথ মেধি, পৰীক্ষিত বৈশ্য। মুকালমুৱাঃ বৰক্ষেত্ৰী মৌজা সন্মিলনী, ২০০৮। পৃ. ৮৬,৯১।

ফুকন, শৰৎ কুমাৰ। নামতত্ব। গুৱাহাটীঃ অসম পাবলিচিং. কোম্পানী, ২০১৫। পৃ.৯।

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অসমীয়া ঃ

কলিতা, কৰুণা কান্ত। চিন্তা কল্লোলিনী। প্ৰথম প্ৰকাশ। নলবাৰী ঃ নলবাৰী জিলা সাহিত্য সভা, ২০১০। মুদ্ৰিত।

কাকতি, বাণীকান্ত। অসমীয়া ভাষাৰ গঠন আৰু বিকাশ। বিশ্বেশ্বৰ হাজৰিকা। অনু.। প্ৰথম প্ৰকাশ। বৰপেটা ঃ গোবৰ্দ্ধন দাস, সাধাৰণ সম্পাদক, ড° বাণীকান্ত কাকতি জন্ম শতবাৰ্ষিকী উদ্‌যাপন সমিতি, ১৯৯৬। মুদ্ৰিত।

গোস্বামী, কিৰণ। দধি মথে গোৱলৰে জী। প্ৰথম সংস্কৰণ। কটৰা সত্ৰঃ ৰীতা গোস্বামী, ২০১৫। মুদ্ৰিত।

গোস্বামী; ভূবন চন্দ্ৰ। ঐতিহ্যমণ্ডিত খুদিয়া সত্ৰ। প্ৰথম প্ৰকাশ। খুদিয়া সত্ৰ, নলবাৰী ঃ ৰাজীব গোস্বামী আৰু খুদিয়া সত্ৰৰ পৰিয়ালবৰ্গ, ২০১১। মুদ্ৰিত।

চক্ৰৱৰ্ত্তী, মুকুল। লুপ্তপ্ৰায় কামৰূপী শব্দ ঃ উৎস আৰু প্ৰয়োগ। প্ৰথম তাঙৰণ। চামতাঃ নৱ বীণা প্ৰকাশ, ২০০৪। মুদ্ৰিত।

দেৱী, প্ৰণীতা। ভাষাবিজ্ঞানৰ জিলিকনি। দ্বিতীয় প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ প্ৰতিশ্ৰুতি প্ৰকাশন, ২০১৪। মুদ্ৰিত ।

নাজাৰী, ভবেন্দ্ৰ আৰু অন্যান্য। 'নৱ প্ৰজন্মৰ দৃষ্টিত সযামৌ গাঁওৰ অতীত আৰু বৰ্তমান'। অপ্ৰপ্ৰকাশিত প্ৰবন্ধ। হাতেলিখা।

দেৱ শৰ্মা, প্ৰফুল্ল চন্দ্ৰ। শিক্ষক আৰু শিক্ষা সেৱীলৈ সম্বৰ্দ্ধনা। বাহাৰঘাট, বাহাৰঘাট আঞ্চলিক সাহিত্য সভা, ২০০৯। মুদ্ৰিত।

ফুকন, শৰৎকুমাৰ। নামতত্ত্ব। প্ৰথম প্ৰকাশ। গুৱাহাটীঃ অসম পাবলিচিং কোম্পানী, 2015। মুদ্ৰিত।
বৰা, দীপাঞ্জলী। বুৰঞ্জীৰ বুকুত মুৰ গুঁজি অসমৰ ঠাইবোৰ। প্ৰথম প্ৰকাশ। যোৰহাট ঃ শব্দ, ২০১৭। মুদ্ৰিত।
মেধি, যোগেন্দ্ৰ নাথ আৰু পৰীক্ষিত বৈশ্য। সম্পা.। বৰক্ষেত্ৰী দৰ্পণ। প্ৰথম প্ৰকাশ। মুকালমুৱা ঃ বৰক্ষেত্ৰী মৌজা সন্মিলনী ২০০৮। মুদ্ৰিত।
শৰ্মা, বেনুধৰ। 'ঠাইৰ নামৰ মহিমা আৰু আঁতিগুৰি'। বেনুধৰ শৰ্মাৰ ৰচনাৱলী দ্বিতীয় খণ্ড। সম্পা. নগেন শইকীয়া। গুৱাহাটী ঃ অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১৪। মুদ্ৰিত।
হালৈ, প্ৰমোদ। পশ্চিম নলবাৰীৰ স্থানীয় উপভাষা। প্ৰথম প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০১৮। মুদ্ৰিত।
হুছেইন বৰুৱা, ৰফিউল। নলবাৰী জিলাৰ ঐতিহাসিক পৰিচয়। প্ৰথম প্ৰকাশ। নলবাৰী ঃ ৰফিউল হুছেইন বৰুৱা ২০১০। মুদ্ৰিত।

ইংৰাজী ঃ

Barua, B.K. A Cultural History of Assam. 5th àßdition. Guwahati : Bina Library, 2011. Printed.
Kakati, B.Assamese, its Formation and Development. Guwahati: Govt of Assam, 1941. web.
Mills, A.J.Moffcett. Report on the Provinces of Assam. 2nd àßdition. Guwahati: Publication Board of Assam, 1984. Printed.
Phukan, Sarat Kumar. Genesis of Ancient Topnym s of Central and Lower Assam. First àßdition. Guwahati; Assam Publication Board, 2012. Printed.
... 'Place names'. Geography of Assam. àßd. A.K. Bhagabati and others.
Third àßdition. New Delhi : Rajesh Publication, 2007. Printed.
... Place Names associated with Sankaradeva. First Publication, Guwahati: ABILAC, 2015 Printed.
... Surnames of Assam. First àßdition. Guwahati: Students' store, 2013. Printed.
... Toponymy of Assam. First àßdition. New Delhi: Omsons Publication, 2001. Printed.

বাংলা ঃ

সেন, সুকুমাৰ। বাংলা স্থাননাম। চতুৰ্থ মুদ্ৰণ। কলকাতাঃ আনন্দ পাব্লিছাৰছ লিমিটেড, অগ্ৰাহায়ণ ১৪২২। মুদ্ৰিত।

আলোচনী ঃ

বসুমতাৰী, অৰুন কুমাৰ। সম্পা.। আবেলি ৰং। নতুন দেহৰ জ্যেষ্ঠ নাগৰিক সমাজ, প্ৰস্তাৱন সংখ্যা, ২০১৮। মুদ্ৰিত।
বৈশ্য, হিতেশ আৰু নীলকমল বৈশ্য। সম্পা.। চেংনৈ। দ্বিতীয় বছৰ, অক্টোবৰ, ২০২০। মুদ্ৰিত।

সমল দাতাৰ তালিকা ঃ

ক্ৰ. নং.	নাম	লিংগ	বয়স	বৃত্তি	ঠিকনা
১.	ৰামমোহন মেধি	পু.	৭৩	খেতিয়ক	হিদিলাট্টাৰী
২.	মালাৰাম বড়ো	পু.	৭১	অৱসৰী শিক্ষক	মুগদি
৩.	লাৱণ্য কলিতা	পু.	৬০	অৱসৰী শিক্ষক	সন্ধা
৪.	বাণীকান্ত ভট্টাচার্য্য	পু.	৭২	অৱসৰী গ্ৰন্থাগাৰিক	গোৱাকুছি
৫.	প্ৰমোদ কুমাৰ তালুকদাৰ	পু.	৬৩	অৱসৰী শিক্ষক	বৰসৰকুছি
৬.	চন্দ্ৰ কলিতা	পু.	৮২	প্ৰাক্তন বিধায়ক, সমাজকৰ্মী	খাটিকুছি
৭.	মেদিনী বৰ্মন	পু.	৬৩	অৱসৰী শিক্ষয়িত্ৰী	খাটিকুছি
৮.	মহেন্দ্ৰ কলিতা	পু.	৮৫	খেতিয়ক, প্ৰাক্তন পঞ্চায়ত সভাপতি	অৰৰা (আল্লিয়া)
৯.	হৰেন্দ্ৰ নাৰায়ণদেৱ গোস্বামী	পু.	৯০	ফাৰ্মাছিষ্ট	চান্দকুছি
১০.	নগেন চন্দ্ৰ দাস	পু.	৬৯	অৱসৰী শিক্ষক	ৰামপুৰ অজাগড়া
১১.	হৰিণ চন্দ্ৰ দাস	পু.	৭০	অৱসৰী অধ্যক্ষ	ৰামপুৰ অজাগড়া
১২.	জগৎ গোস্বামী	পু.	৭১	ৰাজনৈতিক কৰ্মী	সন্ধেলী
১৩.	মহেন্দ্ৰ ডেকা	পু.	৮১	খেতিয়ক	নিজবাঁহজানী

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

কালিকাপুৰাণত প্ৰতিফলিত অসম ঃ এক আলোকপাত

অৰুণ শৰ্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, সংস্কৃত বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১ (অসম)
৯৪৩৫৫৪৪৭২৮
sarmaarun123@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ প্ৰাচীনতম ভাষা হ'ল সংস্কৃত। সংস্কৃতৰ পৰা উদ্ভৱ হৈছে ভাৰতৰ প্ৰায় সকলো প্ৰান্তীয় ভাষা। ভাৰতৰ বা কোনো নিৰ্দিষ্ট অঞ্চলৰ অতীত বিচাৰিবলৈ হ'লে ভাৰতৰ বা সেই অঞ্চলৰ লিখিত বুৰঞ্জীৰ পাত লুটিয়াব লাগিব। বুৰঞ্জীৰ তথ্যৰ বাবে ইতিহাসবিদসকলে অতীতৰ তাম্ৰলিপি, শিলালিপি, ৰামায়ণ, মহাভাৰত বা তাতোকৈ উৰ্দ্ধত বেদাদি শাস্ত্ৰবিলাকত লিপিবদ্ধ তথ্যক সমল হিচাপে অধ্যয়ন কৰে। এইবোৰ সংস্কৃতত ৰচনা কৰা হৈছিল। ভাৰতৰ আন আন অঞ্চলৰ তুলনাত প্ৰাচীন বা অতি প্ৰাচীন কালত অসমত সংস্কৃতৰ চৰ্চা চকুত লগা বিধৰ নহয়। অসমৰ ইতিহাস উদ্ধাৰ কৰিব বিচাৰিলে সপ্তম শতিকাৰ ৰজাসকলৰ পৃষ্ঠপোষকতাত লিপিবদ্ধ তাম্ৰলিপি বা শিলালিপিবোৰকে প্ৰমাণ হিচাপে স্বীকাৰ কৰিব লাগিব যিহেতু ভাৰতৰ আন আন অঞ্চলৰ দৰে অসমত (তেতিয়াৰ প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা কামৰূপ)ত কোনো বিখ্যাত কাব্য, মহাকাব্য আদি ৰচনা কৰা হোৱা নাছিল। মধ্যযুগৰ আৰম্ভণিত (নৱম শতিকাত) দেৱী ভগৱতীৰ মাহাত্ম্য বৰ্ণনাৰে সমৃদ্ধ কালিকাপুৰাণ এখন অমৰ গ্ৰন্থ অসমত ৰচনা কৰা হৈছিল। অষ্টাদশ মহাপুৰাণৰ তালিকাত নাম নাই যিহেতু এইখন এখন উপপুৰাণ। কালিকাপুৰাণৰ পৃষ্ঠাই পৃষ্ঠাই প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা কামৰূপৰ বৰ্ণনা, ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ উৎপত্তি, নৰকাসুৰৰ কাহিনী, অসমভূমিত থকা বিভিন্ন তীৰ্থস্থান তেনেদৰে তীৰ্থস্থানসমূহৰ মাহাত্ম্য কীৰ্ত্তিত হৈছে। অসমত ৰচিত আন এখন মহামূল্যৱান গ্ৰন্থ হৈছে যোগিনীতন্ত্ৰ। 'The Tantric Religion of India' গ্ৰন্থৰ দ্বিতীয় অধ্যায়ত (৪১ পৃষ্ঠাত) ড° অপূৰ্ব চন্দ্ৰ বৰঠাকুৰীয়াদেৱে লিখিছে— এই গ্ৰন্থখন (যোগিনীতন্ত্ৰ) এনে সময়ত ৰচনা কৰা হৈছিল, যেতিয়া শংকৰদেৱৰ নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মই অসম আৰু কোচবিহাৰত প্ৰচাৰ লাভ কৰিছিল। গতিকে চতুৰ্দশ শতিকাৰ শেহত বা পঞ্চদশ শতিকাৰ আগভাগত যোগিনীতন্ত্ৰ ৰচনা কৰা হৈছিল। ইয়াতো অসমৰ ভৌগোলিক তথ্য, ব্ৰহ্মপুত্ৰ তেনেদৰে আন নদী, কুণ্ড আদিৰ স্নান-মাহাত্ম্য, তীৰ্থস্থানৰ মাহাত্ম্য সংযোজন হৈছে। কিন্তু এই প্ৰবন্ধত কালিকাপুৰাণৰ পৰা তথ্য সংগ্ৰহ কৰি অসম ৰাজ্যৰ বিষয়ে কিছু লিখাৰ প্ৰয়াস কৰিছোঁ।

বীজ শব্দ ঃ

ভাৰতবৰ্ষ, কালিকাপুৰাণ, প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ, কামৰূপ, অসম, নৰকাসুৰ, বানাসুৰ, ব্ৰহ্মপুত্ৰ, তীৰ্থস্থান।

মূল অংশ ঃ

সাৰ্বভৌম ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূব কোণত অৱস্থিত এই ভূমিভাগৰ নাম অসমনো কিয় হ'ল— এই বিষয়ত আচাৰ্য মনোৰঞ্জন শাস্ত্ৰী মহোদয়ে প্ৰকামকামৰূপম্ নামৰ গ্ৰন্থৰ কামৰূপবৰ্ণনম্ নামৰ প্ৰথম উচ্ছ্বাসত লিখিছে যে সমগ্ৰ অসমখন পৰ্বত-পাহাৰেৰে আবৃত, গতিকে ইয়াৰ ভূমিভাগ অসমান। বিভিন্ন সৰু-বৰ জাতিৰ মানুহ ইয়াত বাস কৰে। প্ৰাকৃতিকভাৱেও অসম বিচিত্ৰ। আন ঠাইৰ লগত তুলনা কৰিব নোৱাৰি। গতিকে এই ভূমিভাগৰ নাম অসম।

অসাম্যতঃ পৰ্বতভূমিভাগাদ্
বৈবিধ্যতো মানৱজাতিভেদাৎ।
বৈৰূপ্যতঃ প্ৰাকৃতচিত্ৰভেদাৎ
অতুল্যতোহন্যৈৰসমেতি নাম।।

অসমৰ প্ৰাচীন নাম প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ। একেখন গ্ৰন্থতে শাস্ত্ৰী মহোদয়ে লিখিছে বিশ্বসৃষ্টিৰ সময়ত ব্ৰহ্মাদেৱে এই ঠাইতে বহি গ্ৰহ-নক্ষত্ৰসমূহ সৃষ্টি কৰিছিল। সেয়েহে এই ঠাই টুকুৰা ভূমণ্ডলত প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ নামে বিখ্যাত হৈছিল।

সৰ্গাদিকালে প্ৰথমং বিধাতা
জ্যোতিৰ্গনং নিৰ্ম্মিতবান্ যতোহত্ৰ।
প্ৰাগজ্যোতিষং নামত এষ দেশো
ভূমণ্ডলে খ্যাতিমবাপ তস্মাৎ।।

কালিকাপুৰাণতো প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ নামৰ ক্ষেত্ৰত একে তথ্যই দেখা যায়। স্বয়ং সৃষ্টিকৰ্তা ব্ৰহ্মাদেৱে ইয়াতে বহি পূৰ্বতে এটা নক্ষত্ৰ সৃষ্টি কৰিছিল। সেয়ে ইন্দ্ৰৰ অমৰাৱতী সদৃশ এই অনুপম নগৰখন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ নামে বিখ্যাত হৈছিল।

অস্য মধ্যে স্থিতো ব্ৰহ্মা প্ৰাঙ্নক্ষত্ৰং সসৰ্জ হ।
ততঃ প্ৰাগ্জ্যোতিষাখ্যেয়ং পুৰী শক্ৰপুৰীসমা।।

কালিকাপুৰাণ-৩৮/১২৩

এই ভূমিভাগ কামৰূপ নামেৰেও জনাজাত আছিল। কামৰূপ গোপনতকৈ গোপন তীৰ্থস্থান য'ত পাৰ্বতীৰ সৈতে ভগৱান শংকৰে নিত্য নিৰন্তৰ বাস কৰে।

কামৰূপং মহাতীৰ্থং গুহ্যাদ্ গুহ্যতমং পৰম্।
সদা সন্নিহিতস্তত্ৰ পাৰ্বত্যা সহ শঙ্কৰঃ।।

কালিকাপুৰাণ ৫১/৭৩

ইয়াতেই দেৱাদিদেৱ মহাদেৱৰ তৃতীয় নেত্ৰৰ পৰা সম্ভূত অগ্নিত দগ্ধ হোৱা কামদেৱে মহাদেৱৰে অনুগ্ৰহত পুনৰ জনম পাইছিল। সেই কাৰণে এই ভূমিভাগ কামৰূপ নামে জনাজাত হৈছিল। প্ৰকামকামৰূপম্ গ্ৰন্থখনতো লিখকে একেখিনি তথ্য আগবঢ়াইছে।

শম্ভূনেত্ৰাগ্নিনিৰ্দগ্ধঃ কামঃ শম্ভোৰনুগ্ৰহাৎ।
তত্ৰ ৰূপং যতঃ প্ৰাপ কামৰূপং ততোহভৱৎ।।

কালিকাপুৰাণ ৫১/৭৮

মহেশনেত্ৰানলদগ্ধদেহী জগাম কামঃ পুনৰাত্মৰূপম্।
পুৰা সুৰাণাং বৰতো
যতোহস্মিংস্তৎকামৰূপব্যপদেশমাপ।।

প্ৰকামকামৰূপম্ ১/৪

কালিকাপুৰাণত কামৰূপৰ এনেধৰণৰ বৰ্ণনা পোৱা যায়। পশ্চিমে কৰতোয়া নদীৰ পৰা দিক্কৰবাসিনী পৰ্যন্ত বিস্তৃত কামৰূপৰ ভূমিভাগ। এই মাটিভাগ বহলে ত্ৰিশ যোজন আৰু দীঘলে এশ যোজন। ভূমিভাগ ত্ৰিকোণাকাৰ, কৃষ্ণবৰ্ণ যথেষ্ট পৰ্বত-পাহাৰেৰে পৰিপূৰ্ণ। ইয়াৰ চাৰিওফালে শ শ নদ-নদী প্ৰবাহিত হৈ আছে।

কৰতোয়া নদী পূৰ্বং যাবদ্দিক্কৰবাসিনীম্।
ত্ৰিংশদ্ যোজনবিস্তীৰ্ণং যোজনৈশতকায়তম্।।
ত্ৰিকোণং কৃষ্ণবৰ্ণঞ্চ প্ৰভূতাচলপুৰিতম্।
নদীশতসমাযুক্তং কামৰূপং প্ৰকীৰ্ত্তিতম।।

কালিকাপুৰাণ-৫১/৭৭, ৭৮

শ্ৰীশিৱকৃষ্ণ শৰ্মা পাণ্ডা আৰু শ্ৰীবিষ্ণুকান্ত শৰ্মা পাণ্ডা দুয়োজনে যুগ্মভাৱে ৰচনা কৰা কামাখ্যা মহাত্ম্যম্ নামৰ গ্ৰন্থৰ ভূমিকাত যোগিনীতন্ত্ৰৰ উদ্ধৃতি দি অতি স্পষ্টভাষাত লিখিছে "যোগিনীতন্ত্ৰ মতে কামৰূপ দেশ চাৰিভাগত বিভক্ত— (১) কামপীঠ, (২) ৰত্নপীঠ, (৩) স্বৰ্ণপীঠ আৰু সৌমাৰপীঠ।

১। যি ঠাইত কামাখ্যা দেৱী আছে সেই ঠাইৰ নাম কামপীঠ। স্বৰ্ণকোষ নদীৰ পৰা ৰূপিকা নদী পৰ্যন্ত কামপীঠ। (ৰূপিকা নদী কামৰূপ জিলাৰ অন্তৰ্গত)।

২। যি ঠাইত জলেশ্বৰ শিৱ আছে, তাৰ নাম ৰত্নপীঠ। কৰতোৱা আৰু স্বৰ্ণকোষ নদীৰ মাজত ৰত্নপীঠ।

৩। যি ঠাইত চম্পাৱতী নদী আছে, সেই ঠাইৰ নাম স্বৰ্ণপীঠ বা ভদ্রপীঠ। ৰূপিকা নদীৰ পৰা ভৈৰৱী নদী পর্যন্ত স্বৰ্ণপীঠ (ভৈৰৱী নদী বর্তমান তেজপুৰ জিলাৰ পূৱে)।

৪। যি ঠাইত দিক্কৰবাসিনী দেৱী আছে, সেই ঠাইৰ নাম সৌমাৰপীঠ। ভৈৰৱী নদীৰ পৰা দিক্রাং নদী পর্যন্ত সৌমাৰপীঠ। (দিক্রাং নদী বর্তমান শদিয়াৰ পৰা অলপ দূৰত।"

পূর্বে এই কামৰূপত নৰকাসুৰ নামে এজন ৰজাই ৰাজত্ব কৰিছিল। ৰাহৰূপী বিষ্ণুৰ ঔৰসত ৰজঃস্বলা পৃথিৱী দেৱীৰ গর্ভত জন্ম লাভ কৰা বাবে নকৰে অসুৰত্ব লাভ কৰিছিল।

ৰজস্বলায়া গোত্রায়া গর্ভে বীর্যেণ প্রোত্রিণঃ।
যতো যাতস্ততো ভূতো দেবপুত্রোহপি সোহসুৰঃ।।

কালিকাপুৰাণ-৩৬/৭

ত্রেতাযুগত বসুমতীয়ে নৰকক প্রসৱ কৰিছিল। তেতিয়া ভগৱান বিষ্ণুৱে আহি ভৱিষ্যদ্বাণী কৰিছিল এই পুত্র মনুষ্যৰূপে থাকি বিজ্ঞ লোকৰ দৰে সুখী হ'ব আৰু যেতিয়া মনুষ্যভাব ত্যাগ কৰি আন কার্য কৰিব তেতিয়া তাৰ মৃত্যু হ'ব। জনক ৰজাৰ যজ্ঞভূমিত নৰকৰ জন্ম হৈছিল। সেই বালকে জন্মিয়ে মৰা মানুহৰ মূৰত নিজৰ মূৰটো থৈ কান্দি আছিল বাবে গৌতম মুনিয়ে বালকৰ নাম নৰক ৰাখিছিল।

নৰস্য শীর্ষে স্বশিৰো নিধায় স্থিতবান্ যতঃ।
তস্মাত্তস্য মুনিশ্রেষ্ঠো নৰকং নাম বৈ ব্যধাৎ।।

কালিকাপুৰাণ-৩৮/২

নৰক যুৱাৱস্থা হোৱাত ভগৱান বিষ্ণুৱে নৰক আৰু পৃথিৱীক লৈ প্রাগজ্যোতিষপুৰলৈ গৈ প্রাগজ্যোতিষপুৰৰ ৰজা পাতিলে। প্রাগজ্যোতিষপুৰ তেতিয়া কামৰূপৰ অন্তর্গত আছিল, যি ঠাইৰ কামাখ্যা দেৱী নায়িকা আছিল।

নিমজ্য ক্ষণমাত্রেণ প্রাগজ্যোতিষপুৰং গতঃ।
মধ্যগং কামৰূপস্য কামাখ্যা যত্র নায়িকা।।

কালিকাপুৰাণ-৩৮/১০০

সেই সময়ত প্রাগজ্যোতিষপুৰত কিৰাতসকলে বাস কৰিছিল। কিৰাতসকলে বিনা কাৰণে মূৰ খুৱাইছিল, মদ

আৰু মাংস প্রিয় আৰু জ্ঞানবর্জিত আছিল।[১] ভগৱান বিষ্ণুক দেখি সিহঁত কুপিত হৈছিল। কিৰাতসকলৰ ৰজাজনৰ নাম ঘটক। ঘটকে নৰক আৰু ভগৱান বিষ্ণুক আক্রমণ কৰাত ভগৱানে পুত্র নৰকক কিৰাতসকলক আক্রমণ কৰিবলৈ ক'লে।

মাধৱোহপি তদা পুত্রং নৰকং বীর্যবত্তৰম্।
প্রেষয়ামাস যুদ্ধায় কিৰাতনৃপতেস্তদা।।

কালিকাপুৰাণ-৩৮/১০৬

নৰকে কিৰাত ৰাজ্যৰ ৰজা ঘটকৰ লগত বহুসময় যুদ্ধ কৰি ভল্ল নামৰ শৰ নিক্ষেপ কৰি ঘটকৰ শিৰশ্ছেদ কৰিছিল।[২] ইয়াৰ পাছত কিৰাতসকলৰ সেনাপতি আৰু প্রধান যোদ্ধাসকলক বধ কৰাত কিছুমান দশোদিশে পলাল আৰু কিছুমানে নৰকৰ আশ্রিত হ'ল। আশ্রিতসকলক নৰকে ৰক্ষা কৰিলে। তথাপি কিন্তু দিক্কৰবাসিনীলৈকে কিৰাতসকলক খেদি পঠিয়ালে। ইয়াৰ পাছত বিষ্ণুৱে নৰকক কৈছিল— কৰতোয়া নামে গঙ্গা যি ঠাইত পূবফালে প্রৱাহিত হৈ আছে, যি ঠাইত ললিতা, কান্তা নদী দেৱী আছে সেই ঠাইলৈ তোমাৰ নগৰ হ'ব।

কৰতোয়া সদা গঙ্গা পূর্বভাগাবধিশ্রয়া।
যাবল্ললিতাকান্তাস্তি তাৱদেৱ পুৰং তব।।

কালিকাপুৰাণ-৩৮/১১৮

নৰকে বিদর্ভ ৰজাৰ কন্যা মায়াক বিয়া কৰাইছিল। ইয়াৰ পাছত বিষ্ণুৱে নৰকক উপদেশ দিছিল— "তুমি যদি চিৰদিন জীয়াই থাকিব বিচৰা তেন্তে ব্রাহ্মণ, মুনি, ৰজা আৰু দেৱতা কাৰো বিৰুদ্ধাচৰণ নকৰিবা। মহামায়া কামাখ্যাৰ পূজা-অর্চনা কৰিবা অন্যথা কৰিলে তোমাৰ প্রাণহানি হ'ব।"[৩] ৰজা হিচাপে নৰক বুদ্ধিমান, বেদাদিশাস্ত্রত পার্গত, ব্রাহ্মণৰ কার্যত কুশল, নীতিমান, দানতৎপৰ, কামাখ্যা দেৱীৰ পূজাত ৰত, মহাভোগী, শোভাসম্পন্ন, অজাতশত্রু আছিল। ইন্দ্রৰ দৰে ৰজা নৰকে কামৰূপ ৰাজ্য শাসন কৰিছিল।[৪]

ত্রেতাযুগৰ পাছত দ্বাপৰৰ শেষভাগত বাণাসুৰৰ জন্ম হৈছিল।[৫] বানাসুৰৰ নগৰৰ নাম অগ্নিগড় আছিল। বানে মহাদেৱক স্তুতি কৰি অসুৰৰ দৰে বিচৰণ কৰিছিল। বানাসুৰে নৰকৰ লগত বন্ধুত্ব স্থাপন কৰাত নৰকৰো চৰিত্র অসুৰৰ দৰে হৈছিল। নৰকে দেৱতা, ব্রাহ্মণ আদিক পূজা নকৰা হ'ল। আনকি বিষ্ণু আৰু বসুমতীকো পূজা নকৰা হৈ কামাখ্যা দেৱীকো ভক্তি নকৰা হ'ল। এদিনাখন ব্রহ্মাৰ পুত্র বশিষ্ঠই কামাখ্যা দেৱীক দর্শন কৰিবলৈ যোৱাত তেওঁক নৰকে নীলাচল পর্বতস্থা দেৱীক দর্শন কৰাৰ অনুমতি নিদিলে। নৰকক বশিষ্ঠ মুনিয়ে অভিশাপ দি কৈছিল— বৰাহকুলৰ কলঙ্ক, তই যাৰ ঔৰসত জন্ম গ্রহণ কৰিছিলি; তেৱেঁ মনুষ্যৰূপ ধাৰণ কৰি তোক বধ কৰিব।

নচিৰাদ্ যেন জাতোহসি তেন মানুষৰূপিণা।
মৰণং ভবিতা পাপ বৰাহকুলপাংসন।।

কালিকাপুৰাণ-৩৯/১৫

ফলস্বৰূপে ৰাজ্যত বিপ্লৱ হ'ল, লোহিত নামৰ নদীও শুকাই গ'ল। ইয়াৰ পাছত নৰকৰ পত্নী মায়াই ভগদত্ত, মহাশীর্ষ মদৰান আৰু সুমালী নামৰ চাৰি পুত্রসন্তান জন্ম দিলে।[৬] হয়গ্রীৱ নামৰ অসুৰ এজনক নৰকে সেনাপতি পদত নিযুক্ত কৰিলে। এইদৰে দেৱতা আৰু মুনিসকলক অত্যাচাৰ কৰি নৰকে পাঁচ হাজাৰ বছৰকাল প্রাগজ্যোতিষপুৰত ৰাজত্ব কৰিলে।

এবং দেৱান্ বাধমানো মুনীন্ বিপ্রাণ্ ক্ষিতেঃসুতঃ।
পঞ্চবর্ষসহস্রাণি ৰাজ্যং প্রাগজ্যোতিষেহকৰোৎ।।

কালিকাপুৰাণ-৪০/১৫

এনে সময়তে ভগৱান শ্রীকৃষ্ণই দৈৱকীৰ গর্ভত জন্ম গ্রহণ কৰিলে। লাহে লাহে কৃষ্ণই কংস, কেশী, প্রলম্ব আদি দৈত্যসকলক বিনাশ কৰিলে। দেৱৰাজ ইন্দ্রই শ্রীকৃষ্ণক নিবেদন কৰিলে যে নৰকে হয়গ্রীৱৰ সহায়ত ষোল্ল হাজাৰ এশ গন্ধর্ব কন্যা হৰণ কৰি লৌহিত্যৰ পাৰত মণি পর্বতত আৱদ্ধ কৰি ৰাখিছে আপুনি উদ্ধাৰ কৰক। ভগৱান শ্রীকৃষ্ণই নৰকৰ মুখ্য সৈনিকসকলক নিধন কৰি হয়গ্রীৱ নামৰ অসুৰ সেনাপতিকো বধ কৰিলে। শেষত নৰককো বধ কৰিলে। বসুমতীৰ অনুৰোধ মতে নৰকপুত্র ভগদত্তক প্রাগজ্যোতিষপুৰৰ ৰজা হিচাপে অভিষিক্ত কৰিলে। নৰক ৰজাৰ নামৰ পিছত অসুৰ শব্দটো থকা বাবে আগতে এই ঠাইৰ প্রজাসকলৰ অসুৰৰ স্বভাৱ আছিল বা এই ঠাই অসুৰৰ বাসস্থান আছিল বুলি বহুতে ধাৰণা কৰিছিল।

একাৱন্ন সংখ্যক অধ্যায়ত ব্রহ্মাৰ পুত্র বশিষ্ঠই সন্ধ্যাচল পর্বতত মহাদেৱৰ আৰাধনা কৰাৰ উল্লেখ আছে। তেওঁৰ আশ্রমৰ কাষেৰে সন্ধ্যা, ললিতা, কান্তা নদী হৈ আছে। কামৰূপৰ বায়ুকোণত জল্পীশ নামৰ লিঙ্গ আছে। কামৰূপ বা অসমৰ মাজেৰে ব্রহ্মপুত্র নদী প্রৱাহিত হৈ আছে। এই নদী হিমালয়ৰ পৰা উদ্ভৱ হৈছে। ইয়াত স্নান কৰিলে গঙ্গাসদৃশ পুণ্য হয়। ব্রহ্মপুত্রৰ অন্য নাম জটোদ্ভৱা।

জটোদ্ভৱা তত্র নদী হিমৱৎপ্রভৱা শুভা।
যস্যাং স্নাত্বা নৰঃ পুণ্যমাপ্নোতি জাহ্নবীসমম্।।

কালিকাপুৰাণ-৭৭/৯

ইয়াৰ উপৰি সিতপ্রভা, নবতোৱা দুটা নদী আৰু অগদ নামে নদৰো উল্লেখ আছে। বশিষ্ঠ কুণ্ডত স্নান কৰিলে পুনর্জন্ম নহয়। নৰক ৰজাই কামাখ্যা দর্শনত বাধা দিয়াত মুনি বশিষ্ঠই এই কুণ্ড নির্মাণ কৰিছিল। চন্দ্রিকা নদীত স্নান কৰিলে স্বর্গপ্রাপ্তি হয়।

চন্দ্রিকাখ্যা নদী যত্র তস্যাং স্নাত্বা দিবং ব্রজেৎ।

মণিকূট পর্বতত হয়গ্রীৱ বিষ্ণুৰ প্রতিমূর্তি আছে। এই পর্বত অতি পৱিত্র। এই পর্বত বাৰানসীতকৈও পবিত্র— ইয়াৰ বর্ণনা শুনিলে সকলো বেদ শুনাৰ দৰে ফল হয়।

যঃ পঠেচ্ছৃণুযাদ্বিপ্রো মণিকূটস্য নির্ণয়ম্।
স সর্ববেদস্য ফলং প্রাপ্নোত্যেব ন সংশয়ঃ।।

কালিকাপুৰাণ-৭৮/১০৯

মণিকূট পর্বতৰ পূবফালে দর্পণ নামে এখন পর্বত আছে। ইয়াত কুৱেৰে বাস কৰে। ইয়াৰ মাজত মাছৰ আকৃতিৰ এখন পর্বত আছে। ইয়াৰ স্পর্শত সোণবৰণীয়া হয়।[৭] দর্পণ পর্বতৰ ওচৰতে অগ্নিমাল পর্বত লোহা আদিও সোণ বৰণীয়া হয়। অগ্নিমালৰ কাষতে বৰুণ নামৰ কুণ্ড এটিও আছে। ইয়াৰোপৰি কংসকৰ পর্বত, বায়ুকূট পর্বত, চন্দ্রকূট পর্বত, বায়ুকূট পর্বত, সোমকুণ্ড, চন্দ্রকুণ্ড, নন্দন পর্বত, ভস্মকূট পর্বত, মৎস্যধ্বজ পর্বত, ৰক্ষঃকূট পর্বত, চিত্রবহন পর্বত, উর্বশীকুণ্ড আদি সৰু-বৰ পর্বতমালা কুণ্ড, সৰোবৰৰ বর্ণনাও পোৱা যায়। পাণ্ডুনাথ দর্শন কৰিলে বিষ্ণু দর্শনৰ সমান ফল হয়।[৮] শাশ্বতী নদী, দীপৱতী নদী, শৃঙ্গাটক পর্বত, দিকৰাই নদী, বৃদ্ধগঙ্গা নদী, সুৱর্ণশ্রী নদী, কামা নদী, সোমাশনা নদী, বৃষোদকা নদী, উগ্রতাৰা পীঠস্থান আদিৰো উল্লেখ আছে।

শান্তনু মুনিৰ অমোঘা ভার্যা আছিল। এদিনাখন অমোঘাক দেখি ব্রহ্মাৰ বীর্যপাত হৈছিল। শান্তনু মুনিয়ে এই কথা জানি অমোঘাক ব্রহ্মাবীর্য ধাৰণ কৰিবলৈ উপদেশ দিছিল। ফলস্বৰূপে অমোঘা গর্ভৱতী হৈছিল। যথা সময়ত এটি পুত্র সন্তানৰ জন্ম হ'ল। সেয়াই ব্রহ্মপুত্র নদ। পিছৰ কালত জমদগ্নিপুত্র পৰশুৰামে মাতৃহত্যা পাপৰ পৰা মুক্ত হোৱাত এই ব্রহ্মকুণ্ডৰ পাৰ কাটি বোৱাই দিলে। এয়েই ব্রহ্মপুত্র নদী। চ'ত মাহৰ শুক্লাষ্টমী তিথিত ব্রহ্মপুত্রত স্নান কৰিলে ব্রহ্মপদপ্রাপ্ত হয়।

চৈত্রে মাসি সিতাষ্টম্যাং যো নৰো নিয়তেন্দ্রিয়ঃ।
চৈত্রং তু সকলং মাসং শুচিঃ প্রয়তমানসঃ।।

কালিকাপুৰাণ-৮৩/৩৬

এই ব্রহ্মপুত্র নদী বৈ আহোঁতে বহুতো নদী, সৰু-বৰ পর্বত-পাহাৰ, কুণ্ড, সৰোবৰ, জলাশয় আদি বিলুপ্ত হৈছে।

যোগিনীতন্ত্র মতে নৰকাসুৰৰ ৰাজত্বৰ পাছত নৰকাসুৰৰ লগত হোৱা যুদ্ধত কিৰাতসকল পৰাজিত হৈ পলায়ন কৰিছিল। নৰকৰ পাছত যৱন, কুবাচ সৌমাৰ আৰু প্লৱসকল কামৰূপৰ অধিপতি হৈছিল। ইয়াৰ পাছত বিনুসিংহ নামৰ এজন ৰজাই সৌমাৰ আৰু গৌড়সকলক পৰাজয় কৰি একচ্ছত্রী ৰজা হৈছিল। তাৰ পাছত কছাৰী আৰু চুতীয়াসকলে বহুকাল কামৰূপত ৰজা হৈছিল। একেবাৰে শেষত পূবদিশে আহোম আৰু পশ্চিম দিশে কোচ ৰজাই ৰাজত্ব কৰিছিল।

আহোমসকলে প্রায় ছশ বছৰ ৰাজত্ব কৰাৰ পাছত ব্রহ্মদেশৰ মানসকলে আক্রমণ কৰি এই ৰাজ্যত অত্যাচাৰ, উৎপীড়ন কৰিছিল। সদৌ শেষত ১৮২৫ চনত ব্রিটিছসকলে মানক পৰাজয় কৰিছিল আৰু ১৮২৬ চনত ব্রিটিছসকলে ভাৰত ৰাষ্ট্রৰ অধীনলৈ নিছিল। ইয়াৰ পৰা বুজা যায় অসম ভাৰতৰ অন্তর্গত নাছিল।

ধর্মীয় আৰু সাংস্কৃতিক দিশৰ পৰা কিন্তু মহাভাৰতৰ যুগৰ পৰা অসম আৰু ভাৰতৰ যোগসূত্র আছিল। ধর্মীয় কার্যত দাক্ষিণাত্যৰ পুৰোহিত এজনে বিশেষ এটা অনুষ্ঠানত যি মন্ত্র উচ্চাৰণ কৰে সেই বিশেষ অনুষ্ঠানটো অসমত হ'লে অসমৰ পুৰোহিতেও একেটা মন্ত্র উচ্চাৰণ কৰে। যেনে— ওঁ গঙ্গে চ যমুনে চৈব গোদাবৰী সৰস্বতী। নর্মদে সিন্ধু কাবেৰী জলেহস্মিন্ সন্নিধিং কুৰু— এই মন্ত্রটো জল উদ্ধাৰ কৰোঁতে সমগ্র ভাৰতবর্ষৰ মানুহে একেভাৱে আবৃত্তি কৰে। মন্ত্রটোত উল্লেখ থকা নদীকেইটা ভাৰতবর্ষতে আছে। ধার্মিকভাৱে সকলো বৈষ্ণৱ, শাক্ত আৰু শৈৱ। অসমৰ অসংখ্য মঠ, মন্দিৰ, পীঠস্থান, পৱিত্র নদী, কুণ্ড আদিও ইয়াৰ সাক্ষ্য বহন কৰে। অসমৰ বাসিন্দা সকলো ধার্মিক।

ইয়াৰোপৰি বলিৰজাৰ বংশধৰ বাণাসুৰ শোণিতপুৰৰ ৰজা আছিল। ঊষা বাণ ৰজাৰ জীয়েক। বাণ শিৱভক্ত আছিল। শ্রীকৃষ্ণৰ নাতি অনিৰুদ্ধই ঊষাক হৰণ কৰিবলৈ আহি অগ্নিগড়ত আৱদ্ধ হোৱাত শ্রীকৃষ্ণই দ্বাৰকাৰ পৰা আহি বাণৰ লগত যুদ্ধ কৰিছিল। স্বয়ং সদাশিৱে বাণৰ পক্ষত যুদ্ধ কৰিছিল। এই যুদ্ধ হৰি-হৰৰ যুদ্ধ নামে বিখ্যাত।

ভীম আৰু হিড়িম্বাৰ পুত্র ঘটোৎকচে পাণ্ডৱ পক্ষৰ হৈ যুদ্ধ কৰিছিল। হিড়িম্বাৰ জন্মস্থান হিড়ম্বপুৰ বর্তমান ডিমাপুৰ। নৰকাসুৰৰ পুত্র ভগদত্তৰ কন্যা ভানুমতী। ভানুমতীক দুর্যোধনে বিয়া কৰাইছিল। কুৰুক্ষেত্র যুদ্ধত ভগদত্তই কৌৱৰৰ হৈ যুদ্ধ কৰিছিল। গতিকে অসমৰ সৈতে মহাভাৰতৰ যুগৰ পৰা ভাৰতৰ যোগসূত্র থকাৰ অজস্র উদাহৰণ পোৱা যায়।

উপসংহাৰ ঃ

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা স্পষ্ট হ'ল যে কালিকাপুৰাণৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হ'ল দেৱী ভগৱতীৰ মাহাত্ম্য প্ৰকাশ কৰাহে। কিন্তু যিকোনো এখন পুথিয়ে য'ত ৰচনা কৰা হয় সেই ঠাইৰ সামান্য হ'লেও আভাস দিয়ে। তাৰোপৰি গ্ৰন্থখন ৰচনা কৰা কালত সেই অঞ্চলৰ সেই সমাজব্যৱস্থা; ধাৰ্মিক নীতি-নিয়ম আদিৰ চৰ্চা কৰা দেখা যায়। বৈষ্ণৱ আৰু শৈৱভক্ত থাকিলেও সেই সময়ত শাক্তধৰ্মৰো প্ৰাধান্য আছিল। প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ বিখ্যাত ৰজা নৰকাসুৰৰ নামৰ পিছত অসুৰ শব্দটো থাকিলেও অসম কোনোদিনে অসুৰৰ বাসভূমি নাছিল। প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা কামৰূপৰ নামকৰণ কৰাৰ কাৰণো স্পষ্টভাৱে আমাৰ বোধগম্য হ'ল। অসমৰ আয়ুসৰেখা ব্ৰহ্মপুত্ৰ নদৰো জন্মবৃত্তান্তও স্পষ্ট হ'ল। অসমভূমিত থকা পৰ্বত, নীলাচল পৰ্বতত থকা কামাখ্যা দেৱীৰ মাহাত্ম্যৰ লগতে তীৰ্থস্থানসমূহৰো বিশদ বিৱৰণ আমি লাভ কৰিলোঁ। মুঠৰ ওপৰত ধাৰ্মিকভাৱে অসমৰ এক চহকী ইতিহাস থকাৰ উপৰি ভাৰতৰ আন ৰাজ্যৰ দৰে আমি অসমবাসীও আগবঢ়া। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

শাস্ত্ৰী আচাৰ্য মনোৰঞ্জন ঃ প্ৰকামকামৰূপম্, অসম সংস্কৃত সমিতি, কাহিলিপাৰা, ১৯৯০

শৰ্মা, শিৱকৃষ্ণ শৰ্মা পাণ্ডা, শৰ্মা বিষ্ণুকান্ত শৰ্মা ঃ কামাখ্যা মাহাত্ম্যম্, বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ, ২০১৮

ভাগৱতী সুৰেণ ঃ কালিকাপুৰাণ, দত্তবৰুৱা, পাব্লিছিং কোম্পানী প্ৰাঃ লিঃ, ২০১২।

শাস্ত্ৰী শ্ৰীবিশ্বনাৰায়ণ ঃ কালিকাপুৰাণম্ ঃ চৌখম্বা সংস্কৃত সীৰীজ, বাৰানসী, ১৯৭২

১. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ ৩৮/১০১

২. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ ৩৮/১০৮

৩. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ ৩৮/১৪৯

৪. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ ৩৮/১৫৭-১৫৯

৫. ত্ৰেতায়াঞ্চ ব্যতীতায়াং দ্বাপৰস্য তু শেষতঃ।
অভৱচ্ছোণিতপুৰে বাণো নাম মহাসুৰঃ।। কালিকাপুৰাণ- ৩৯/২

৬. কালিকাপুৰাণ-৪০/১

৭. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ-৭৯/২

৮. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ-৭৯ অধ্যায়

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক চেতনা

কস্তুৰী বৰা

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ জগতত ঔপন্যাসিক হিচাপে কেইবাখনো উপন্যাস ৰচনা কৰি বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই বিশেষ এটা ধাৰাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। তেওঁ ৰচনা কৰা উপন্যাস কেইখনত তেওঁৰে জীৱন-দৰ্শনৰ লগতে সমসাময়িক ৰাজনীতি, সামাজিক সমস্যা আদিৰ প্ৰতি মনোভাৱ কেনে আছিল তাৰ আভাস পাব পাৰি। বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই ৰচনা কৰা উপন্যাসসমূহৰ ভিতৰত ৰাজনৈতিক উপন্যাস কেইখন বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসসমূহৰ প্ৰায়বোৰেই ৰাজনৈতিক চেতনা সম্পন্ন। তেওঁৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসসমূহৰ বিষয়বস্তু মূলতঃ ভাৰতৰ সম-সাময়িক ৰাজনৈতিক অৱস্থাই, অসমৰ ওপৰত পেলোৱা প্ৰভাৱৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া। কিন্তু, এই উপন্যাসবোৰৰ মূল বিষয় ৰাজনৈতিক হ'লেও তেওঁ কোনো ক্ষেত্ৰতেই মানৱীয় প্ৰমূল্য বা আৱেগ-অনুভূতিক অৱহেলা কৰা দেখা নাযায়। ভট্টাচাৰ্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসকেইখনত প্ৰাক্-স্বাধীনতা আৰু স্বাধীনোত্তৰ সময়ৰ বাতাৱৰণ সামৰি, সেই সময়ৰ ৰাজনৈতিক আদৰ্শসমূহৰ আভাস দিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। উপন্যাসকেইখনৰ মাজেৰে ভট্টাচাৰ্যই তৰুণ মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদী আদৰ্শৰ পৰা ক্ৰমান্বয়ে পিছলৈ কেনেকৈ গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী আদৰ্শলৈ নামি আহিল সেই আভাস উপন্যাসৰ পাতত পোৱা যায়। বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসসমূহত প্ৰকাশ পোৱা ৰাজনৈতিক পটভূমি, আদৰ্শসমূহ বিশ্লেষণ কৰি 'বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক চেতনা' শীৰ্ষক গৱেষণাধৰ্মী আলোচনাটো কৰা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ

ৰাজনৈতিক উপন্যাস, সমাজবাদী, ৰাজনৈতিক চেতনা, পটভূমি।

গাঁও- ঘিলাধাৰী বস্তি
ডাক- বৰপাম তিনিআলি
পিন- ৭৮৪১৭৫
জিলা-শোণিতপুৰ, অসম
৭৬৩৮০৭৩৬৪৫
kasturiborah431@gmail.com

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ জগতত বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসৰ এটা বিশিষ্ট স্থান আছে। বিষয়বস্তু নিৰ্বাচনৰ ক্ষেত্ৰত সূক্ষ্ম জীৱনবোধ আৰু ভাৱৰ গভীৰতাই তেওঁৰ লেখনিক অনন্যতা প্ৰদান কৰিছে। কোনো বিষয়বস্তুক গভীৰভাৱে বিশ্লেষণ কৰি তেওঁ মনোজগতত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম

হৈছে। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ সৃষ্টিধর্মী সাহিত্যলৈ দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিলে আমি সাহিত্যিক গৰাকীৰ জীৱন-দর্শনৰ আভাস পাওঁ। কবিতা আৰু চুটিগল্পৰে যদিও তেওঁ সাহিত্যিক জীৱন আৰম্ভ কৰিছিল তথাপি তাৰ সংখ্যা কম আছিল। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যই উপন্যাসৰ জৰিয়তে এটা ধাৰাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। তেওঁৰ উপন্যাসলৈ দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিলে দেখা যায় যে উপন্যাসসমূহত অসম তথা ভাৰতৰ জাতীয় জীৱনত প্রভাৱ পেলোৱা ঘটনাৰাজিক উপন্যাসৰ উপজীব্য হিচাপে গ্রহণ কৰা হৈছে। সেয়ে হয়তো ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসে জনমানসত বিশেষস্থান লাভ কৰিছে। বাস্তৱবাদী দৃষ্টিভংগীৰে বিষয়বস্তুক উপস্থাপন কৰাৰ বাবে তেওঁৰ উপন্যাসসমূহ সুকীয়া মাত্রাৰ। সমাজৰ প্রতি থকা সচেতনমূলক দৃষ্টিভংগীৰে বিশ্লেষণ কৰি আনকো ভাৰিবলৈ সুযোগ প্রদান কৰা এই কৌশলে, আচলতে অসম তথা ভাৰতত প্রেক্ষাপটৰ অনেক দিশ উন্মোচন কৰে। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসত দুটা দিশ বিশেষভাৱে প্রতিফলিত হৈছে, এটা হৈছে সমাজচেতনা আনটো হৈছে ৰাজনৈতিক চেতনা। ভট্টাচার্যৰ প্রায়বোৰ উপন্যাসেই ৰাজনৈতিক চেতনা সম্পন্ন আৰু যিকেইখন ৰাজনৈতিক চেতনা সম্পন্ন নহয় তাতো সামাজিক চেতনা স্পষ্ট। তেওঁ সমসাময়িক সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক ঘটনা প্রৱাহক আধাৰ হিচাপে লৈ ৰচনা কৰা উপন্যাসসমূহত প্রতিটো সমস্যাৰে মানৱীয় দিশটোত সর্বাধিক গুৰুত্ব দিয়া পৰিলক্ষিত হয়। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ ৰাজনৈতিক চেতনা প্রকাশ পোৱা উপন্যাসসমূহ হৈছে- ৰাজপথে ৰিঙিয়ায় (১৯৫৫), ইয়াৰুইঙ্গম (১৯৬০), প্রতিপদ (১৯৭০), মৃত্যুঞ্জয় (১৯৭০), ৰঙামেঘ (১৯৭৬), মুনিচুনিৰ পোহৰ (১৯৭৬), কালৰ হুমনিয়াহ (১৯৮২)। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ এই ৰাজনৈতিক উপন্যাসকেইখনৰ ভিত্তিতেই তাত প্রকাশ পোৱা ৰাজনৈতিক চেতনা সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

০.০১ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যই উপন্যাসত বাস্তৱবাদী চিন্তাৰে বিষয়বস্তু উপস্থাপন কৰিছে। সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক ঘটনা প্রৱাহক আধাৰ হিচাপে লৈ সমস্যাৰে অন্তর্নিহিত মানৱীয় দিশটোক অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। ভট্টাচার্যই সমাজৰ সূঐ জীৱনবোধ, ভাৱৰ গভীৰতাৰে ৰচনা কৰা ৰাজনৈতিক উপন্যাসকেইখনত ভাৰতৰ স্বাধীনতাৰ পূর্বৱর্তী আৰু স্বাধীনোত্তৰ ৰাজনৈতিক অৱস্থাৰ প্রতিফলন ঘটিছে। এই অৱস্থাই অসমৰ ওপৰত পেলোৱা প্রভাৱৰ ক্রিয়া-প্রতিক্রিয়া আৰু ৰাজনৈকিক আদর্শসমূহ, কেনেকৈ উপন্যাসত প্রতিফলিত হৈছে তাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাই আমাৰ অধ্যয়নৰ প্রধান উদ্দেশ্য।

০.০২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যই উপন্যাসৰ জৰিয়তে এটা ধাৰাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। এই ধাৰাৰ এটা উল্লেখযোগ্য বিষয়বস্তু আছিল উপন্যাসত প্রতিফলিত ৰাজনৈতিক চেতনা। সেই সময়ৰ ৰাজনৈতিক প্রেক্ষাপটৰ ঘটনাসমূহৰ বিষয়ে উপন্যাসৰ জৰিয়তে জানিবলৈ ভট্টাচার্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাস কেইখনৰ ওপৰত অধ্যয়ন কৰাৰ গুৰুত্ব আছে।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই অধ্যয়নত বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসত প্রতিফলিত হোৱা ৰাজনৈতিক চেতনা সম্পর্কেহে আলোচনা কৰা হ'ব।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি আৰু বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৫ পূর্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা ঃ

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ সাহিত্যৰাজিৰ আলোচনা বিষয়ক কেইবাখনো কিতাপ ৰচিত হৈছে। তাৰে ভিতৰত সত্যেন্দ্রনাথ শর্মাই 'অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত' (১৯৮১) আৰু 'অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা' (১৯৭৬)ত বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাস সম্পর্কে আলোচনা কৰিছে। মহেশ্বৰ নেওগে 'অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা' (১৯৬২)ত বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। হেমন্তকুমাৰ শর্মাৰ 'অসমীয়া সাহিত্যত দৃষ্টিপাত' (১৯৬১) ত বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাস সম্পর্কে পৰিচয় পোৱা যায়। অমল চন্দ্র দাসে সম্পাদনা কৰা 'অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্রমা' (২০১২)ত পিংকী শইকীয়াৰ 'বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাস' বুলি এটি প্রৱন্ধ প্রকাশ হৈছে। নগেন ঠাকুৰৰ দ্বাৰা সম্পাদিত 'এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস' (২০০০)ত 'ৰাজনীতি আৰু অসমীয়া উপন্যাস' বুলি মলয়া খাওন্দৰ এটি প্রৱন্ধ আৰু 'বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাস' বুলি গোবিন্দ প্রসাদ শর্মাৰ এটি প্রৱন্ধ প্রকাশিত হৈছে। হোমেন বৰগোহাঞিৰ সম্পাদিত

'অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, ষষ্ঠখণ্ড' (১৯৯৩)ত বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসৰ আলোচনা আছে।

১.০০ বিষয়বস্তুৰ অধ্যয়ন ঃ

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসসমূহৰ বিষয়বস্তু মূলতঃ ভাৰতৰ সমসাময়িক ৰাজনৈতিক অৱস্থাই অসমৰ ওপৰত পেলোৱা প্ৰভাৱৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া। ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসসমূহৰ মুখ্য প্ৰতিপাদ্য বিষয় ৰাজনৈতিক যদিও তেওঁ কোনো ক্ষেত্ৰতেই আৱেগ অনুভূতি বা মানৱীয় প্ৰমূল্যক অৱহেলা কৰা নাই। অতি কৌশলেৰে ভট্টাচার্যই মানৱীয় অনুভূতিসমূহক মূল ৰাজনৈতিক ঘটনাৰ 'মহগ' হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিছে। ভট্টাচার্যই ৰাজনৈতিক উপন্যাস কেইখনত মানুহৰ চিৰন্তন সমস্যাক সুন্দৰ ৰূপত দাঙি ধৰিছে। সামাজিক বিদ্বেষ যুদ্ধৰ অপশক্তিয়ে মানুহৰ জীৱনৰ অতি আপোন জনকো যে কাঢ়ি নিব পাৰে তাক উপন্যাসিকে সুন্দৰ ৰূপত অংকণ কৰিছে। "সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক চেতনা বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ চিন্তাশীলতাৰ প্ৰধান উপাদান আৰু ইয়াক তেওঁ কেবাখনো উপন্যাসৰ বিষয়বস্তু কৰি লৈছে। কিন্তু সামাজিক, অর্থনৈতিক বা ৰাজনৈতিক যিয়েই নহওঁক কিয়, প্ৰতিটো সমস্যাৰে অন্তর্নিহিত মানৱীয় দিশটোতহে বীৰেন্দ্রকুমাৰে সর্বাধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰা দেখা গৈছে।"[১]

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসকেইখনৰ ৰাজনৈতিক চেতনা সম্পর্কে আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে বিশেষভাৱে দুটা দিশৰ ওপৰত আলোচনা কৰা হ'ব। সেইকেইটা হৈছে-

(ক) বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসৰ পটভূমি আৰু বিকাশ।

(খ) বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক আদর্শৰ প্ৰতিফলন।

২.০০ বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ ৰাজনৈতিক উপন্যাসৰ পটভূমি আৰু বিকাশ ঃ

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ প্ৰথম উপন্যাস 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' এখন সম্পূর্ণ সার্থক ৰাজনৈতিক উপন্যাস। ৰাজনৈতিক চেতনাই উপন্যাসখনৰ মূল বিষয়বস্তু। উপন্যাসখনত ভাৰতৰ স্বাধীনতা লাভৰ প্ৰথম দিনটোত ঘটা বিভিন্ন ঘটনাৱলী বর্ণিত হৈছে। সাধাৰণ লোকৰ বাবে এই স্বাধীনতাত প্ৰকৃততে কি আছে, সেই কথা উপন্যাসৰ

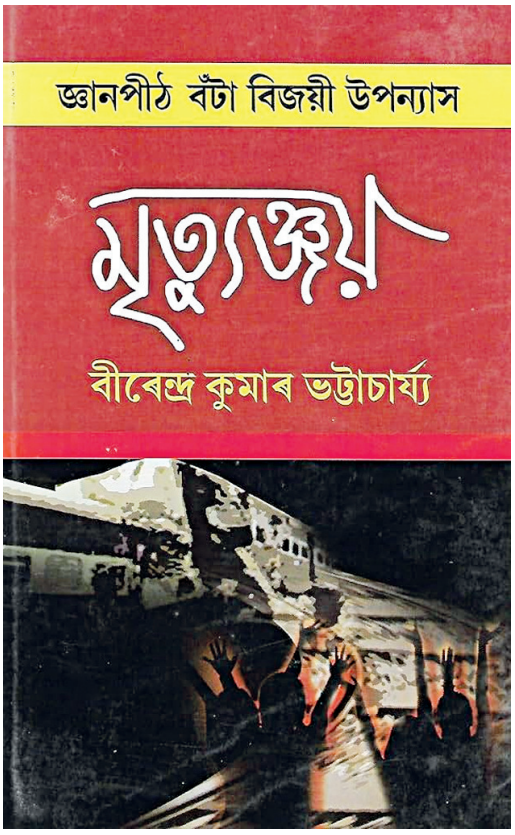

কেন্দ্রীয় চৰিত্র মোহনৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ হৈছে। নায়ক মোহনে ১৯৪৭ চনৰ ১৫ আগষ্টৰ স্বাধীনতা দিৱসৰ কোনো তাৎপর্য অনুভৱ কৰা নাই। তাৰ দৃষ্টিত এই স্বাধীনতা অসার্থক। স্বাধীনতাৰ নামত ৰাজহুৱা সভা পাতি আনন্দ কৰাৰ প্ৰয়োজন নাই। কাৰণ ব্রিটিছৰ পৰা যুঁজি অনা স্বাধীনতাই আজি দেশৰ জনগণক একো দিব পৰা নাই। তাৰ মতে এই স্বাধীনতাই মাত্র কাৰখানাৰ মালিক, পুঁজিপতিকহে ধনী কৰিছে। মোহনে স্বাধীনতাৰ ঐতিহাসিক দিনটো উদ্‌যাপন কৰাৰ বিপৰীতে লাঞ্ছিত, শোষিত আৰু সাধাৰণজনৰ অর্থনৈতিক স্বাধীনতাৰ কথা ভাৰিছে আৰু সেই কাৰণেই প্ৰকৃত স্বাধীনতা অনাৰ বাবে বিপ্লৱী মানুহ গোটাইছে। কান্ধত মোনা লৈ গোটেই দিনটো লিফ্‌লেট বিলাইছে আৰু আবেলি মুখ্যমন্ত্রীৰ সন্মুখত অর্থনৈতিক স্বাধীনতা অবিহনে যে ৰাজনৈতিক স্বাধীনতা অর্থহীন সেই কথা স্পষ্টভাৱে ঘোষণা কৰি জেললৈ গৈছে। এটা দিনৰ পৰিধিৰে আগবঢ়া এই কাহিনীৰে উপন্যাসিকে, এজন ৰাজনৈতিক নেতাৰ কৰিবলগীয়াখিনি সুন্দৰ ৰূপত প্ৰতিফলিত কৰিছে।

'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়'ৰ পাঁচ বছৰৰ পিছত প্ৰকাশ হয় 'ইয়াৰুইঙ্গম'। এই উপন্যাসখন নগাপাহাৰৰ পটভূমিত ৰচিত হৈছে। টাংখুল নগা সমাজৰ জাতীয়তাবাদৰ অভ্যুত্থান ইয়াত প্ৰকাশিত হৈছে। মহাত্মা গান্ধীৰ ভাৰতীয় জাতীয় আন্দোলন, সুভাষ চন্দ্ৰ বসুৰ উগ্ৰজাতীয়তাবাদী চিন্তা আৰু দ্বিতীয় মহাযুদ্ধৰ পৰিৱেশে নগা সকললৈ অনা নৱজাগৰণ উপন্যাসখনৰ মুখ্য বিষয়বস্তু। উপন্যাসখনত গান্ধীৰ আদৰ্শ আৰু নেতাজীৰ আদৰ্শক দুটা ভিন্ন চৰিত্ৰৰ মাজেৰে দাঙি ধৰি দুই বিপৰীত আদৰ্শৰ মাজত সংঘাত দেখুৱাই স্বাধীনতাৰ কাৰণে উত্তম কোনটো স্পষ্টভাৱে কৈছে। দুটা বিপৰীত আদৰ্শ দাঙি ধৰা চৰিত্ৰ দুটা হ'ল- ৰিশ্বাঙ আৰু ভিডেশ্যেলী। টাংখুল নগা সমাজৰ সুস্থ গঠনমূলক চিন্তাৰ প্ৰতিনিধি পাশ্চাত্য শিক্ষাৰে শিক্ষিত ৰিশ্বাঙে গান্ধীৰ আদৰ্শক শ্ৰেষ্ঠ বুলি ভাৱে। ৰিশ্বাঙৰ দৃষ্টিত স্বাধীনতা অহাৰ সহজ বাটটোৱে হ'ল-অহিংসবাদী আন্দোলন। নগা পাহাৰত সি শান্তিপূৰ্ণভাৱে ৰাইজৰ শাসন বিচাৰে, একান্তভাৱে নগাৰ নহয়। সেইকাৰণে তাৰ ভৱিষ্যত জীৱনসংগী হ'ব খোজা খুটিংলাক কৈছে - সিহঁতৰ যেতিয়া সন্তান জন্ম হ'ব তাৰ নাম থোৱা হ'ব ইয়াৰুইঙ্গম বা ৰাইজৰ শাসন। ভিডেশ্যেলী দ্বিতীয় মহাযুদ্ধৰ সময়ত সুভাষ বসুৰ আজাদ হিন্দ ফৌজত আছিল। নেতাজীৰ স্বপ্নৰ দৰে ভিডেশ্যেলীৰ স্বপ্ন আছিল সশস্ত্ৰ সংগ্ৰাম কৰি নগা পাহাৰলৈ স্বাধীনতা অনা। নেতাজীৰ আদৰ্শ সি ত্যাগ কৰিব নোৱাৰে। ভিডেশ্যেলীৰ সশস্ত্ৰ সংগ্ৰামৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হ'ল-

"মোক এখন স্বাধীন ৰাজ্য লাগে, য'ত সোমালে মানুহে অনুভৱ কৰে নগা হৈ ওপজা মানে কি।"[২] এই চৰিত্ৰ দুটাৰ মতাদৰ্শই উপন্যাসখনৰ ৰাজনৈতিক আদৰ্শক প্ৰতিফলিত কৰিছে।

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'প্ৰতিপদ' উপন্যাসখনৰ মুখ্য উপজীব্য বিষয় শ্ৰমিক আন্দোলন আৰু ইয়াৰ ৰাজনৈতিক চেতনা। ঐতিহাসিক ভাৱেই ১৯৩৮-৩৯ চনত ডিগবৈৰ তেল কোম্পানীৰ বনুৱাসকলে কৰা ধৰ্মঘটে সম-সাময়িক চৰকাৰক চিন্তিত কৰি তুলিছিল বুলি কেশৱ নাৰায়ণ দত্তৰ 'লেণ্ড মাক্চ অৰ দ্যা ফ্ৰিদম ষ্ট্ৰাগলচ'ত পোৱা গৈছে। উপন্যাসখনত অংকিত সম-সাময়িক অসমৰ ৰাজনৈতিক বাতাবৰণো ঐতিহাসিকভাৱে সত্য। চাদুল্লাৰ মুছলীম লীগৰ চৰকাৰখনৰ ঠাইত গোপীনাথ বৰদলৈৰ নেতৃত্বত গঠিত কংগ্ৰেছ চৰকাৰৰ ওপৰত অসমৰ ৰাইজৰ নগতে বনুৱা ধৰ্মঘটকাৰী সকলেও আস্থা ৰাখিছিল। এই কথাবোৰ উপন্যাসখনত অংকন কৰি ঔপন্যাসিকে ঐতিহাসিকতা প্ৰদান কৰিছে। উপন্যাসখনৰ পটভূমি ৰচিত হৈছে ডিগবৈ চহৰত। সাম্ৰাজ্যবাদী শাসক গোষ্ঠীৰ শোষণৰ বলি হোৱা তৈল কাৰখানাৰ বনুৱাসকলৰ সংগঠিত সংগ্ৰাম ইয়াৰ মুখ্য বিষয়। আঠ অনা পইচাত গা-খাটি দিয়া এই বনুৱাসকলে নায্য প্ৰাপ্তিৰ দাবীৰ প্ৰতি সচেতন হৈছে যদিও অশিক্ষিতাৰ মনোভাৱে এই আন্দোলনক সফল ৰূপ দিব পৰা নাই। শোধনাগাৰৰ বৰমূৰীয়াসকলে এই আন্দোলন দমন কৰিবলৈ বিভিন্ন পন্থা হাতত লৈছে আৰু প্ৰতিবাদকাৰীক গুলীবৰ্ষনো কৰিছে। দ্বিতীয় মহাযুদ্ধৰ সুযোগ লৈ ডিগবৈ সংৰক্ষিত অঞ্চলত পৰিগণিত হৈছে। উপন্যাসৰ শেষত ধৰ্মঘটকাৰী বনুৱাক ডিগবৈৰ পৰা নিৰ্বাসন দিছে।

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই ১৯৪২ চনৰ স্বাধীনতাৰ শেষ আন্দোলনৰ ছবি মৃত্যুঞ্জয়ৰ মাজেদি কল্পনাৰ সংমিশ্ৰণ ঘটাই প্ৰকাশ কৰিছে। ঔপন্যাসিকে নিজৰ জীৱন কালত প্ৰত্যক্ষ কৰা জাগৰণক নিজস্ব চিন্তাৰ অনুভৱেৰে সংপৃক্ত কৰি উপন্যাসখন ৰচনা কৰিছে। উপন্যাসখনত স্বাধীনতা আন্দোলনত গান্ধীজীৰ আদৰ্শৰে স্বাধীনতা আনিবলৈ বিচৰা মানিক বৰা ভকতে ধনপুৰক কৈছে ঃ "গান্ধীয়ে আমাক বাট কাটি দিছে আমি মাত্ৰ যাব লাগে।"[৩] দেশত চলি থকা অৰাজকতাই ধনপুৰৰ মনত অহিংসা নীতিৰ অনাস্থাৰ ভাব আনিছে। ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত

হিংসাত্মক আৰু অহিংস দুই নীতিয়ে সংঘাতৰ সৃষ্টি কৰিছে। মৃত্যুঞ্জয়ত গান্ধী-নেহৰুৰ অহিংস স্বাধীনতা আন্দোলনৰ নীতিৰ মাজতে স্বাধীনতা প্ৰেমীৰ কূটাঘাতী হিংসাত্মক পন্থা অংকিত হৈছে। স্বাধীনতা আন্দোলনৰ চূড়ান্ত পৰ্যায়ত অহিংস পন্থাৰ বৈষ্ণৱ আৰু গান্ধীবাদী কিছু লোকে কেনেকৈ এখন ৰেল বগৰাই দিছিল, তাক মৃত্যুঞ্জয়ত বৰ্ণিত হৈছে। ৰেল বগৰাই শাসক চৰকাৰৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰাৰ সাময়িক জয় দেখুৱালেও এই হিংসাত্মক পন্থাই কেনেকৈ মানৱতাবাদ বিৰোধী অশান্তিৰ সৃষ্টি কৰিছে তাকো চিত্ৰিত কৰিছে। হিংসাপন্থী মুক্তিযোদ্ধা সকলৰ সকলো আত্মত্যাগ, স্বদেশপ্ৰেমৰ নমুনা দাঙি ধৰা স্বত্বেও গান্ধী-নেহৰুৱেই উপন্যাসৰ শেষত আদৰ্শ হৈ আছে।

ৰঙামেঘ বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ এক বৈপ্লৱিক প্ৰকাশ। স্বাধীনোত্তৰ কালৰ কিছুমান ক্ষমতালোভী শাসকলোকৰ শাসনৰ ওৰ পৰা সময় উপন্যাসখনিত ধ্বনিত হৈছে। এটা নতুন শ্ৰেণীৰ উন্মেষৰ প্ৰতিধ্বনি শুনা গৈছে, যিয়ে সমাজলৈ পৰিৱৰ্তন আনিব পাৰে। উপন্যাসৰ 'ৰঙামেঘ' নামটোৱে প্ৰতীকধৰ্মী হিচাপে বিপ্লৱ তথা পৰিৱৰ্তনৰ ইংগিত বহন কৰিছে। উপন্যাসৰ চৰিত্ৰ আনন্দই কৈৱৰ্ত সমাজৰ শিক্ষিত প্ৰতিনিধি হিচাপে দলীয় ৰাজনীতিৰ প্ৰতিদ্বন্দ্বী হৈ ওলাইছে। আনন্দৰ ৰাজনৈতিক প্ৰতিদ্বন্দ্বীতাৰ মূল লক্ষ্য দুখীয়াৰ দুখ মোচন আৰু কেপিটেলিষ্ট সকলৰ পৰা সাধাৰণ জনগণক উদ্ধাৰ। ঔপন্যাসিকে চলিত শাসক নেতা চৌধুৰীৰ চৰিত্ৰক আত্মোপলব্ধিৰে অংকণ কৰি সমাজৰ প্ৰতি গভীৰ সচেতনমূলক দৃষ্টি প্ৰকাশিত কৰিছে।

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'মুনিচুনিৰ পোহৰ' উপন্যাসে স্বাধীনোত্তৰ কালৰ ভাৰতৰ এটা ৰাজনৈতিক সমস্যাক প্ৰতিফলিত কৰিছে। ১৯৭৫ চনত ইন্দিৰা গান্ধী শাসন কালৰ মধ্যভাগত আহি পৰা জৰুৰীকালীন অৱস্থাই নাগৰিকৰ মৌলিক অধিকাৰ কাঢ়ি নি কেনেকৈ নাগৰিকৰ জীৱনলৈ কুফল নমাই আনিছিল তাৰ এটি ভাঙোনমুখী আৰ্থ-সামাজিক পৰিৱেশৰ চিত্ৰ, অসমৰ এটা নিৰ্দিষ্ট অঞ্চলক কেন্দ্ৰ কৰি চিত্ৰিত কৰা হৈছে। ঔপন্যাসিকে কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ মীনধৰৰ মাজেৰে কাহিনীভাগ আগবঢ়াই নিছে। অস্বাভাৱিক ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতিত দেশৰ শাসনভাৰ ৰাইজৰ প্ৰকৃত সেৱাৰ ভাৰত কাহানিও ব্ৰতী নোহোৱা এচাম চৰিত্ৰহীন লোকৰ হাতত পৰিছিল, সংবিধান অনুমোদিত শক্তিবোৰক চেৰ পেলাই বহির্গত কিছুমান অশুভ শক্তিয়ে তেতিয়া দেশ চলাইছিল আৰু নির্দোষী, দুখীয়া মানুহক নগুৰ-নাগতি কৰিছিল, ইয়াকে উপন্যাসখনত চিত্ৰিত কৰা হৈছে।

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ শেহতীয়া ৰাজনৈতিক উপন্যাসখন হ'ল- 'কালৰ হুমুনিয়াহ'। প্ৰাক্ স্বাধীনতা কালৰ উজনি অসমৰ চফাই বাগিচাৰ পটভূমিত এই উপন্যাসখন ৰচিত। উপন্যাসখনত ব্ৰিটিছ শাসিত চাহবাগিচাৰ শোষিত বনুৱা জীৱনৰ যন্ত্ৰনাৰ কথা প্ৰকাশিত হৈছে আৰু তাৰ বিৰুদ্ধে কৰা প্ৰতিবাদী বনুৱা সংগ্ৰামৰ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। বনুৱাৰোষক মূল বিষয়বস্তু হিচাপে উপস্থাপন কৰাৰ উপৰিও স্বাধীনতাৰ পূৰ্বৱৰ্তী কালৰ গান্ধীৰ অহিংস আন্দোলন বৰ্ণিত হৈছে। কংগ্ৰেছ ভলন্টিয়াৰে কানি আৰু মদৰ পিকেটিং কৰাৰ কথা উপন্যাসখনিত আছে। সেইসময়ত বাগানলৈ সঘনে আহি কংগ্ৰেছ ভলন্টিয়াৰ ভূৰন গগৈ আৰু ললিতে শ্ৰমিক শ্ৰেণীক অধিকাৰ আৰু দায়বদ্ধতাৰ প্ৰতি সচেতন কৰি তুলিছে। যাৰ বাবে পৰৱৰ্তী সময়ত বাগিচাৰ বনুৱাই কৰ্তৃপক্ষকৰ ওচৰত অধিকাৰৰ দাবী তুলিছে। হেনৰী চাহাবে পত্নীৰ তাগিদাত বনুৱাৰ জীৱন উৎকৰ্ষ কৰাৰ চিন্তা কৰিছে। কিন্তু, ব্ৰিটিছ শোষকৰ উচ্চাত্মিকা ভাৰ এৰিব পৰা নাই। উপন্যাসখনত ব্ৰিটিছ চাহাবসকলে বনুৱাৰ ওপৰত পোষণ কৰা সুলভ নীচ মনোভাৰ প্ৰকাশ পাইছে। পৰাধীন ভাৰতৰ এই শ্ৰেণী চেতনা কালৰ হুমুনিয়াহৰ মাজতে সোমাই পৰিছে।

৩.০০ বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক আদৰ্শৰ প্ৰতিফলন ঃ

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত প্ৰধানত দুটা ৰাজনৈতিক আদৰ্শ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। সেয়া হ'ল-মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদী আদৰ্শ আৰু গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী (আঞ্চলিকতাবাদ, জাতীয়তাবাদ) আদৰ্শ। তেওঁৰ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়াই', 'ৰঙামেঘ' আৰু 'প্ৰতিপদ' উপন্যাসখনত মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদী আদৰ্শ ফুটি উঠিছে। অন্যহাতে 'ইয়াৰুঙ্গম', 'মৃত্যুঞ্জয়', 'মুনিচুনিৰ পোহৰ' আৰু 'কালৰ হুমুনিয়াহ'ত গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী আদৰ্শ

প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা গৈছে। ভট্টাচাৰ্যৰ ‘মৃত্যুঞ্জয়’ত স্বাধীনতাকামী জাতীয়তাবাদৰ আৱেগ আৰু ‘ইয়াৰুইঙ্গম’ত আঞ্চলিকতাবাদ স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশিত হৈছে। ৰাজনৈতিক উপন্যাস কেইখনত প্ৰকাশ পোৱা আদৰ্শ দুটি তলত উল্লেখ কৰি আলোচনা কৰা হ’ল-

(ক) মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদী চিন্তাৰ উপন্যাসসমূহৰ বিশ্লেষণ।
(খ) গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী (আঞ্চলিকতাবাদ, জাতীয়তাবাদ) চিন্তাৰ উপন্যাসসমূহৰ বিশ্লেষণ)

(ক) মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদী চিন্তাৰ উপন্যাসসমূহৰ বিশ্লেষণ ঃ

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ‘ৰাজপথে-ৰিঙিয়াই’ উপন্যাসখন মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদী আদৰ্শৰ এখন সফল উপন্যাস। ঔপন্যাসিকৰ যি আদৰ্শ, সেই আদৰ্শ উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ মোহনৰ জৰিয়তে দাঙি ধৰিছে। উপন্যাসখনত মোহনৰ ৰাজনৈতিক আদৰ্শৰ লক্ষণীয় গুণটো হৈছে- আপোচহীনতা। পুঁজিবাদৰ বিৰুদ্ধে তাৰ যি বিপ্লৱী আদৰ্শ সেই আদৰ্শৰ ক্ষেত্ৰত আপোচমুখী হোৱা নাই। এই ক্ষেত্ৰত ভট্টাচাৰ্যৰ ৰাজনৈতিক আদৰ্শ এটিও প্ৰতিফলিত হৈছে। ভট্টাচাৰ্যই কৈছে-“সেই সময়ত মই সমাজবাদী ৰাজনৈতিক দৰ্শনৰ প্ৰতি গভীৰভাৱে আকৃষ্ট হৈছিলো। এতিয়াও অৱশ্যে মই সেই দৰ্শনত বিশ্বাস কৰো।”[৪] বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ মোহন এটা আদৰ্শ চৰিত্ৰ। এই চৰিত্ৰৰ জৰিয়তে ভট্টাচাৰ্যই ভাৰতীয় গণতন্ত্ৰৰ ওপৰত আস্থা নাৰাখি এক সৰ্বাত্মক বিপ্লৱ হোৱাটো বিচাৰে। যিয়ে জণসাধাৰণক দিব পাৰিব প্ৰকৃত স্বাধীনতা। সেই কাৰণে মোহনে ঐতিহাসিক ১৫ আগষ্টৰ দিনা মুকলিভাৱে ৰাইজক জনাইছে যে ব্ৰিটিছৰ পৰা খুজি অনা স্বাধীনতাই পুঁজিপতিকহে প্ৰকৃতাৰ্থত স্বাধীন কৰিছে, সাধাৰণ জনগণক নহয়। ভট্টাচাৰ্যৰ সমাজবাদী আদৰ্শক প্ৰভাৱিত কৰিছে টমপেইন, বয়েন, লিনকন, মাৰ্ক্স, লেলিন, গান্ধী, ইগনেজিঅ, চাইলন ইত্যাদি সমাজবাদী নেতাসকলে। উপন্যাসখনত দেখা যায় মোহনৰ আদৰ্শতো এইকেইজন নেতাৰ আদৰ্শ আছে। ভট্টাচাৰ্যই সুন্দৰ কৌশল অৱলম্বন কৰি মোহনৰ আদৰ্শত ইগনেজিঅ চাইলনে ক্ৰিয়া কৰি আছে তাক দেখুৱাইছে। মোহনে ৰেলেৰে গৈ আছে, সি দেখিছে যাত্ৰীয়ে ‘ব্ৰেড এণ্ড ওৱাইন’ পঢ়ি আছে, যিখন কিতাপত ফেচিষ্ট ইটালীৰ বুকুত হোৱা মুক্তি যুদ্ধৰ কাহিনী আছে। প্ৰকৃত বিপ্লৱী মোহনে আদৰ্শৰ ক্ষেত্ৰত পালন কৰা আপোচহীনতা সঁচা বিপ্লৱৰ আদৰ্শ। গতিকে, ভট্টাচাৰ্যৰ ‘ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়’ উপন্যাসখন নিঃসন্দেহে মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শৰ ভেটিত ৰচা।

‘প্ৰতিপদ’ বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ দ্বিতীয়খন মাৰ্ক্সবাদী আদৰ্শৰ উপন্যাস। ‘ৰাজপথে-ৰিঙিয়ায়’ উপন্যাসত প্ৰকাশিত যি আদৰ্শ সেই আদৰ্শৰ দৃঢ়স্থিতি ‘প্ৰতিপদ’ত ৰক্ষিত হোৱা নাই। এইয়া সম্ভৱত ভট্টাচাৰ্যৰ পোন্ধৰ বছৰৰ (১৯৫৫-৭০)পাছৰ ৰাজনৈতিক পৰিৱৰ্তন। চেটাৰ্জীৰ আদৰ্শই মুখ্যত ৰাজনৈতিক কাহিনীটো আগবঢ়াই নিছে। চেটাৰ্জীৰ মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শ মন কৰিবলগীয়া। গিয়াছউদ্দিনৰ লগ লাগি চেটাৰ্জীয়ে বনুৱাসকলক সংগ্ৰামী কৰি তুলিছে। চেটাৰ্জীৰ মৃত্যুৰ পিছত বনুৱাসকলে তেওঁৰ আদৰ্শ এনেদৰে সোঁৱৰণ কৰিছে- “এই যে চেটাৰ্জী আছিল, তেওঁ মাজে মাজে কৈছিল চাকৰি আৰু সুখ বিচাৰিলেই নহ’ব। ক্ষমতা বিচাৰিব লাগিব, মানে বনুৱা ৰজা হ’ব লাগিব। ৰুছ দেশত হৈছে এনেকুৱা। তাত গাইগুটীয়া মালিক নাই।”[৫] মাৰ্ক্সৰ ‘ডাচ কেপিটেল’, লেনিনৰ ‘চেষ্ট এণ্ড ৰিভ’লিউচন’ পঢ়ি চেটাৰ্জীয়ে ডায়েৰীত লিখিছিল— "I live for others.........I shall have to live for workers."[৬] আচলতে চেটাৰ্জীয়ে মনে-প্ৰাণে বনুৱাৰ উন্নতি হোৱটো বিচাৰিছিল। চেটাৰ্জীৰ বিপ্লৱী সহকৰ্মী গিয়াছুদ্দিনে মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শকে মানিছিল যদিও পিছলৈ জাতীয়তাবাদী মনোভাৱ পোষণ কৰা দেখা যায়। গতিকে দেখা যায় ‘ৰাজপথে-ৰিঙিয়ায়’ত ভট্টাচাৰ্যৰ যি আপোচহীন মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শ ‘প্ৰতিপদ’ত গতি সলাই নিম্নমুখী হৈছে।

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ শেহতীয়া মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শৰ উপন্যাস হ’ল ‘ৰঙামেঘ’। উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় ৰাজনৈতিক চৰিত্ৰ হ’ল-চৌধুৰী। শাসনভাৰৰ দায়িত্ব চৌধুৰীহঁতে বহুবছৰ ধৰি লোৱাত চৌধুৰীৰ শাসনৰ প্ৰতি মোহ ভংগ হৈছে। তেওঁ ভাৱে দেশৰ জনগণৰ শাসনৰ দায়িত্ব লৈ তেওঁ যেন একো উন্নতি কৰিব নোৱাৰিলে। সেয়ে কৈৱৰ্ত সমাজৰ পৰা আদৰ্শবাদী আনন্দই পৰৱৰ্তী নিৰ্বাচনত উঠিব বুলি জানি চৌধুৰী সুখী হৈছে। উপন্যাসখনত আনন্দ চৰিত্ৰৰ মাজেৰে সমাজবাদী আদৰ্শৰ

প্রকাশ ঘটিছে। চৌধুৰীৰ দলীয় ৰাজনৈতিক বন্ধু হুছেইন আৰু মজুমদাৰক, আনন্দই সমাজৰ পৰিৱৰ্তনৰ প্ৰয়োজনীয়তা আৰু ইচ্ছাৰ কথা জনাইছে। আনন্দই লগতে জনাইছে- "মই মাও চে তুঙৰ ভাষাৰে ক'ব খোজো- We must not depend on secretaris or lack lenchers. We must do things our selves" [৭] আনন্দৰ ক্ষেত্ৰত উপন্যাসখনৰ প্ৰথম অৱস্থাত তাৰ ভাৱ চিন্তাত মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শ থাকিলেও শেষৰ পিনে সি ফালৰি কাটিছে। কিয়নো চৌধুৰীৰ দলত অন্তৰ্ভুক্ত নহৈ কেনে ধৰণৰ দলৰ পোষকতা কৰিব সেইটো উল্লেখ নকৰাকৈয়ে ধৰিব পাৰি যে- সি কৈৱৰ্ত সম্প্ৰদায়টোক লৈ নিৰ্দলীয় প্ৰাৰ্থী হিচাপে থিয় হ'ব। এনেধৰণৰ গোষ্ঠীমূলক ভাৱ মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদৰ লক্ষণ নহয়। ভট্টাচাৰ্যৰ এই উপন্যাসখনত যদিও মাৰ্ক্সীয় সমাজবাদৰ ধ্বনি শুনা যায় পিছলৈ কিন্তু ই দুৰ্বল হোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

(খ) গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী (আঞ্চলিকতাবাদ, জাতীয়তাবাদ) চিন্তাৰ উপন্যাসসমূহৰ বিশ্লেষণ ঃ

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'ইয়াৰুইঙ্গম' স্বাধীনতাকামী আঞ্চলিকতাবাদ প্ৰতিফলিত হোৱা, দুটা পৰস্পৰ বিৰোধী ৰাজনৈতিক আদৰ্শৰ সংঘৰ্ষ দেখুওৱা এখন সফল ৰাজনৈতিক উপন্যাস। নগা পাহাৰৰ পটভূমি লৈ, নগাৰ স্বাধীনতাকামী ৰাজনৈতিক নৱজাগৰণৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি উপন্যাসৰ কাহিনী আগবাঢ়িছে। নগাসকলৰ মাজৰ দুজন শিক্ষিত, অগ্ৰগামী ডেকাই এই ৰাজনৈতিক জাগৰণটোক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। কিন্তু, দুয়োজনৰ আদৰ্শ পৃথক, একে আদৰ্শৰে নগাসকলক নেতৃত্ব দিব নোৱাৰা কাৰণেই ৰাজনৈতিক সংঘৰ্ষ আহি পৰিছে। এজনে বিচাৰে গান্ধীৰ আদৰ্শৰে স্বাধীনতা আৰু আন এজনে বিচাৰে নেতাজী সুভাষ বসুৰ আদৰ্শ। উপন্যাসত ৰিশ্বাঙ গান্ধীবাদী আদৰ্শৰ পোষক। তাৰ কাৰণে স্বাধীনতা অহাৰ সহজ পথটোৱে হ'ল- অহিংস গান্ধী আদৰ্শ। পাশ্চত্য শিক্ষাৰে শিক্ষিত ৰিশ্বাঙে নানা সংঘাতৰ পিছতো আদৰ্শচ্যুত হোৱা নাই। আনহাতে নগা পাহাৰত কেৱল নগাৰ বাবে আঞ্চলিকতাবাদী স্বাধীনতাৰ দাবীদাৰ হ'ল ভিডেশ্যেলী। সি নেতাজীৰ আদৰ্শ মানি নগা পাহাৰত কেৱল নগাৰ স্বায়িত্ব আৰু স্বাধীনতাৰ কথা চিন্তা কৰিছে। দৰকাৰ হ'লে সি যুদ্ধ কৰি নিজে মৰিব, তথাপি তাৰ আদৰ্শৰ পৰা বিচ্যুত নহয়। উপন্যাসখনত ভিডেশ্যেলীৰ শক্তি অধিক সক্ৰিয় হ'লেও, এই সংক্ৰান্তত ভট্টাচাৰ্যৰ দৃষ্টিভংগী আছিল সশস্ত্ৰ সংগ্ৰামে সভ্যতা আৰু মানৱজাতিক ধ্বংস কৰে। স্বাধীনতা অনাৰ ক্ষেত্ৰত ঔপন্যাসিকৰ কথা হ'ল- "হিংসাত্মক সংগ্ৰাম কৰি এখন-দুখন ট্ৰাক পুৰি স্বাধীনতা লাভ কৰিব নোৱাৰি।" [৮] ঔপন্যাসিকে মহাত্মা গান্ধীৰ সুৰত সুৰ মিলাই অহিংসাৰ পথ যে সত্য আৰু ভগৱানৰ পথ তাক উপন্যাসত উল্লেখ কৰিছে। 'ইয়াৰুইঙ্গম'ত ঔপন্যাসিকৰ স্পষ্ট ৰাজনৈতিক মতাদৰ্শ হ'ল- অহিংসা বিপ্লৱ স্বাধীনতাৰ বাবে শ্ৰেষ্ঠ। উপন্যাসখনত প্ৰবল আঞ্চলিকতাবাদী ভাৱ প্ৰকাশ হ'লেও, ৰিশ্বাঙৰ আদৰ্শত "নগা পাহাৰলৈ এদিন শান্তি আহিবই, ইয়াত তাৰ আদৰ্শৰ ইয়াৰুইঙ্গম বা ৰাইজৰ শাসন প্ৰৱৰ্ত্তিত হ'বই।" [৯] এইয়া নিঃসন্দেহে ঔপন্যাসিকৰ গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী আদৰ্শৰ প্ৰতিফলন।

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'মৃত্যুঞ্জয়' গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী চিন্তাৰে জাতীয়তাবাদী আদৰ্শ প্ৰকাশ হোৱা দ্বিতীয়খন উপন্যাস। এই উপন্যাসত গান্ধীৰ অহিংস আদৰ্শকেই শ্ৰেষ্ঠ পথ বুলি কোৱা হৈছে। গান্ধীৰ অহিংসা নীতিৰে স্বাধীনতা সংগ্ৰামত নমা কিছু সংগ্ৰামীয়ে ফালৰি কাটি কেনেকৈ স্বাধীনতা লাভৰ পথ সহজ কৰিবলৈ বিচাৰিছিল তাকেই 'মৃত্যুঞ্জয়'ত কোৱা হৈছে। স্বাধীনতাৰ কাৰণে হিংসা-অহিংসাৰ যি সংঘৰ্ষ সিয়ে উপন্যাসৰ মুখ্য বিষয়। মায়ং অঞ্চলৰ কংগ্ৰেছৰ সভাপতি মধুৰে মহানন্দ গোহাইৰ কথাত ৰেল বগৰোৱাৰ দৰে হিংসাত্মক কাৰ্যত লিপ্ত হৈ ভাবিছে-"এইটো কাম গান্ধীৰ সত্যাগ্ৰহ নহয়। এইটো জীৱ বধৰ কাম।" [১০] উপন্যাসত ধনপুৰৰ চৰিত্ৰৰ বাহিৰে বাকীবোৰ চৰিত্ৰত আদৰ্শৰ সংঘৰ্ষ আছে। 'মৃত্যুঞ্জয়'ত ভাৰতীয় জাতীয়তাবাদী আন্দোলনৰ সময়ত যি চিন্তা তাক স্পষ্ট ৰূপত ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰিছে আৰু স্বাধীনতাৰ কাৰণে অহিংস গান্ধীবাদী আন্দোলন শ্ৰেষ্ঠ বুলি কৈছে।

'মুনিচু নিৰ পোহৰ'ত বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী আদৰ্শ প্ৰতিফলিত হৈছে। এই উপন্যাসখনত ইন্দিৰা গান্ধী নেতৃত্বাধীন ভাৰতীয় গণতন্ত্ৰৰ

জৰুৰীকালীন ত্ৰাসময় সময়চোৱাৰ কদৰ্যৰূপ চিত্ৰিত কৰা হৈছে। উপন্যাসখনত মুখ্য আদৰ্শবাদী চৰিত্ৰ হ'ল মীনধৰ। মীনধৰে মৃত বৰ খুড়ীয়েকৰ সকাম কৰিবলৈ গুৱাহাটীৰ পৰা গাঁৱলৈ আহিছিল। আচলতে মীনধৰৰ এনে সকাম আদিত আস্থা নাই। মীনধৰে ভাৱে-"এতিয়া মানুহৰ যুগ নাই, মাৰ্ক্সৰ যুগ।"[১১] গাঁৱলৈ আহি মীনধৰে সমাজ সেৱাৰ কামত ব্ৰতী হৈ অধ্যাপকৰ চাকৰি এৰি দি, সি সমাজ পৰিৱৰ্তনৰ আশাৰে কৃষক সংঘত জড়িত হৈ পৰে। উপন্যাসখনত জৰুৰীকালীন সময়চোৱাত গণতন্ত্ৰৰ সম্পূৰ্ণৰূপে অপব্যৱহাৰ দেখুৱাইছে। এই সময়চোৱাত সৎ, নিৰ্দোষী মানুহক জেলত ভৰাই, পৰিয়ালৰ কেনেকৈ অন্যায় কৰিছিল তাৰ উল্লেখ আছে। চৰকাৰৰ এনে অন্যায়ৰ কাৰণে মীনধৰহঁতে গোপনে চৰকাৰৰ বিৰুদ্ধে প্ৰচাৰ চলাইছিল আৰু তাৰ কাৰণে সোনকালেই সিহঁত চৰকাৰৰ চকুত ধৰা পৰে। উপন্যাসখনত মীনধৰৰ আদৰ্শ দোদুল্যমান ৰূপত পোৱা যায়। সমাজৰ উন্নতিৰ কাৰণে মাৰ্ক্সবাদ নে গান্ধীবাদ শ্ৰেয় এই লৈ তাৰ মানসিক সন্দেহ আহিছে। ঔপন্যাসিকে মীনধৰৰ আদৰ্শৰ শেষ সিদ্ধান্ত হিচাপে কৈছে- "গান্ধীজীয়ে আৰু বিনোৱাই দৰ্শোৱা গ্ৰামোন্নয়নৰ কাৰ্যসূচী গ্ৰহণ কৰি আমি ইয়াত কাম কৰিব খুজিছিলো।... আচলতে আন্দোলন হ'ল গ্ৰামোন্নয়ৰ কাম। তাতেই প্ৰকৃত সলনি নিহিত হৈ আছে।"[১২] এইয়া নিশ্চিতভাৱে গান্ধীৰ গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদ প্ৰকাশিত হৈছে।

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'কালৰ হুমুনিয়াহ' গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদী আদৰ্শ প্ৰতিফলিত শেহতীয়া উপন্যাস। উপন্যাসখনৰ মুখ্য ৰাজনৈতিক ঘটনা হ'ল- সাম্ৰাজ্যবাদী শাসকৰ বিৰুদ্ধে বনুৱাৰ বিদ্ৰোহ। চক্ৰাই চাহবাগিচাৰ বনুৱাসকলক ইংৰাজে কৰা শোষণ আৰু তাৰ বিৰুদ্ধে বনুৱাৰ আন্দোলন উপন্যাসৰ মূল কাহিনী। এই উপন্যাসৰ বনুৱা আন্দোলনত সু-সংগঠিত নেতাৰ নেতৃত্ব নোহোৱা বাবে আন্দোলনে সফল ৰূপ নাপাই ভাঙি গৈছে। উপন্যাসত বনুৱাৰ আন্দোলনটোক পৰোক্ষভাৱে উচটাইছে গান্ধীৰ ভলন্টিয়াৰসকলে। ঔপন্যাসিকে কৈছে- "ভলন্টিয়াৰবোৰে এটা ডাঙৰ ষড়যন্ত্ৰ কৰিছে এই বাগানত। বনুৱা আৰু বাবুক বিশৃংখল হ'বলৈ, ৰাজদ্ৰোহী হ'বলৈ শিকাইছে।"[১৩] এই উপন্যাসত প্ৰতিপদৰ নিচিনা স্পষ্ট ৰূপত মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শৰে সংগঠিত বনুৱা সংগ্ৰাম চিত্ৰিত হোৱা নাই। ইংৰাজক খেদি পঠাই বনুৱাই ৰাজত্ব কৰিবলৈ ইচ্ছা কৰাৰ কথাও প্ৰকাশ হোৱা নাই বা কোনো শ্ৰেণী সংঘৰ্ষৰ জৰিয়তে সমাজ পৰিৱৰ্তন কৰাৰ ইংগিতো নাই। উপন্যাসখনত যি ৰাজনৈতিক ভাৱ প্ৰকাশিত হৈছে সেয়া গান্ধীৰ ভলন্টিয়াৰৰ জাতীয়তাবাদী ভাৱহে।

৪.০০ উপসংহাৰ ঃ

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ আটাইকেইখন ৰাজনৈতিক উপন্যাস বিশ্লেষণ কৰি এটা কথা স্পষ্ট ৰূপত পাব পাৰি যে-ভট্টাচাৰ্যই কোনো এটা বিশেষ ৰাজনৈতিক আদৰ্শকে নিজৰ আদৰ্শ বুলি জোৰ দি কোৱা নাই। তেওঁ কোনো ৰাজনৈতিক দলৰ মতবাদ বা নীতি আদৰ্শ উপন্যাসকেইখনত প্ৰচাৰ কৰা নাই। ভট্টাচাৰ্যই প্ৰাক্‌স্বাধীনতা আৰু স্বাধীনোত্তৰ কালৰ প্ৰথমচোৱা ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতিৰ পটভূমি লৈ উপন্যাসকেইখনৰ বিষয়বস্তু সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশ কৰিছে। ৰাজনৈতিক উপন্যাস ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যক সাৰ্থক ঔপন্যাসিক বুলি ক'ব পাৰি।

'বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক চেতনা' শীৰ্ষক আলোচনাৰ পৰা তলত দিয়া সিদ্ধান্তকেইটাত উপনীত হ'ব পৰা গ'ল-

১। বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই প্ৰতিখন ৰাজনৈতিক উপন্যাসত ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপটত অসমক সাঙুৰি একোটা বিশেষ ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতিৰ উল্লেখ কৰিছে।

২। ৰাজনৈতিক উপন্যাসকেইখনত ঔপন্যাসিক বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই বিশেষভাৱে দুটা ৰাজনৈতিক আদৰ্শক প্ৰতিফলিত কৰিছে- এটা হৈছে মাৰ্ক্সবাদ আনটো গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদ।

৩। বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ইয়াৰুইঙ্গম উপন্যাসত নগা জনজাতীয় পটভূমিত টাংখুল নগাৰ জাতীয়তাবাদী আন্দোলনৰ ছবি বিশেষভাৱে প্ৰতিফলিত কৰিছে আৰু গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদৰ কথা উনুকিয়াইছে।

৪। ঔপন্যাসিক বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই ৰাজনৈতিক উপন্যাসকেইখনৰ জৰিয়তে গণতান্ত্ৰিক সমাজবাদক শ্ৰেষ্ঠ বুলি উল্লেখ কৰিছে। ❑

অন্ত্যটীকা ঃ

১। প্রফুল্ল কটকী ঃ স্বৰাজোত্তৰ অসমীয়া উপন্যাস সমীক্ষা, পৃ. ৪১
২। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ ইয়াৰুইঙ্গম, পৃ. ৩২৪
৩। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ মৃত্যুঞ্জয়, পৃ. ৭
৪। নগেন শইকীয়া (সম্পা.) ঃ অসমীয়া সাহিত্যৰ অভিলেখ, পৃ. ২০১
৫। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ প্রতিপদ্, পৃ. ২৮০
৬। সদ্যোক্ত ঃ পৃ. ৬
৭। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ ৰঙামেঘ, পৃ. ১০৪
৮। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ ইয়াৰুইঙ্গম, পৃ. ২৩৩
৯। সদ্যোক্ত ঃ পৃ. ৩৮৪
১০। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ মৃত্যুঞ্জয়, পৃ. ৪৬
১১। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ মুনিচুনিৰ পোহৰ, পৃ. ৩১
১২। সদ্যোক্ত ঃ পৃ. ১৩৮
১৩। বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ কালৰ হুমুনিয়াহ, পৃ. ১১৯

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

১। কটকী, প্রফুল্ল ঃ স্বৰাজোত্তৰ অসমীয়া উপন্যাস সমীক্ষা, বীণা লাইব্রেৰী, গুৱাহাটী, ১৯৭৯
২। ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.) ঃ এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস, জ্যোতি প্রকাশন, গুৱাহাটী, ২০১২
৩। দাস, অমল চন্দ্র (সম্পা.) ঃ অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্রমা, বনলতা, গুৱাহাটী, ২০১২
৪। বৰগোহাঞি, হোমেন ঃ বিংশ শতাব্দীৰ অসমীয়া সাহিত্য, বনলতা, ডিব্রুগড়, ১৯৮৭
৫। বৰগোহাঞি, হোমেন ঃ অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড), আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, অসম, গুৱাহাটী, ২০১৭
৬। বৰুৱা, প্রহ্লাদ কুমাৰ ঃ উপন্যাস, বনলতা, ডিব্রুগড়, ১৯৮৩
৭। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ ইয়াৰুইঙ্গম, লয়ার্ছ বুকষ্টল, গুৱাহাটী, ১৯৬০
৮। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ কালৰ হুমুনিয়াহ, অসম লেখক সমবায় সমিতি, গুৱাহাটী, ১৯৮২
৯। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ প্রতিপদ, সাহিত্য প্রকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৭০
১০। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ মৃত্যুঞ্জয়, চন্দ্র প্রকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৭০
১১। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ মুনিচুনিৰ পোহৰ, ভৱানী পাব্লিছিং কোঃ কনচার্য, কলিকতা, ১৯৭৫
১২। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ ৰঙামেঘ, চন্দ্র প্রকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৭৬
১৩। ভট্টাচার্য, বীৰেন্দ্রকুমাৰ ঃ ৰাজপথে ৰিঙিয়াই, চন্দ্র প্রকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৫৫
১৪। ভট্টাচার্য, নলিনীধৰ ঃ মূল আৰু ফুল, আর্নাল এম্পৰিয়াম, নলবাৰী, ১৯৮৩
১৫। ভৱালী, শৈলেন ঃ উপন্যাস, বিচাৰ আৰু বিশ্লেষণ, ময়ূৰ প্রকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৭৭
১৬। শর্মা, গোৰিন্দ্রপ্রসাদ ঃ বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য ঃ ঔপন্যাসিক, বৰুৱা এজেন্সি, গুৱাহাটী, ১৯৮৭
১৭। শর্মা, সতেন্দ্রনাথ ঃ অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা, সৌমাৰ প্রকাশ গুৱাহাটী, ২০১৩
১৮। শইকীয়া, নগেন (সম্পা.) ঃ আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ অভিলেখ, চন্দ্রকান্ত সন্দিকৈ ভৱন, যোৰহাট, ১৯৭৭
১৯। শর্মা, হেমন্তকুমাৰ (সম্পা.) ঃ বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্যৰ সাহিত্যকৃতি, চন্দ্রপ্রকাশ, টিহু, ১৯৮৩

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমীয়া ভাষাৰ ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰত সামাজিক প্ৰেক্ষাপটৰ ভূমিকা ঃ এটি প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানভিত্তিক অধ্যয়ন

ভায়োলিনা ডেকা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৮৬৩৮২১৭২৯৯
dekaviolina1@gmail.com

ড° দীপামণি হালৈ মহন্ত

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয

সাৰাংশ ঃ

নিৰ্দেশক (Deixis) শব্দবোৰে প্ৰসংগ অনুযায়ী ভাষা ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে নিৰ্দেশাত্মক প্ৰকাশভংগীক (Deictic Expression) কাৰ্যকৰী কৰি তোলে। এনে প্ৰকাশভংগীয়ে ব্যক্তিৰ মাজত ভাষিক যোগাযোগ সাধনত প্ৰভাৱ পেলায়। কোনে, কাৰ লগত, ক'ত, কেতিয়া, কাৰ কথা কৈছে এনে প্ৰশ্নৰ উত্তৰত ক্ৰিয়া কৰা নিৰ্দেশক শব্দই ব্যক্তিৰ মাজত ভাষিক যোগাযোগক প্ৰভাৱিত কৰিব পাৰে। অৰ্থ উদ্ধাৰত প্ৰসংগৰ জ্ঞানে ক্ৰিয়া কৰা নিৰ্দেশক (Deixis) শব্দৰ আলোচনা প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানৰ (Pragmatics) অধ্যয়নৰ অন্তৰ্গত। স্থান-কাল-পাত্ৰ অনুযায়ী নিৰ্দেশক শব্দৰ প্ৰকাৰ ভিন্ন হয়। কথোপকথনত ব্যক্তিৰ ভূমিকাক চিনাক্তকৰণৰ সৈতে সদায় ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দ জড়িত হৈ থাকে। সামাজিক প্ৰেক্ষাপট অনুযায়ী ব্যক্তিৰ ভূমিকা বেলেগ বেলেগ হ'ব পাৰে। তাৰ লগে লগে পৰিৱৰ্তিত সামাজিক সম্বন্ধ অনুযায়ী ব্যক্তি নিৰ্দেশকৰ ৰূপো বেলেগ হয়। ফলত তেনে নিৰ্দেশকৰ অৰ্থ বুজিবলৈ সামাজিক প্ৰেক্ষাপট জনা দৰকাৰ। সমাজ অন্তৰ্ভুক্ত সদস্য হিচাপে ব্যক্তিক নিৰ্দেশনা দিবলৈ যাওঁতে ব্যৱহাৰৰ উপলক্ষ্যক প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে বিচাৰ কৰিব পৰা যায়। আমাৰ এই আলোচনা পত্ৰখনিৰ জৰিয়তে ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ আৰু তাৰ বোধগম্যতাত ক্ৰিয়া কৰা সামাজিক প্ৰেক্ষাপটৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানৰ আধাৰত বিচাৰ কৰি চাবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

বোধগম্যতা, ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক, প্ৰসংগ, প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞান, সামাজিক কাৰক আদি।

১.১ যোগাযোগৰ মাধ্যম হিচাপে ভাষাৰ ব্যৱহাৰিক দিশত ধ্বনি, ৰূপ, বাক্যৰ পোনপটীয়া বা আভিধানিক অৰ্থতকৈ কোনে, কাৰ লগত, ক'ত, কেতিয়া, কেনেদৰে কথা কয় ইত্যাদি প্ৰাসংগিক দিশৰ ওপৰতহে বেছিকৈ গুৰুত্ব দিয়া দেখা যায়। অৰ্থাৎ ব্যক্তিৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ লগত প্ৰসংগ ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত। প্ৰসংগ আৰু ব্যক্তিৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ মাজৰ সম্বন্ধৰ

আলোচনাক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞান (Pragmatics) নামৰ বিদ্যায়তনিক শাখাটো গঢ় লৈ উঠিছে। জৰ্জ য়ুলেৰ (George Yule) ভাষাত "Pragmatics is the study of the relationship between linguistic forms and the users of those forms."[১] ভাষিক প্ৰকাশভংগীৰ জৰিয়তে কোনো ব্যক্তি, বিষয় বা পৰিস্থিতিক নিৰ্দিষ্ট কৰি দেখুৱাব পৰা ধাৰণাকো প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানৰ অধ্যয়নৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পৰা যায়। নিৰ্দেশক হৈছে একপ্ৰকাৰৰ ভাষিক প্ৰকাশভংগী যাৰ প্ৰাসংগিক অৰ্থ সদায় বক্তাকেন্দ্ৰিক হোৱা দেখা যায়। বক্তাই একেখিনি নিৰ্দেশক শব্দৰে ভিন্ন ব্যক্তিক বুজাব পাৰে। যেনে ঃ

(ক) ৰীতা মোৰ সম্পৰ্কীয় ভনী। তাই শিৱসাগৰত থাকে।

(খ) আঘোণীৰ কথা কৈছা তাই মানুহজনী বৰ ভাল।

এই দুয়োটা উদাহৰণতে 'তাই' শব্দৰ অৰ্থ ভিন্ন হৈছে। প্ৰথম (ক) উদাহৰণত 'তাই' নিৰ্দেশকে 'ৰীতা'ৰ অস্তিত্বক নিৰ্দিষ্ট কৰি দেখুৱাইছে। গতিকে 'ৰীতা' হৈছে উল্লেখক (Reference) আৰু 'তাই' হৈছে ৰীতা উল্লেখকৰ আদ্যবৃত্তি (Anaphora)। একেদৰে (খ) উদাহৰণত 'আঘোণী' উল্লেখকৰ প্ৰসংগত 'তাই' শব্দৰ ব্যৱহাৰ হৈছে। গতিকে একেটা 'তাই' শব্দই দুটা ভিন্ন প্ৰসংগত দুটা ভিন্ন অৰ্থ আৰোপ কৰিব পাৰিছে। এনে দিশেৰে চাবলৈ গ'লে 'তাই' হৈছে এটা নিৰ্দেশক শব্দ। জৰ্জ য়ুলে কোৱা অনুসৰি সত্তা আৰু শব্দৰ মাজত কোনো প্ৰত্যক্ষ সম্পৰ্ক নাই। সেয়ে বক্তাই ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ জৰিয়তে কি অভিপ্ৰায় প্ৰকাশ কৰিব বিচাৰিছে বা কাৰ অস্তিত্বক বুজাব বিচাৰিছে সেয়া একমাত্ৰ শ্ৰোতাই অনুমান কৰিলোৱা সামৰ্থৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল হয়। এইদৰে একেখিনি ভাষিক সমলৰে ভিন্ন প্ৰাসংগিক ব্যাখ্যা হ'ব পৰা ধাৰণাক প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে বিচাৰ কৰিব পৰা যায়।

ইংৰাজীত 'Deixis' শব্দটো গ্ৰীক ভাষাৰ লোৱা হৈছে, ইয়াৰ অৰ্থ হৈছে ভাষাৰ জৰিয়তে 'নিৰ্দিষ্ট কৰি দিয়া' বা 'আঙুলিয়াই দিয়া'।[২] নিৰ্দেশকৰ সংজ্ঞালৈ মন কৰিলে দেখা যায় ঃ 'deixis concerns the ways in which languages encode or grammaticalize features of the context of utterance or speech event'[৩]। ভাষা ব্যৱহাৰৰ দৃষ্টিৰে জৰ্জ য়ুলে নিৰ্দেশক শব্দক তিনিটা ভাগত ভগাইছে।[৪]

(১) ব্যক্তি নিৰ্দেশক (person deixis)

(২) স্থানবাচক নিৰ্দেশক (spatial deixis)

(৩) কালবাচক নিৰ্দেশক (temporal deixis)

প্ৰথম পুৰুষ, দ্বিতীয় পুৰুষ আৰু তৃতীয় পুৰুষ অনুযায়ী ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশকক য়ুলে আকৌ তিনিটা ভাগত ভগাইছে এইদৰে--- "Person deixis clearly operates on a basic three-part division, exemplified by the pronouns for first person ('I'), second person ('you'), and third person ('he', 'she'. or 'it')"[৫]। একেদৰে অসমীয়া ভাষাতো প্ৰথম পুৰুষ 'মই' বা 'আমি', দ্বিতীয় পুৰুষ 'তই', 'তুমি', 'আপুনি' আৰু তৃতীয় পুৰুষবাচক 'সি', 'তাই', 'তেওঁ', 'তেখেত' হৈছে বাক্-কাৰ্যত অংশগ্ৰহণকাৰীৰ ভূমিকাক নিৰ্দিষ্ট কৰি দেখুৱাব পৰা একো একোটা নিৰ্দেশক শব্দ। ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশাত্মক প্ৰকাশভংগীয়ে কথোপকথনত অংশগ্ৰহণ কৰা বক্তা-শ্ৰোতাৰ উপৰি কথোপকথনত প্ৰত্যক্ষভাৱে অংশগ্ৰহণ নকৰা কিন্তু কথনৰ সৈতে পৰোক্ষভাৱে জড়িত আন ব্যক্তিৰো নিৰ্দেশনা দিব পাৰে। প্ৰথম পুৰুষে সদায় বক্তা আৰু দ্বিতীয় পুৰুষে সদায় শ্ৰোতাৰ ভূমিকাক গ্ৰহণ কৰা দেখা যায়। তৃতীয় পুৰুষে বাক্-কাৰ্যত অংশগ্ৰহণ নকৰা আন ব্যক্তিৰ সৈতে বক্তাৰ সম্পৰ্কক বুজাব পাৰে। অসমীয়া সমাজত দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় পুৰুষৰ তুচ্চাৰ্থক, মান্যাৰ্থক আৰু অধিক মান্যাৰ্থক এই তিনিটা ৰূপৰ নিৰ্দেশাত্মক প্ৰকাশভংগীৰ পৰা ব্যক্তিৰ সামাজিক স্থিতি, বক্তা-শ্ৰোতাৰ সামাজিক সম্পৰ্কক বিচাৰ কৰিব পৰা যায়। আনকি তৃতীয় পুৰুষৰ তুচ্চাৰ্থক ৰূপে ব্যক্তিৰ লিংগকো নিৰ্দিষ্ট কৰি দেখুৱাব পাৰে। অসমীয়া ভাষাত ব্যক্তিক নিৰ্দেশনা দিব পৰাকৈ ভিন্ন যুগৰ সমাজত ভিন্ন ৰূপৰ প্ৰয়োগ আছে। প্ৰাচীন সময়ৰ পৰা বৰ্তমানলৈ কালভিত্তিত অসমীয়া সমাজ ব্যৱস্থালৈ মন ব্যক্তিক নিৰ্দেশনা দিব পৰাকৈ নিৰ্দেশক শব্দৰ স্বকীয় নিদৰ্শন পাব পৰা যায়। গতিকে ব্যক্তি নিৰ্দেশনাত সামাজিক প্ৰেক্ষাপটৰ ভূমিকাক জানিবলৈ হ'লে প্ৰথমে ভাষা আৰু সমাজৰ সম্পৰ্কৰ প্ৰতি দৃষ্টি দিয়া প্ৰয়োজন।

১.২ ভাষা কোনো এখন সমাজক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লৈ উঠে আৰু সমাজক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই ৰৰ্তি থাকে। ভাষা মানুহৰ যোগাযোগৰ আটাইতকৈ সহজ আৰু খৰতকীয়া মাধ্যম। সমাজৰো মূল হৈছে মানুহ। এজন মানুহেৰে যিদৰে যোগাযোগ সম্ভৱ নহয় সেইদৰে কেৱল এজন মানুহৰ

দ্বাৰা সমাজ গঠনো সম্ভৱ নহয়। সমাজ গঠন হ'বলৈ ব্যক্তিৰ পৰা পৰিয়াল, পৰিয়ালৰ পৰা গোষ্ঠী আৰু গোষ্ঠী বা পৰিয়ালৰ গোটৰ সমষ্টিৰে একোখন সমাজৰ গঠন হয়। ভাষাৰ আলোচনাত এনে সমাজৰ প্ৰাসংগিকতা আছে। কিয়নো যি সামাজিক পৰিবেশত মানুহে বাস কৰে সেই সামাজিক পৰিবেশৰ সুকীয়া বৈশিষ্ট্যখিনি বহু সময়ত ভাষা ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে স্পষ্ট হয়। মানুহে ভাষা কোৱা ক্ষমতা জন্মসূত্ৰে লাভ কৰে, কিন্তু ভিন্ন কাৰক অনুযায়ী তাক ব্যৱহাৰৰ দক্ষতাক সামাজিক পৰিবেশৰ পৰা আহৰণ কৰি লোৱা হয়। 'এই কাৰকবোৰ সামাজিক পৰিৰেশ অনুযায়ী, ব্যক্তিৰ সামাজিক স্থিতি অনুযায়ী, শিক্ষা-দীক্ষা অনুযায়ী, বৃত্তি অনুযায়ী, ক্ষমতা অনুযায়ী, লিঙ্গভেদ অনুসৰি বেলেগ বেলেগ হয়'[৬]। শিক্ষিত লোকৰ কথা-বাৰ্তাৰ সৈতে অশিক্ষিত লোকৰ কথা-বাৰ্তা নিমিলে। সেইদৰে মহিলাৰ মাজত হোৱা কথা-বাৰ্তাৰ সৈতে পুৰুষৰ কথা-বাৰ্তা নিমিলে। একেদৰে উচ্চবিত্ত আৰু নিম্নবিত্তৰ পৰস্পৰৰ প্ৰতি ভাষিক প্ৰকাশভংগীও বেলেগ হয়। গতিকে ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দ ব্যৱহাৰৰ ফালৰ পৰাও সমাজত ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্যক বিচাৰ কৰি চাব পাৰি। কাৰণ ব্যক্তিৰ বয়স, লিংগ, বৃত্তি, পদমৰ্যাদা, শিক্ষা, ধৰ্ম, সামাজিক সম্পৰ্ক আদি সামাজিক কাৰকে ব্যক্তি নিৰ্দেশনাত প্ৰভাৱ পেলায়। সমাজ ব্যৱস্থাৰ আৰম্ভণিৰ পৰাই নিৰ্দেশকৰ ব্যৱহাৰত সামাজিক প্ৰেক্ষাপটৰ গুৰুত্ব দেখা পাওঁ। প্ৰত্যেক সময়ৰ প্ৰত্যেক সমাজত নিৰ্দেশকৰ ব্যৱহাৰ বেলেগ বেলেগ ধৰণৰ হ'ব পাৰে। কালভিত্তিক প্ৰাচীন অসমীয়া সমাজৰ পৰা বৰ্তমানলৈ ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দসমূহলৈ মন কৰিলে এই কথা স্পষ্ট হ'ব।

১.২.১ প্ৰাচীন অসমীয়া সমাজৰ পটভূমিত ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ বিচাৰ কৰিবলৈ গ'লে চতুৰ্দশ শতিকাত ৰচিত লিখিত সাহিত্যক উদাহৰণ হিচাপে ল'ব পাৰোঁ। 'প্ৰহলাদ চৰিত্ৰ' পুথিখনলৈ মন কৰিলে বক্তাই নিজকে 'মই', 'মঞি', 'মোৰ', 'মোহোৰ' শব্দৰে নিৰ্দেশনা দিয়া দেখা গৈছে। যেনে-

য়েবেসে জানিলো মোৰ মিলিলেক মৃত্যু।
মোহোৰ বঙ্শত উপজিলা ধূম্ৰকেতু।।
মন্ত্ৰ বোলে ৰাজা মই জানো বুদ্ধি খানি।
কাষ্ঠ আনি তেতিখনে জালিলা অগনি।।[৭]

'মোৰ', 'মোহোৰ', 'মই' এই তিনিওটা ৰূপেই বক্তা নিৰ্দেশক যদিও দুয়োটা পদৰ দুটা পৰিস্থিতিত ব্যক্তি নিৰ্দেশকৰ অৰ্থ বেলেগ হৈছে। প্ৰথম পদত 'মোৰ', 'মোহোৰ' বুলি নিৰ্দেশিত বক্তাজন যে ৰজা সেয়া দ্বিতীয় বক্তাই কৰা সম্বোধনৰ পৰা স্পষ্ট হৈছে। আকৌ দ্বিতীয় পদৰ 'মই' নিৰ্দেশিত বক্তা হৈছে মন্ত্ৰী। এইদৰে প্ৰথম বক্তাৰ শ্ৰোতা দ্বিতীয় বক্তাৰ ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ হোৱাৰ লগে লগে প্ৰথম বক্তা হৈ পৰিছে শ্ৰোতা।

ইয়াৰ উপৰি কেতিয়াবা বক্তাই বহুবচনৰ ৰূপ একবচনৰ অৰ্থত ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰে। যেনে-

জানা প্ৰাণেশ্বৰী, যুৱৰাজ হুয়া
আমি আছো যেতিক্ষণ।
মোৰ সঙ্গে চলি, আসিবেক সবে
যত পাত্ৰ মন্ত্ৰীগণ।।[৮]

'আমি' আৰু 'মোৰ' বুলি বক্তাই নিজকে নিৰ্দেশনা দিছে। গতিকে এই দুটা ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক অৰ্থ একেটাই। 'আমি' দেখাত বহুবচন যেন লাগিলেও ইয়াত একবচনৰ অৰ্থত ব্যৱহাৰ হৈছে। প্ৰাচীন অসমীয়া সমাজৰ এনে ধাৰণা মধ্যযুগীয় সমাজলৈ প্ৰবাহিত হয় বুলি ধাৰণা কৰিব পাৰি।

আকৌ 'আপুনি' শব্দটোৰেও প্ৰাচীন অসমীয়া সমাজত নিজ অস্তিত্বক বুজোৱা হৈছিল বুলি ধাৰণা কৰিব পাৰি। প্ৰহলাদ-চৰিত্ৰ পুথিখনত পোৱা যায় এইদৰে—

আপোনাক আপুনি নিচিনা কিয় তই।
প্ৰহ্লাদ স্বৰূপে উপজিয়া আচো মই।।[৯]

'আপুনি' শব্দটো ইয়াত ব্যক্তি নিৰ্দেশনাত ব্যৱহাৰ হোৱা নাই, বৰং 'তই' নিৰ্দেশিত শ্ৰোতাৰ স্বয়ং অস্তিত্বকহে বুজাইছে।

সেইদৰে 'প্ৰহলাদ-চৰিত্ৰ' বা মাধৱ কন্দলীৰ ৰামায়ণৰ উদাহৰণলৈ মন কৰিলে প্ৰাচীন অসমীয়া সমাজত শ্ৰোতাক নিৰ্দেশনা দিবলৈ 'তই', 'তঞি', 'তোৰ', 'তোহাৰ', 'তুমি', 'তযু', 'তোমাৰ', 'তোম্বা', 'তোমাসাৰ' আদি শব্দৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়।

প্ৰাচীন অসমীয়া সমাজত তৃতীয় পুৰুষ বুজাব পৰাকৈ 'তাহান', 'তাহাঙ্ক', তান্ক', 'তেৰা', 'তাহাৰ', 'তাক' আদি ভালেমান নিৰ্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। কিন্তু মন কৰিবলগীয়া যে এনেবোৰ নিৰ্দেশক শব্দ ব্যৱহাৰৰ পৰা

তৃতীয় পুৰুষৰ মান্য-তুচ্চৰ ভেদ পোৱা নাযায়। যেনে—

(ক) বিসেসত হন্ত মোৰ হৰি বড় ভাই।
তাঙ্ক সুমৰন্তে হৃদয়ত বৰ ঘাই।।[১০]

(খ) ৰামক ভজিয়া, ভ্রাতৃক ত্যজিয়া,
ৰামত লৈলা শৰণ।।
এতেকে তাহাঙ্ক, পৰম সুহৃদ,
বুলি ৰামে ধৰিলন্ত।[১১]

প্রথমটো উদাহৰণত হৰিৰ অস্তিত্বক 'তাঙ্ক' শব্দৰে নির্দেশনা দিয়া হৈছে। দ্বিতীয় উদাহৰণত 'তাহাঙ্ক' নির্দেশকৰ অর্থ বুজিবলৈ বর্ণনাধর্মী উল্লেখকৰণলৈ দৃষ্টি দিয়া প্রয়োজন। এনে নির্দেশক ব্যৱহাৰৰ অন্তৰালত ক্রিয়া কৰা বক্তাৰ অর্থক বুজিবলৈ শ্রোতাৰ বিষয়ৰ পূর্বজ্ঞান থকা প্রয়োজন।

১.২.২ ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দৰ ক্ষেত্রত প্রাচীন অসমীয়া সমাজৰ ওপৰোক্ত কিছুমান ৰূপ পৰৱর্তী সময়লৈ প্রবাহিত হয় যদিও কিছুমান ৰূপ লোপ পাই আহে। তাৰ ঠাইত নতুন শব্দৰ ব্যৱহাৰ ফলপ্রসু হৈ উঠে। যথা- তৃতীয় পুৰুষ নির্দেশক 'তাই', 'তেঞঃ', 'তেখেতে' আদি শব্দৰ ব্যৱহাৰ প্রাচীন অসমীয়া সমাজত পোৱা নাযায়। মধ্যযুগৰ পৰাহে ইয়াৰ ব্যৱহাৰ হ'বলৈ ধৰে। মধ্যযুগীয় পটভূমি নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ চাবলৈ গ'লে চৰিত সাহিত্য আৰু বুৰঞ্জী সাহিত্যক উদাহৰণ হিচাপে ল'ব পাৰি। 'সি', 'সিহত', 'তাৰা', 'আৰা', 'তেঞঃ', 'এঞঃ', 'তাঞিঃ', 'তেখেত' নির্দেশকৰ ব্যাপক প্রয়োগ মধ্যযুগীয় সামাজিক প্রেক্ষাপটৰ প্রভাৱ বুলি ক'ব পাৰি। যেনে-

(ক) বোলে তোম্রা কলৈ জাই ঃ বোলে আমি শৃশঙ্কৰদেৱৰ ঠাইলৈ জাঞঃ ঃ বোলে তোম্রাৰ গুৰু কোন ঃ বোলে আমাৰ গুৰু তাৰাই [১২]

(খ) মই জগন্নথৰ দাস প্রতাপী ৰাজা, তাঞেঃ এক প্রতাপী ৰাজা। তাঞিৰ লগে প্রীতি কৰিবাক ইছা কৰো।[১৩]

(ক) উদাহৰণত 'তাৰা' নির্দেশকৰ দ্বাৰা কথনৰ সময়ত উপস্থিত নথকা ব্যক্তিজন অর্থাৎ 'শৃশঙ্কৰদেৱৰ' অস্তিত্বক নির্দিষ্টকৈ বুজাইছে। লগতে এই কথাও মন কৰিবলগীয়া যে 'তাৰা' নির্দেশিত ব্যক্তিজন বক্তাতকৈ উচ্চ মর্যাদাসম্পন্ন। একেদৰে (খ) উদাহৰণত 'তাঞেঃ' বা 'তাঞিঃ' বুলি একেজন ব্যক্তিৰে নির্দেশনা দিছে। ভাষিক প্রসংগৰ পৰা কথনৰ সময়ত উপস্থিত নথকা নির্দেশিত ব্যক্তিজন বক্তাৰ সমপর্যায়ৰ বুলি ধৰিব পাৰি। এইদৰে নির্দেশিত ব্যক্তি আৰু বক্তাৰ পদমর্যাদাৰ সম্পর্কৰ ফালৰপৰা ব্যক্তি নির্দেশকৰ ভিন্নতাক চাব পাৰি।

একেটা সময়ৰে আকৌ ধর্মীয় সমাজ আৰু ৰাজনৈতিক সমাজৰ পৰিবেশ অনুযায়ীও নির্দেশাত্মক প্রকাশভংগী বেলেগ বেলেগ হ'ব পাৰে। অসমৰ মধ্যযুগীয় পটভূমিলৈ মন কৰিলে সমসাময়িক দুখন সমাজৰ ধাৰণা পোৱা যায়। মধ্যযুগীয় সত্রীয়া সমাজত কওঁতাই নিজকে 'মই' বুলি কোৱাতকৈ 'আমি' বুলি নির্দেশনা দিয়াত দাস্য ভাব বেছিকৈ প্রকাশ পায় বুলি ধাৰণা প্রবাহিত হৈ আহিছে। গুৰুচৰিতৰ ভাষাই ইয়াৰ প্রমাণ দিয়ে। কিন্তু সত্রীয়া সমাজৰ বাহিৰত বক্তাই নিজকে নির্দেশনা দিয়াৰ ক্ষেত্রত দাস্য ভাব সমানে পোৱা নাযায়। ওপৰৰ দুয়োটা (ক), (খ) উদাহৰণলৈ মন কৰিলে এই কথা ধৰিব পাৰি। আন এটা উদাহৰণ ল'ব পাৰি এইদৰে-

(গ) গুৰু বোলে বৰাপো মহাবিচৈক্ষন সাস্ত্র ভকতৰ সর্ব্বস শ্লোক ভাঙি পদ কৰা জক।। বোলে বাপ আমি কেনেকৈ কৰিম।।[১৪]

আগৰ (ক) উদাহৰণত 'তোম্রা' নির্দেশিত শ্রোতাই আকৌ বক্তাৰ ভূমিকাৰে নিজকে 'আমি' বুলি নির্দেশনা দিছে। একেদেৰে (গ) উদাহৰণতো 'আমি' নির্দেশিত বক্তা এজনেই। এইদৰে সত্রীয়া পৰিবেশত 'মই' নির্দেশনাত প্রকাশিত অহং ভাবক পৰিহাৰ কৰিবলৈ গৈ উদাৰ মনোভংগীসূচক 'আমি' নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হৈছে। কিন্তু (খ) উদাহৰণত 'মই' নির্দেশকে ৰজাৰ অহং ভাবক সূচাব পাৰিছে।

আকৌ মধ্যযুগীয় সত্রীয়া সমাজত 'আপুনি' নির্দেশকে স্বয়ং অস্তিত্বক বুজোৱাৰ সমান্তৰালকৈ শ্রোতাকো বুজাব পাৰিছিল। গুৰুচৰিতৰ উদাহৰণলৈ মন কৰিলে এই কথা স্পষ্ট হ'ব—

(ঘ) আপুনাৰ নিজ দেহৰতে বাঝকৈ জিৰক প্রকৃতি মায়াৰ হাতে দিয়া গল ঃ আৰু সত্য যুগেও আগম কৰাই ঢ়কালা ঃ দ্বাপৰতো শৃৰাম আদি আনো অৱতাৰ হৈ ঃ জজ্ঞ হোম পূজা আপুনি কৰি ধৰালা[১৫]

(ঙ) বোলে তোম্রা পূর্ণব্রহ্ম দৈৱকিসূত গোকুলৰ কালাই।। আমি কেমেকৈ ৰাখিম ঃ খালি গৃহত ঃ আপুনিবা ৰব কিয়।।[১৬]

(ঘ) উদাহৰণত 'আপুনাৰ' হৈছে শ্ৰোতা নিৰ্দেশক। কিন্তু ইয়াত 'আপুনি' ব্যক্তি নিৰ্দেশক নহয়। 'আপুনি কৰি ধৰালা' অৰ্থাৎ 'নিজে কৰি ধৰালা' বুলি শ্ৰোতাৰ অস্তিত্বকহে বুজাইছে। (ঙ) উদাহৰণত 'আপুনি' কিন্তু নিৰ্দেশক শব্দ। 'তোম্ৰা' আৰু 'আপুনি' বুলি একেজন শ্ৰোতাৰে নিৰ্দেশনা দিছে। উভয়তে বক্তাতকৈ শ্ৰেষ্ঠ শ্ৰোতাৰ প্ৰতি সন্মান প্ৰদৰ্শনত ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশকেও ক্ৰিয়া কৰিছে। মুঠতে ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক ব্যৱহাৰৰ পৰা শ্ৰোতাৰ প্ৰতি বক্তা ব্যৱহাৰকো অনুমান কৰিব পাৰি।

অৱশ্যে সত্ৰীয়া সমাজত শ্ৰোতাৰ ক্ষেত্ৰত 'আপুনি' নিৰ্দেশকৰ প্ৰয়োগ থাকিলেও মান্যাৰ্থক 'তুমি', 'তোম্ৰা' নিৰ্দেশক প্ৰয়োগত গুৰুত্ব বেছিকৈ পোৱা যায়। তলৰ উদাহৰণলৈ মন কৰিলে এই কথা স্পষ্ট হ'ব—

গুৰুজনে সুধিলে গোবিন্দ দেখো আহিচা ঃ বোপে বাপ তোকে সেৱা কৰিবলৈ আহিচো ঃ জাঞতে ভকতে বোলে ঃ গুৰুজনক তই কিৰ বোলা ঃ বোলে কিনো বুলিব লাগে ঃ বোলে তুমি তোম্ৰা এনেকৈ বুলিব লাগে।[১৭]

ইয়াত কেৱল 'তোকে' হৈছে শ্ৰোতা নিৰ্দেশক। 'তই', 'তুমি', 'তোম্ৰা' নিৰ্দেশক নহয়; ইয়াৰ দ্বাৰা নিৰ্দেশনাৰ ধাৰণাহে দিয়া হৈছে। এইদৰে সন্মানীয়জনৰ প্ৰতি নিৰ্দেশক ব্যৱহাৰৰ ধাৰণা দিওঁতে ইয়াত 'আপুনি' শব্দৰ কথা কোৱা হোৱা নাই। ইয়াৰ পৰা স্পষ্ট যে ৰাজনৈতিক পৰিবেশৰ দৰে ধৰ্মীয় পৰিবেশত অধিক মান্যাৰ্থত গুৰুত্ব দিয়া হোৱা নাছিল। বৰং সামূহিক পৰ্যায়ত মান্যাৰ্থক ৰূপৰ ব্যৱহাৰে ধৰ্মীয় পৰিবেশৰ ভাব-ভংগীক নম্ৰতাৰ মাত্ৰা প্ৰদান কৰিব পাৰিছে।

ইয়াৰ বিপৰীতে বুৰঞ্জীৰ ভাষালৈ মন কৰিলে ৰাজকীয় পৰিবেশত অধিক মান্য অৰ্থত 'আপুনি' আৰু তুচ্ছ অৰ্থত 'তই/তঞি' নিৰ্দেশকে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা দেখা যায়। যেনে—

(চ) আপুনি নামমাত্ৰ ৰাজা, বুঢ়াগোহাঞিহে ৰাজা।[১৮]

(ছ) ফ্ৰাচেং মুন বড় গোহাঞি আপুনি সদিয়াত থাকি বড় মনে নাহে।[১৯]

(জ) পাচে মাউত গোহাঞে বোলে তঞি মোৰ হাতৰ গুছিবৰ কেই দিন হৈছে, তই মোৰ বন্দী, মোক তামোল যাচিব পানে কি।[২০]

(চ) আৰু (ছ) এই দুয়োটা উদাহৰণতে ক্ৰমে 'আপুনি' নিৰ্দেশকে অধিক মান্যাৰ্থক শ্ৰোতাৰ নিৰ্দেশনা দিব পাৰিছে। মধ্যযুগীয় সামন্ত সমাজত উচ্চ বৰ্গৰ এক শ্ৰেণীক অধিক মান্য অৰ্থ আৰোপেৰে বুজাবলৈ এনে নিৰ্দেশকৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল বুলি ধাৰণা কৰিব পাৰি। আনহাতে (জ) উদাহৰণত বক্তাতকৈ নিম্ন মৰ্যাদাসম্পন্ন শ্ৰোতাৰ পক্ষে তুচ্ছাৰ্থক 'তঞি' আৰু 'তই' নিৰ্দেশকৰ ব্যৱহাৰ হৈছে।

১.২.৩ আধুনিক সমাজ এখনত ভিন্ন আৰ্থিক স্তৰৰ মানুহে বাস কৰে। শিক্ষা আৰু মৰ্যাদাৰে আগবঢ়া উচ্চবিত্ত শ্ৰেণীৰ মাজত ইংৰাজী ভাষা কোৱাৰ প্ৰৱণতা বেছিকৈ পোৱা যায়। এনে স্থলত ব্যক্তি নিৰ্দেশনাত ইংৰাজী ভাষাৰ ব্যৱহাৰে কেতিয়াবা তুচ্ছ, মান্য বা অধিক মান্যৰ ধাৰণা দিব নোৱাৰে। যি হওক শিষ্ট সমাজত সন্মানীয়জনৰ প্ৰতি তুচ্চাৰ্থক ৰূপৰ ব্যৱহাৰ অমাৰ্জিত সংস্কাৰ।

সমাজৰ ৰাজহুৱা স্থানত বক্তাই নিজকে বহুবচনৰ ৰূপত ৰাখি কথা কোৱাৰ প্ৰৱণতা দেখা যায়। সভাপতিয়ে সভাখনক প্ৰতিনিধিত্ব কৰি নিয়ে বাবে নিজকে সদায় বহুবচনৰ শাৰীত ৰাখি নিৰ্দেশনা দিয়া দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

শুনক ৰাইজ গাঁৱৰ উন্নয়নৰ ভালেমান কথা, আমাৰ আজিৰ মেলত আলোচনা হ'ল। আমি এতিয়া গাঁৱৰ আৰু এটা দৰকাৰী কথালৈ আহোঁ। আমাৰ কাটি হৈ থকা বৰনামঘৰটোৰ কিবা এটা দিহা কৰিব লাগে।[২১]

ইয়াত উক্তি কৰোঁতে বক্তা এজনেই যদিও 'আমি' বুলি কেৱল বক্তাক বুজোৱা নাই। বক্তাই নিজকে উপস্থিত ৰাইজৰ সৈতে সাঙুৰি 'আমাৰ', 'আমি' নিৰ্দেশকৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে।

একেদৰে শ্ৰোতা নিৰ্দেশকৰ ক্ষেত্ৰতো ৰাজহুৱা পৰিবেশে প্ৰভাৱ পেলাব পাৰে। সভাসদৰ মাজত নিজতকৈ কণিষ্ঠজন থাকিলেও সামূহিক ৰূপত অধিক মান্যাৰ্থক ৰূপেৰে নিৰ্দেশনা দিয়া দেখা যায়। যেনে—

আপোনালোকে সভাজন চলাই নিয়াত আমাক সহায় কৰিব বুলি আশা কৰিলোঁ।

'সময়, সমাজ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে ভাষাও ক্ৰমাৎ পৰিৱৰ্তিত হৈ আহিছে'[২২]। পুৰণি অসমীয়া সাহিত্যলৈ মন কৰিলে কওঁতা-শুনোতাক বুজাব পৰাকৈ তেতিয়াৰ সমকালীন সমাজত নিৰ্দেশক শব্দৰ পয়োভৰ যিমান আছিল

বৰ্তমান সমাজত তেনে পৰিমাণ কমি আহিছে বুলি ক'ব পাৰি। ইয়াৰ কাৰণ হিচাপে ক'ব পাৰি 'ভাষাই প্ৰাচীন ৰূপৰ পৰা আধুনিক ৰূপ লওঁতে এপিনে যিদৰে কিছুমান ক্ষেত্ৰত জটিলতাৰ পৰা সৰলতাৰ ফালে গতি কৰে, আনপিনে সিহঁতৰ প্ৰকাশিকা শক্তি বেছি স্পষ্ট হয়, কম কথাত বেছি কথা প্ৰকাশ কৰিব পৰা হয়'[২৩]। বক্তা-শ্ৰোতাক বাদ দি তৃতীয়জন ব্যক্তি নিৰ্দেশকলৈ মন কৰিলেও তুচ্ছাৰ্থক 'সি', তাই' মান্যাৰ্থক তেওঁ এওঁ, অধিক মান্যাৰ্থক এখেত তেখেত নিৰ্দেশকৰ সীমিত স্বৰূপৰ অসীমিত প্ৰকাশভংগী লক্ষ্য কৰা যায়। 'তেঞ'ৰ আধুনিক ৰূপ 'তেওঁ', 'এঞ'ৰ 'এওঁ' আৰু 'তাঞি'ৰ 'তাই' বুলি ধৰিলে সময় লৈ নিৰ্দেশক ব্যৱহাৰৰ ক্ৰমবিৱৰ্তন চকুত পৰে। ওপৰৰ উদাহৰণসমূহলৈ মন কৰিলেও এই কথা স্পষ্ট হয়। গতিকে ভাষা বিৱৰ্তনৰ এনে গুণৰ বাবে চলিত সামাজিক প্ৰেক্ষাপটত ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ স্বৰূপ সীমিত হোৱাৰ পিছতো ব্যৱহাৰৰ দিশত তাৰ প্ৰাসংগিক অৰ্থৰ ব্যাপক ভিন্নতাই সুকীয়া এটা আলোচনাৰ বিষয় হ'ব পাৰিছে। এই অনুযায়ী সাধাৰণভাৱে মান্য আৰু অধিক মান্যৰ ধাৰণা দিব পৰা তেওঁ এওঁ তেখেত এখেত নিৰ্দেশক শব্দৰ সামাজিক পৰিবেশ অনুযায়ী ব্যৱহাৰিক তাৎপৰ্য ভিন্ন হ'ব পাৰে। উদাহৰণস্বৰূপে—

(ক) — এইয়া হৰিহৰ মহাজনৰ ঘৰ হয়? তেখেত আছে নেকি?

— আমাৰ এখেত এতিয়া ঘৰত নাই নহয়। অলপ ৰ'ব, আহি পাবৰ হৈছে।

(খ) আমাৰ এওঁ মহিলা সমিতিৰ মূল উপদেষ্টা।

(গ) আমাৰ এওঁৰ আকৌ সাহিত্য সভাৰ কামত লাগিবৰে পৰা ব্যস্ততা বাঢ়িছেহে।

(ক) উদাহৰণত প্ৰথম বক্তাই 'তেখেত' বুলি কথনৰ সময়ত উপস্থিত নথকা তৃতীয়জন ব্যক্তিৰ নিৰ্দেশনা দিছে। দ্বিতীয় বক্তাই সেই একেজন উপস্থিত নথকা ব্যক্তিকে সূচাবলৈ কিন্তু 'আমাৰ এখেত' বুলি নিকটৱৰ্তী প্ৰকাশভংগীৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। ইয়াত 'আমাৰ এখেত' বুলি নিজৰ গিৰিয়েকক বুজাইছে। বক্তা-শ্ৰোতা উভয়ৰে জ্ঞাত সামাজিক পৰিবেশত এনে নিৰ্দেশকৰ ধাৰণা অনুমান কৰাত অসুবিধা নহয়। গতিকে 'তেখেত', 'এখেত' এই দুয়োটা নিৰ্দেশকৰ ভৌতিক প্ৰসংগ একেটাই কিন্তু সামাজিক সম্পৰ্ক ভিন্ন হোৱা বাবে দুয়োটা নিৰ্দেশকৰ তাৎপৰ্য ভিন্ন হৈছে। একেদৰে (খ) উদাহৰণত মহিলা কমিটিৰ মূল উপদেষ্টা বুলি কোৱাৰ লগে লগে স্ত্ৰীৰ প্ৰসংগ স্পষ্ট হৈ পৰে। এনে ভাষিক প্ৰসংগৰ পৰা স্পষ্ট হয় যে 'আমাৰ এওঁ' নিৰ্দেশকৰ জৰিয়তে গিৰিয়েকে ঘৈণীয়েক বুজাব বিচাৰিছে। কিন্তু (গ) উদাহৰণত 'আমাৰ এওঁ' বুলি গিৰিয়েকে ঘৈণীয়েকৰ নিৰ্দেশনা দিছে নে ঘৈণীয়েকে গৰিয়েকৰ নিৰ্দেশনা দিব বিচাৰিছে সেয়া স্পষ্ট। গতিকে এনে নিৰ্দেশকৰ অৰ্থ জানিবলৈ কথনৰ আগৰ পিছৰ ভাষিক প্ৰসংগ জনা দৰকাৰ হৈ পৰে। অৱশ্যে তিনিওটা উদাহৰণতে 'আমাৰ এখেত' আৰু 'আমাৰ এওঁ' শব্দসমষ্টিয়ে অৱস্থানগত অৰ্থত নিকটৱৰ্তী ধাৰণাৰ পৰিৱৰ্তে স্বামী-স্ত্ৰীৰ সামাজিক সম্পৰ্কক প্ৰকাশ কৰিব পাৰিছে। এইদৰে ব্যক্তি নিৰ্দেশক শব্দৰ জৰিয়তে সামাজিক সম্পৰ্ক এটা কাৰ্যকৰী হ'বলৈ এটা সামাজিক পৰিবেশৰ প্ৰয়োজন। ৰাজহুৱা স্থানত তথা সামাজিক প্ৰেক্ষাপটত নামকৰণৰ প্ৰসংগ উল্লেখ নকৰাকৈ এইদৰে নিৰ্দেশকৰ জৰিয়তে পাৰিবাৰিক সম্পৰ্কক সূচাব পৰাত সৌজন্যতা ৰক্ষিত হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। অৱশ্যে এনে নিৰ্দেশনাত 'আমাৰ' বুলি বক্তাই একমাত্ৰ নিজৰ প্ৰসংগক ব্যক্ত কৰিছে। নিজক নিৰ্দেশনাৰ ক্ষেত্ৰত বহুবচনৰ উদাৰ প্ৰকাশভংগীৰ বিপৰীতে ইয়াত 'আমাৰ' বহুবচনৰ ৰূপে আকৌ অহং মনোভাৱক প্ৰাধান্য দিছে। সেয়ে 'আমাৰ স্কুল', 'আমাৰ ঘৰ' বুলি ক'লে তাৰ মাজেৰে বক্তাৰ আত্মগৌৰৱ প্ৰকাশ পায় বুলি ক'ব পাৰি।

পৰিয়ালত ভাষা কোৱা ধৰণ অনুযায়ী একেটা প্ৰসংগতে নিৰ্দেশাত্মক ৰূপ ভিন্ন হ'ব পাৰে। পৰিয়াল অনুযায়ী ল'ৰা-ছোৱালীয়ে মাক-দেউতাকক 'তই', 'তুমি' বা আপুনি বুলি সম্বোধন কৰিব পাৰে। শিষ্ট সমাজত জ্যেষ্ঠ তথা সন্মানীয়জনৰ প্ৰতি তুচ্ছাৰ্থক ৰূপৰ ব্যৱহাৰ অমাৰ্জিত সংস্কাৰ। কিন্তু সামাজিক সম্পৰ্কৰ ক্ষেত্ৰত তুচ্ছাৰ্থক ৰূপৰ ব্যৱহাৰে আত্মীয়তাৰ গভীৰতাক প্ৰতিপন্ন কৰিব পাৰে। বংশ পৰিয়াল বা বন্ধুৰ মাজত সেয়ে 'তই' নিৰ্দেশকৰ ব্যৱহাৰে শ্ৰোতৰ প্ৰতি সন্মান হানি কৰাক নুবুজায়। উদাহৰণ হিচাপে ল'ব পাৰি এইদৰে—

(ঘ) পিতাই তই ঘৰলৈ যাগৈ যা।

(ঙ) হয়নে বৰপিতাই ! এবাৰ বোলে তই দোৰপদীৰ ভাও লওঁতে তোৰ মূৰৰ চুলিকোছা দুশাসনৰ মুঠিতে গ'ল?[২৪]

উভয়তে 'তই' নির্দেশকৰ অর্থ বেলেগ হৈছে। এইদৰে চালে মাক-দেউতাক বা জ্যেষ্ঠজনৰ প্রসংগত 'আপুনি' নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ কৰোঁতাজনৰ পক্ষে 'তই' নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ আচহুৱা যেন লাগিব পাৰে। কিন্তু এনে নির্দেশকে তুচ্ছ অর্থত প্রয়োগ নহৈ সম্পর্কৰ ঘনিষ্ঠতাক বুজাব পাৰিছে। গতিকে 'তই' নির্দেশকে মাক-দেউতাৰ প্রতি যিদৰে শ্রদ্ধা কম হোৱাক নুবুজায়, একেদৰে 'আপুনি' নির্দেশকেও মাক-দেউতাকৰ প্রতি আত্মীয়তা কমি যোৱাক নুবুজায়।

সমাজত ভাষা ব্যৱহাৰৰ শিষ্টতা নাজানিলে সামাজিক সম্পর্ক, বয়স, মর্যাদা আদি সামাজিক কাৰক অনুযায়ী ব্যৱহাৰ কৰিব পৰাকৈ তুচ্চার্থক, মান্যার্থক, অধিক মান্যার্থক ৰূপৰ পার্থক্যক ৰখা নহয়। সেয়ে সৰু ল'ৰা-ছোৱালীৰ মাজত তুচ্চার্থক 'সি', 'তাই' নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ বেছিকৈ পোৱা যায়। আনকি নতুন প্রজন্মৰ ল'ৰা-ছোৱালীৰ মাজত লিংগভেদেও 'সি'ৰ প্রচলন বেছি হোৱা দেখা গৈছে। ইয়াৰ মূলতে অসমীয়া ভাষাটোৰ প্রতি অনীহা থকা পৰিয়ালকেন্দ্রিক পৰিবেশৰ প্রভাৱ বুলি ক'ব পাৰি। একেদৰে কৈশোৰ অৱস্থাত ল'ৰা-ছোৱালীৰ মাজত লিংগভেদে 'এইজন', 'এইটো', সেইজন', সেইটো বুলি নির্দেশনা দিয়াৰ প্রৱণতা বেছি। বাহুত অহা-যোৱা কৰোঁতে লগ পোৱা কলেজীয়া ছাত্র-ছাত্রীৰ মুখৰ ভাষালৈ মন কৰিলে এই কথাৰ প্রমাণ পোৱা যায়।

আনকি তুচ্চার্থত 'এইডাল, 'এইপাট' আদি নির্দিষ্টতাবাচক শব্দৰেও ব্যক্তিৰ নির্দেশনা দিয়া দেখা যায়। পুংলিংগৰ ক্ষেত্রত এনে নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ বেছিকৈ পোৱা যায়। যেনে—

(চ) এইপাটে এনে কেপ্‌কেপাই থাকে, ইয়াৰ কথা নুশুনিবি।

(ছ) এইডাললৈ চোৱা সকলো কাম যেন সিহে কৰিছে।

প্রথমটো উদাহৰণত 'এইপাটে' শব্দসমষ্টিৰ ব্যৱহাৰে 'ইয়াৰ' বুলি নির্দেশিত ব্যক্তিগৰাকীৰ প্রতি নির্দিষ্ট ভাব প্রকাশ কৰিছে। এনে নির্দেশক ব্যৱহাৰৰ সাধাৰণ প্রসংগই পুংলিংগৰ ধাৰণা দিয়ে। একেদৰে দ্বিতীয় উদাহৰণতো 'সি' নির্দেশক ব্যৱহাৰৰ ভাষিক প্রসংগৰ পৰা 'এইডাল' শব্দসমষ্টিৰ পুংলিংগৰ ৰূপ পাব পাৰি। কিন্তু ভৌতিক পৰিস্থিতি অনুযায়ী 'ইয়াৰ' আৰু 'সি' যিকোনো ব্যক্তি হ'ব পাৰে। গতিকে যি পৰিবেশেই নহওক এনে নির্দেশকক আকৌ নির্দিষ্টকৈ সূচাব পৰা 'এইডাল', 'এইপাট' শব্দসমষ্টিও একো একোটা নির্দেশক হৈ পৰে। উভয়তে এনে ব্যক্তি নির্দেশকে শ্রোতাৰ প্রতি বক্তাৰ উপেক্ষা বা তিৰস্কাৰক বুজাইছে। লিংগভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ পার্থক্যক এইদৰে ব্যক্তি নির্দেশকৰ মাজেৰেও বিচাৰ কৰি চাব পাৰি।

ইয়াৰ বিপৰীতে প্রাপ্তবয়স্ক এজনে ৰাজহুৱা স্থানত 'এইজন', 'এইটো' বা 'এইডাল', 'এইপাট' বুলি নকৈ শিষ্টতাৰ খাতিৰত 'এইগৰাকী', 'এওঁ' বা 'এখেত' বুলি ক'ব পাৰে। কিন্তু 'এইগৰাকী', সেইগৰাকী', 'তেওঁ', 'এওঁ', 'তেখেত' বা 'এখেত' নির্দেশকৰ লিংগভেদ জানিবলৈ ভাষা ব্যৱহাৰৰ প্রসংগলৈ দৃষ্টি দিয়া প্রয়োজন হয়। সামাজিক প্রেক্ষাপটত ব্যক্তিৰ ক্ষেত্রত এনে নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ সৌষ্ঠৱপূর্ণ বুলি ধৰা হয়। অৱশ্যে পৰিৱর্তিত সময়ত নৱ প্রজন্মৰ মাজত তৃতীয়জন ব্যক্তিৰ নির্দেশনা দিব পৰা অধিক মান্যার্থক 'এখেত', 'তেখেত' শব্দৰ ব্যৱহাৰ প্রায় কমি অহা যেন বোধ হৈছে। কেৱল নির্দিষ্ট বয়সৰ ব্যক্তিয়েহে তৃতীয় পুৰুষৰ এজনক বুজাবলৈ এনে শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। এইদৰে মানুহৰ আচৰণৰ ভিন্নতাক ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দৰেও বিচাৰ কৰিব পাৰি।

২.১ ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় প্রত্যেক সমাজৰ প্রত্যেক স্তৰৰ ভাষা ব্যৱহাৰতে ব্যক্তিক নির্দেশনা দিব পৰাকৈ নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ আছে। সময় অনুযায়ী নির্দেশক শব্দৰ ক্রম বিৱর্তনে সামাজিক প্রেক্ষাপট অনুযায়ী এনে শব্দ ব্যৱহাৰৰ পার্থক্যক দেখুৱাব পাৰিছে। ব্যক্তিবাচক নির্দেশক ব্যৱহাৰত সামাজিক অনুষঙ্গৰ প্রভাৱ ব্যাপক। শুনোতাৰ সামাজিক স্থিতি, বক্তাৰ সৈতে সামাজিক সম্পর্ক, বয়স, লিংগ আদি সামাজিক কাৰকে কওঁতাক প্রভাৱিত কৰে আৰু সেই হিচাপত বক্তাই ব্যক্তিবাচক নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ কৰে। গতিকে এই দিশেৰে ব্যক্তি নির্দেশকক সামাজিক অভিব্যক্তি আখ্যা দিব পাৰি। এনে অভিব্যক্তিক সামাজিক প্রেক্ষাপটৰ পৰা নিলগাই চাব নোৱাৰি। এক কথাত সামাজিক প্রেক্ষাপটে ব্যক্তিবাচক নির্দেশক ব্যৱহাৰত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা গ্রহণ কৰে। ❑

উল্লিখিত গ্ৰন্থ ঃ

গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ। ভাষা-বিজ্ঞান। মণি-মাণিক প্ৰকাশ, ২০১৯।

গোস্বামী, হেমচন্দ্ৰ (সম্পা.)। পুৰণি অসম-বুৰঞ্জী (চুকাফা— গদাধৰ সিংহ)। লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, ১৯৭৭।

চৌধুৰী, প্ৰসন্নলাল। অসমীয়া সাতকাণ্ড ৰামায়ণ। কাত্যায়নী প্ৰেচ, ১৮৯৯।

দাস, বিশ্বজিৎ। সমাজভাষাবিজ্ঞান। বনলতা, ২০১৭।

দাস, যুগল। বায়নৰ খোল। ৰংগবেদী প্ৰকাশন, ১৯৮২।

দৈৱজ্ঞ, ক'লীয়া। "বিক্ৰমসেন ৰজা আৰু শ্ৰীক্ষেত্ৰত স্বৰ্গদেৱৰ পুখুৰী"। স্নাতকৰ কথাবন্ধ, বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন বিভাগ, ২০১১।

নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পা.)। গুৰু-চৰিত-কথা। বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন বিভাগ, ২০০৩।

ভূঞা, সূৰ্য্য কুমাৰ (সম্পা.)। হৰকান্ত বৰুৱা সদৰামিনৰ অসম বুৰঞ্জী। অসম চৰকাৰৰ বুৰঞ্জী আৰু পুৰাতত্ত্ব বিভাগ, ২০১০।

মেধি, কালিৰাম (সম্পা.)। প্ৰহ্লাদ-চৰিত্ৰ। শাস্ত্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৭৮।

Levinson, Stephen C. Pragmatics. Cambridge University Press, 1989.

Yule, George. Pragmatics. Oxford University Press, 2018.

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১) কোঁৱৰ, অৰ্পণা আৰু অনুৰাধা শৰ্মা (সং. আৰু সম্পা.)। ভাষাবিজ্ঞান পাৰিভাষিক কোষ। অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, জানুৱাৰী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৮।

২) গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ। অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ সমৃদ্ধি বিকাশ। গুৱাহাটী, মণি-মাণিক প্ৰকাশ, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ২০১৪।

৩) ... ভাষা-বিজ্ঞান। গুৱাহাটী, মণি-মাণিক প্ৰকাশ, ষষ্ঠবিংশতিতম্ সংস্কৰণ, ২০১৯।

৪) চৌধুৰী, প্ৰসন্নলাল। অসমীয়া সাতকাণ্ড ৰামায়ণ। কলিকতা, কাত্যায়নী প্ৰেচ, ১৮৯৯।

৫) গোস্বামী, হেমচন্দ্ৰ (সম্পা.)।পুৰণি অসম-বুৰঞ্জী (চুকাফা— গদাধৰ সিংহ)। গুৱাহাটী, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ১৯৭৭।

৬) দত্ত বৰুৱা, ফণীন্দ্ৰ নাৰায়ণ। আধুনিক ভাষাবিজ্ঞান পৰিচয়। গুৱাহাটী, বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ, দ্বিতীয় পৰিৱৰ্দ্ধিত প্ৰকাশ, ২০১৬।

৭) দাস, বিশ্বজিৎ। সমাজভাষাবিজ্ঞান। ডিব্ৰুগড়, বনলতা, নতুন সংস্কৰণ, ২০১৭।

৮) দাস, যুগল। বায়নৰ খোল। ৰংগবেদী প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৮২।

৯) নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পা.)। গুৰু-চৰিত-কথা। গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন বিভাগ, সংশোধিত দ্বিতীয় তাঙৰণ, ২০০৩।

১০) ... স্নাতকৰ কথাবন্ধ। গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন বিভাগ, ত্ৰয়োদশ সংস্কৰণ, ২০১১।

১১) ভূঞা, সূৰ্য্য কুমাৰ (সম্পা.)। হৰকান্ত বৰুৱা সদৰামিনৰ অসম বুৰঞ্জী। অসম চৰকাৰৰ বুৰঞ্জী আৰু পুৰাতত্ত্ব বিভাগ, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ২০১০।

১২) মৰল, ভগৱান। ভাষাৰ্থবিজ্ঞান। গুৱাহাটী, পঞ্চজ্যোতি প্ৰকাশন, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৯।

১৩) মেধি, কালিৰাম (সম্পা.)। প্ৰহ্লাদ-চৰিত্ৰ। শাস্ত্ৰ প্ৰকাশ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ১৯৭৮।

১৪) হাঁলৈ মহন্ত, দীপামণি। ভাষা সাহিত্য জিজ্ঞাসা। গুৱাহাটী, সম্প্ৰীতি, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২২।

১৫) Fillmore, Charles J. Lectures on deixis. Stanford, CSIL Publication, 2001.

১৬) Huang, Yan. Pragmatics, Second edition. Oxford, Oxford University press, First published, 2014.

১৭) Levinson, Stephen C. Pragmatics. Cambridge, Cambridge University Press, Reprinted, 1989.

১৮) Peccei, Jean Stiwell. Pragmatics. New York, Routledge, First published, 1999.

১৯) Yule, George. Pragmatics. Oxford, Oxford University Press, 2018.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ ‘গঙা চিলনীৰ পাখি’ উপন্যাসৰ আলোচনা

বনজিৎ শর্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বি.এইচ্. কলেজ, হাউলী
৮৮৭৬০৪৬৯৪৭
banjitnishasarma@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ ‘গঙা চিলনীৰ পাখি’ এখন লেখত ল’বলগীয়া উপন্যাস। এই উপন্যাসখনত লেখকৰ অভিজ্ঞতা আৰু জীৱনবোধ সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশিত হৈ উঠিছে। এখন নদীক কেন্দ্ৰ কৰি প্ৰবাহিত হোৱা জীৱন ধাৰাৰ ভেটিত এজনী গাভৰুৰ প্ৰণয়কামী জীৱনৰ কৰুণ ইতিহাস বৰ্ণিত হৈছে। প্ৰণয়মধুৰ দাম্পত্য জীৱনৰ তাই সপোন দেখিছিল। সেই সপোন দিঠকত পৰিণত কৰিবলৈ তাইক সংস্কাৰে বাধা দিলে। ৰঙালী মদাৰৰ দৰে তাইৰ যৌৱনৰ ৰঙা ফুল অনাদৰত তলত সৰি মৰহি গ’ল। লেখকৰ ভাষাত ক’বলৈ হ’লে- “গঙা চিলনীৰ পাখিৰ বতাহ বাসন্তীৰ গাতো লাগিছিল, তাই কিন্তু জোপ লৈহে থাকিল। শুৱনী সোণাই আগৰদৰে বৈ ৰ’ল।” (শর্মা, সতেন্দ্ৰ নাথ। *অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা।* পৃষ্ঠা ঃ ১৩৫)।

গঙা চিলনীৰ পাখিৰ বা লগা গাভৰুজনী হ’ল সোণাইৰ পাৰৰ বাসন্তী। আমাৰ এই আলোচনাত উপন্যাসখনৰ বিষয়বস্তুৰ উপৰিও, উল্লেখযোগ্য চৰিত্ৰবিলাকৰ বিশ্লেষণ তথা গ্ৰাম্য জীৱনৰ চিত্ৰ কিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে তাক দাঙি ধৰাৰ চেষ্টা কৰা হৈছে।

গুৰুত্বপূৰ্ণ অভিধা ঃ

উপন্যাস, লক্ষ্মীনন্দন বৰা, গঙা চিলনীৰ পাখি, চৰিত্ৰ, গ্ৰাম্য জীৱন, আধ্যাত্মিক জগত, মনস্তত্ব, প্ৰকৃতি।

অৱতৰণিকা ঃ

অসমীয়া সাহিত্যত লক্ষ্মীনন্দন বৰাই চুটিগল্পকাৰ হিচাপে প্ৰবেশ কৰিছিল। তেখেতে কম সময়ৰ ভিতৰতে গাঁৱলীয়া সমাজৰ আশা-আকাঙ্খা, তিথি-মহোৎসৱ, গীত-মাত আদিৰ যোগেদি বাস্তৱ চিত্ৰৰ প্ৰকাশ ঘটাই নিজৰ ব্যক্তিত্ব দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। তেখেতৰ ভাওনা, সখা-দামোদৰ, মন বিৰিখৰ জোখ, সম্মোহ এৰাবাৰীৰ লেছেৰি, অচিন কইনা আদি গল্পসমূহ অনবদ্য সৃষ্টি। লক্ষ্মীনন্দন বৰাদেৱে অকল গল্প ৰচনাতে সন্তুষ্ট নাথাকি কম সময়ৰ ভিতৰত কেইবাখনো উপন্যাস ৰচনা কৰি ঔপন্যাসিকৰূপে খ্যাতি অর্জন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। বৰাদেৱৰ উপন্যাসৰ মাজত দেখিবলৈ পোৱা

যায়, গ্ৰাম্য জীৱনৰ নিখুঁত প্ৰতিচ্ছবি, আধুনিক জীৱন প্ৰৱাহে আনি দিয়া মূল্যবোধৰ অৱক্ষয়, অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ পুৰোধা ব্যক্তিসকলৰ জীৱন আৰু দৰ্শন, বিজ্ঞান উৎসুকতা, চিৰন্তন মানৱীয় মূল্যবোধ ইত্যাদি। বৰাদেৰৰ উপন্যাসৰাজি হ'ল ঃ নিশাৰ পূৰৱী, গঙা চিলনীৰ পাখি, ছাঁ জুইৰ পোহৰত, শিখাৰ সুৰভি, বলুকাত বিজুলী, মাটিত মেঘৰ ছাঁ, মেঘালী দুপৰ, উত্তৰ পুৰুষ, বিশেষ এৰাতি, আকৌ শৰাইঘাট, পতন, ঘাতক-পলাতক, প্ৰতিৰোধ, পাতাল ভৈৰৱী, যাকেৰি নাহিকে উপাম, মৎস্যকন্যা, সেহি গুণনিধি, কায়কল্প, মেঘত মাদল বাজে, চতুৰঙ্গ, যৈচন গগন বিয়াপি, গতি মতি ভকতি ইত্যাদি।

বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

লক্ষ্মীনন্দন বৰাদেৰৰ উপন্যাসৰাজিৰ বিষয়বস্তু বহুকেন্দ্ৰিক, সামাজিক, জীৱনীভিত্তিক, বিজ্ঞানভিত্তিক ইত্যাদি। ৰাজনৈতিক আৰু সামাজিক বা মাৰলীৰ মাজতে জীৱন সম্ভোগৰ চিত্ৰ তেখেতৰ প্ৰায়বোৰ উপন্যাসতে দেখিবলৈ পোৱা যায়। বহু সময়ত বৰাদেৰৰ উপন্যাসৰ কিছুমান চৰিত্ৰই যৌন পৰিতৃপ্তিৰ পাছত ঘূৰি ফুৰা দেখা যায়। সমালোচকসকলৰ দৃষ্টিত এইধৰণৰ দিশৰ উল্লেখ থকা উপন্যাসবোৰ অতিৰঞ্জন দোষদুষ্ট হৈ পৰা বুলি ক'ব খোজে। ড° সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাদেৱে 'অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা গ্ৰন্থত লিখিছে—

"নাৰী উপভোগৰ যৌনচিত্ৰ বা বিৱৰণে উপন্যাসক 'বটতলা'ৰ সস্তীয়া কাহিনীলৈ ৰূপান্তৰিত কৰিছে। এই কাহিনীত দেখা যায় যে প্ৰত্যেক চৰকাৰী বিষয়া যৌনাচাৰী আৰু ঘোচখোৰ আৰু প্ৰত্যেক ব্যৱসায়ী দুৰ্নীতি পৰায়ণ। বাঘে হৰিণক দেখি ৰ'ব নোৱাৰাৰ দৰে চৰকাৰী বিষয়াই সুন্দৰী নাৰী দেখিলে আত্মসম্বৰণ কৰিব নোৱাৰা কথা এহাতে যেনেকৈ সত্য তেনেকৈ অতিৰঞ্জিতো।" (সম্পা. ঠাকুৰ, নগেন। *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস।* পৃষ্ঠা ঃ ৬০১)

লক্ষ্মীনন্দন বৰাদেৰৰ বৰ্ণনা শক্তিৰ দক্ষতা প্ৰায়বোৰ উপন্যাসতে প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছে। গাঁৱলীয়া জীৱনৰ চিত্ৰ বৰাদেৰৰ উপন্যাসত যেনেদৰে ফুটি উঠিছে, ঠিক তেনেদৰে নগৰৰ বিলাস বহুলতাৰ দৃষ্টিও তেখেতৰ উপন্যাসত যথাৰ্থভাৱে ফুটি উঠিছে। সাধাৰণতে উপন্যাসৰ সাৰ্থকতা জীৱন দৃষ্টিৰ গভীৰতাৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰে। বৰাদেৰৰ উপন্যাসত মহৎ ঔপন্যাসিকসকলৰ জীৱন দৃষ্টি আয়ত্তৰ চেষ্টা দেখিবলৈ পোৱা যায়। কিন্তু জীৱনবোধ আয়ত্তৰ কাৰণে যি সূক্ষ্ম পৰ্যবেক্ষণ আৰু অভিজ্ঞতাৰ দৰকাৰ সেয়া লক্ষ্মীনন্দন বৰাদেৰৰ উপন্যাসৰ মাজত অনুপস্থিত।

লক্ষ্মীনন্দন বৰাদেৱে 'নিশাৰ পূৰৱী' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে ঔপন্যাসিক জীৱনৰ আৰম্ভণি কৰিছিল। বৰাদেৰৰ অভিজ্ঞতা আৰু জীৱনবোধ সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ পোৱা উল্লেখযোগ্য উপন্যাসখন হৈছে 'গঙা চিলনীৰ পাখি'। এইখন নিঃসন্দেহে তেওঁৰ এতিয়ালৈকে প্ৰকাশ হোৱা উপন্যাসৰাজিৰ মাজত শ্ৰেষ্ঠ (শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰ নাথ। *অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা।* পৃষ্ঠা ঃ ১৩৫)। উপন্যাসখনত এটা প্ৰেমৰ কাহিনীক কেন্দ্ৰ কৰি এটা অঞ্চলৰ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। সোণাইৰ পাৰৰ বাসন্তী নামৰ এজনী গাভৰুৰ সোণাইৰ সিপাৰৰ ধনঞ্জয় নামৰ এজন ডেকাৰ প্ৰতি থকা প্ৰণয়াভিলাষক কেন্দ্ৰ কৰি উপন্যাসখনৰ কাহিনী গঢ় লৈ উঠিছে। বাসন্তী আৰু ধনঞ্জয়ৰ প্ৰেমে সোণাইৰ ঘাটত পোখা মেলিছিল। কিন্তু বাসন্তীৰ ককায়েক ভোগৰামে সিহঁত দুয়োটাৰ প্ৰেমত হেঙাৰ হৈ থিয় দিছিল। ভোগৰামে অসৎ উপায়েৰে ধনী হোৱা, ভোগৰামৰ ধনৰ গৰ্ব আৰু ধনঞ্জয়ৰ প্ৰতি থকা আখেজৰ বাবে বাসন্তীয়ে ধনঞ্জয়ক জীৱন লগৰী হিচাপে পাবলৈ সক্ষম নহ'ল। ককায়েক ভোগৰামে বাসন্তীৰ বিয়া ঠিক কৰিলে ধনী মথুৰা মণ্ডলৰ সৈতে। বাসন্তীয়ে বিয়াৰ আগতে ধনঞ্জয়ৰ লগত পলাই যোৱাৰ সকলো ব্যৱস্থা কৰিও তাই পলাই যাব নোৱাৰিলে। বাসন্তীৰ বিয়া হ'ল— আৰ্থিকভাৱে টনকিয়াল মথুৰা মণ্ডলৰ লগত। বিয়াৰ পিছত

মথুৰা মণ্ডলে ধনঞ্জয়ৰ লগত তাইৰ পূৰ্ব প্ৰণয়ৰ কথা জানিব পাৰিলে। বাসন্তীয়ে সকলো কথা স্বীকাৰ কৰি বৈবাহিক জীৱনৰ শুচিতা ৰক্ষা কৰিব বুলি প্ৰতিশ্ৰুতি দিলে। কিন্তু মণ্ডল ক্ষিপ্ত হৈ পৰিল। মণ্ডলে বাসন্তীক নিষ্ঠুৰ ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে, লগতে নিজৰ ওপৰত ৰখা নিয়ন্ত্ৰণো হেৰুৱাই পেলালে। অৱশেষত কৰুণ পৰিণতিস্বৰূপে মটৰ দুৰ্ঘটনাত মথুৰা মণ্ডলৰ মৃত্যু হ'ল।

অকাল বৈধব্যক সাৱটি বাসন্তীয়ে আধ্যাত্মিক জগতত শান্তি বিচৰাৰ চেষ্টা কৰিলে আৰু সেই উদ্দেশ্যেৰেই তাই আশ্ৰয় ল'লে কীৰ্তন-দশমৰ। কিন্তু মানুহৰ জীৱনটো কোবাল নদীত উটি যোৱা ব'ঠাহীন নাৱৰ দৰে, কেতিয়া সোঁতে কোনফালে উটু�ৱাই লৈ যায় নাওখনে নাজানে। বাসন্তীৰ জীৱনটো এনে এটা ঘটনা ঘটিল। বিবাহৰ আগতে ধনঞ্জয় আৰু তাই প্ৰেমৰ তাড়নাত পৰি যেনেকৈ পলাই যোৱাৰ সংকল্প লৈছিল, তেনে সংকল্প লোৱা এহাল ডেকা-গাভৰুক বাসন্তীয়ে পলাই যোৱাত সহায় কৰি দিছিল। এনেদৰে এহাল ডেকা-গাভৰুৰ প্ৰেমৰ লগত জড়িত হৈ পৰাত তাইৰ মনৰ অৱদমিত কামনা উদ্বাউল হৈ পৰিল। বাসন্তীয়ে তাইৰ যৌৱনৰ কামনা বাসনাৰ স্বাভাৱিক দাবীক নেওচা দিব নোৱাৰি পূৰ্বৰ প্ৰেমিক ধনঞ্জয়ৰ পৰা সহাঁৰি বিচাৰিলে। কিন্তু ধনঞ্জয়ে বাসন্তীক সহাঁৰি নজনালে। ধনঞ্জয়ে ইতিমধ্যে নিজকে সামাজিক সেৱাত মন-প্ৰাণ উৎসৰ্গ কৰি এক আদৰ্শ ব্যক্তিৰূপে সমাজত প্ৰতিষ্ঠিত হৈছে। সেইবাবে সামাজিক মৰ্যাদা লাঘৱ কৰি পূৰ্ব-প্ৰণয়ী বাসন্তীৰ ওচৰ চপাটো ধনঞ্জয়ৰ বাবে অসাধ্য হৈ পৰিছে। সি বাসন্তীৰ ওচৰৰ পৰা আঁতৰি নিৰুদ্দিষ্ট হৈ পৰিল। বাসন্তীয়ে আকৌ আধ্যাত্মিক জগতখনকে আশ্ৰয় কৰি ল'লে। কীৰ্তন-দশমৰ মাজতেই তাই জীৱনৰ সাৰ্থকতা বিচাৰি ল'বলৈ চেষ্টা কৰিলে।

লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ 'গঙা চিলনীৰ পাখি' উপন্যাসখনে পাঠকৰ সমাদৰ লাভ কৰিছে আৰু সমালোচকৰো মনোযোগ আকৰ্ষণ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। উপন্যাসখনত গাঁওবোৰৰ ক্ৰমাগতভাৱে শোচনীয় হৈ পৰা অৰ্থনৈতিক দুৰৱস্থাৰ চিত্ৰ দেখুৱাবলৈ সক্ষম হৈছে। গ্ৰাম্য জীৱন, স্বাধীনোত্তৰ ভাৰতবৰ্ষৰ দূষিত ৰাজনৈতিক বাতাবৰণ, বিবৰ্ণ হৈ পৰা মানুহৰ যন্ত্ৰণা বৰাদেৰৰ 'গঙা চিলনীৰ পাখি' উপন্যাসখনত ঠাই পাইছে। গঙা চিলনীক উপন্যাসখনত এক প্ৰতীক ৰূপত দেখুওৱা হৈছে, বাসন্তীৰ জীৱন-যৌৱনৰ প্ৰতীক। সোণাই পৰীয়া জীৱনৰ চিত্ৰ উপন্যাসখনত চিহ্নিত হৈছে। সোণাইপৰীয়া প্ৰকৃতি, সোণাইপৰীয়া ৰাইজৰ ধ্যান-ধাৰণা আৰু জীৱন-পদ্ধতিৰ কিছু আভাস উপন্যাসখনে দাঙি ধৰিছে।

"গঙা চিলনীৰ পাখি' উপন্যাসৰ পটভূমিৰ বৰ্ণনাত লেখকৰ কুশলতা মনকৰিবলগীয়া। লেখকে সোণাই নৈ আৰু নৈ পাৰৰ পাৰিপাৰ্শ্বিকতাক কাব্যিক মহিমাৰে উজ্জ্বল কৰি তুলিছে। এটা অঞ্চলৰ ভেঁটিত এই উপন্যাস ৰচিত হোৱাত ইয়াক আঞ্চলিক উপন্যাস ৰূপেও চিহ্নিত কৰিব পাৰি (সম্পা. ঠাকুৰ, নগেন। *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস।* পৃষ্ঠা ঃ ৬০৩)। উপন্যাসখনত সোণাইৰ পাৰলৈ অহা পৰিৱৰ্তনবোৰে সোণাইপৰীয়াৰ জীৱন কিদৰে স্পৰ্শ কৰিছে সেই কথাৰ উল্লেখ আছে। নতুনকৈ প্ৰৱৰ্তিত পঞ্চায়তীৰাজ, নিৰ্বাচন, ৰাজনৈতিক ব্যৱস্থাৰ বাবে গাঁৱৰ ৰাইজৰ মাজত ভেদাভেদ, খিয়লাখিয়লি, লোভ-প্ৰৱঞ্চনা আদিয়ে গাঁৱৰ প্ৰাচীন ঐক্যৰ গাঁথনিটো কিদৰে সোলোক-ঢোলোক কৰি তুলিছে, ঔপন্যাসিকে 'গঙা চিলনীৰ পাখি'ৰ মাজেৰে সুন্দৰভাৱে উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে— "সুবোধ শইকীয়াৰ পৰা টকালৈ এনেবোৰ ল'ৰা গুণ্ডা হৈছে। মাৰোৱাৰীয়ে দিয়া চিকচিকীয়া চাইকেলত উঠি গুৰু-গোঁসাই নমনা হৈছে। মদ খাইছে, পইচা হজম কৰিবলৈ শিকিছে। সুবোধ শইকীয়াই বিবেকক বনবাসী কৰিছে। ভোগৰামৰ দৰে বহুত ভাল মানুহ অমানুহ হৈছে। সোণাইৰ পাৰত পাপ সোমাইছে। ..... পঞ্চায়তৰাজ হ'ল। পঞ্চায়তৰ মেম্বৰ, সভাপতি বাছি উলিয়াবৰ কাৰণে গাঁৱে গাঁৱে কাজিয়া বাঢ়িল। মাৰপিট হ'ল। গাঁওবোৰ খিয়লাখিয়লি লাগি ভাগ ভাগ হ'ল। উত্তৰ পাৰত দক্ষিণ পাৰৰ দৰে কলি সোমাল। ভাল মানুহৰ কথা নৰজা হ'ল। .... সোণাইৰ মাজ ধৰা ঠাইবোৰ চৰকাৰে হাজাৰ হাজাৰ টকাত ডাক দিলে। অইন ঠাইৰ নতুন কৌশলেৰে মাছ ধৰা মানুহে সোণাইপৰীয়া মাছুৱৈৰ ভাতমুঠি আৰ্জি খোৱাবো বিঘিনি ঘটালে। সোণাইপৰীয়া মানুহৰ কথাও লৰ হ'ল, কামো লৰ হ'ল। দৈনিক চহৰৰ বাতৰি পাই থকা হ'ল.... সোণাইৰ পাৰত 'পলিটিক্স' সোমাল" (কটকী, প্ৰফুল্ল। *স্বাধীনোত্তৰ অসমীয়া উপন্যাস সমীক্ষা।* পৃষ্ঠা ঃ ১৬২)। গাঁৱৰ অৰ্থনৈতিক বিন্যাসক প্ৰকট কৰি দেখুৱাবৰ বাবে বৰাদেৰে উপন্যাসৰ

দুই-এটা চৰিত্রক অধিক স্পষ্টতৰ কৰি তোলাৰ চেষ্টা কৰিছিল। উপন্যাসখনত অৰ্থনৈতিক ভঙা-গঢ়াৰ মাজতে মানৱীয় প্ৰেমৰ চিৰন্তন আকৃতিবোৰ সাৰ্বজনীন ৰূপত প্ৰকাশ পাই উঠিছে।

চৰিত্ৰ চিত্ৰণ ঃ

লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ 'গঙা চিলনীৰ পাখি' উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিকে চৰিত্ৰ সৃষ্টিত সফলতা লাভ কৰিছে। উপন্যাসখনত এটা চৰিত্ৰক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই কাহিনীভাগ আগবাঢ়িছে। সেই কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰটো হৈছে বাসন্তী। চৰিত্ৰটো বিশ্লেষণ কৰিলে দেখা যায় যে বাসন্তীৰ নীতিবোধ প্ৰবল, কাৰণ তাই গুৰু-গোঁসাই মানি গাঁৱত ডাঙৰ-দীঘল হোৱা ছোৱালী। তাই নীতি-নিয়মৰ মাজত আৱদ্ধ বাবেই ধনঞ্জয়ক ভাল পাইও পলাই যাব নোৱাৰিলে। কিন্তু পিছত উপলব্ধি কৰিছে যে সেই অপৰাগতাৰ বাবে বাসন্তীয়ে জীৱনত জীয়াতু ভুগিব লগা হৈছে। পাপ-পুণ্যৰ হিচাপ কৰি থাকোতেই বাসন্তীৰ জীৱন পাৰ হৈ গ'ল আৰু তাই বহু পলমকৈ সেই কথাৰ উপলব্ধি কৰিবলৈ সক্ষম হ'ল। ধনঞ্জয়ৰ লগত প্ৰথম পৰিচয় হোৱাৰে পৰা আৰম্ভ কৰি মথুৰা মণ্ডলৰ লগত তাইৰ বিবাহ আৰু মণ্ডলৰ মৃত্যুৰ পিছত বাসন্তীয়ে মনটোক আধ্যাত্মিক প্ৰশান্তিৰ দিশলৈ আগবঢ়াই নিয়া, নিজৰ জীৱনৰ অপ্ৰাপ্তিৰ বেদনা বাজু আৰু কাঞ্চনমতীৰ জীৱনৰ পূৰ্ণতাৰে ঢাকিবলৈ বিচৰা, এই সকলোবোৰ ঘটনা আৰু পৰিস্থিতি আকস্মিকভাৱে সৃষ্টি হোৱা নাই। এইবোৰৰ মাজত আধুনিক ফ্ৰয়েডীয় ধাৰণাৰ এক মনোৰম প্ৰকাশ ঘটিছে। বাসন্তীয়ে ঘৰখনৰ কথা ভাবি নিজৰ জীৱনলৈ দুখ আৰু অনিশ্চয়তা কঢ়িয়াই আনিছিল। কিন্তু নিজৰ ভুল সংশোধনৰ চিন্তা কৰিছিল, তেতিয়ালৈকে পৰিস্থিতিৰ বহুত পৰিৱৰ্তন ঘটিছিল। সেই সময়ত বাসন্তী এঘৰ প্ৰতিষ্ঠাসম্পন্ন পৰিয়ালৰ বিধৱা বোৱাৰী। আনহাতে, ধনঞ্জয়ে সমাজসেৱকৰূপে সন্মানজনক আসন এখনত আছে। গতিকে বাসন্তীৰ প্ৰতি সহানুভূতিশীল হৈয়ো ধনঞ্জয়ে আবেগৰ বশৱৰ্ত্তী হৈ নতুন প্ৰস্তাৱক সমৰ্থন নজনালে। বাসন্তীয়ে আকৌ আধ্যাত্মিক জগতখনকেই আশ্ৰয় হিচাপে ল'লে। এনেদৰে ঔপন্যাসিকে বাসন্তী চৰিত্ৰটো 'গঙা চিলনীৰ পাখি' উপন্যাসখনত চিত্ৰিত কৰিছে।

'ধনঞ্জয়' উপন্যাসখনৰ আন এটা উল্লেখযোগ্য চৰিত্ৰ। ধনঞ্জয়ক সংযমশীল কিন্তু বেদনাবিধুৰ চৰিত্ৰ হিচাপে অংকিত কৰা হৈছে। ধনঞ্জয় চৰিত্ৰটো আকৰ্ষণীয় হৈ পৰিছে তাৰ ব্যক্তিত্বৰ বাবে। লগতে চৰিত্ৰটোৱে ব্যক্তিত্বৰ মূল্য উপন্যাসৰ শেষলৈ অক্ষুণ্ণ ৰাখিবলৈ সক্ষম হৈছে। ধনঞ্জয়ে প্ৰথমতে যৌৱনৰ উন্মাদনাৰ বাবে বাসন্তীক পলুৱাই নিবলৈ কুণ্ঠাবোধ কৰা নাছিল আৰু এইক্ষেত্ৰত যথেষ্ট আগো বাঢ়িছিল। কিন্তু বিধৱা বাসন্তীক সহাঁৰি জনোৱাৰ পৰা সি বিৰত আছিল। কাৰণ সি জানে যে বাসন্তী এঘৰৰ বোৱাৰী, তাই বিধৱা। তেনেস্থলত বাসন্তীৰ প্ৰতি দুৰ্বলতা দেখুওৱাটো তাৰদৰে সামাজিক প্ৰতিষ্ঠা থকা মানুহৰ ক্ষেত্ৰত শোভা নাপায়। সমাজৰ প্ৰধান ব্যক্তিসকলেই সমাজৰ শৃংখলা ভংগ কৰিব নোৱাৰে। সেইবাবে ধনঞ্জয়ে এই পৰিস্থিতিৰ পৰা মুক্ত হ'বলৈ নিৰ্দ্দেশৰ পথ বাছি ল'ব লগা হৈছিল।

বৰাদেৰে 'গঙা চিলনীৰ পাখি' উপন্যাসখনত ভোগৰামৰ চৰিত্ৰটো অংকিত কৰিছে। গাঁৱৰ ৰাইজৰ পৰম্পৰাগত জীৱন-পদ্ধতি নতুন অৰ্থনৈতিক পৰিস্থিতিত কিদৰে সলনি হৈছে সেই কথা ভোগৰাম চৰিত্ৰৰ মাজেৰে বিশদভাৱে দেখুওৱা হৈছে। ধনঞ্জয় চৰিত্ৰটোক ভোগৰামৰ বিপৰীত চৰিত্ৰ হিচাপে দেখুওৱা হৈছে ঃ ধনঞ্জয় আদৰ্শ পৰায়ণ, স্থিৰ, সংযত আৰু সত্যব্ৰত; ভোগৰাম ধৈৰ্যহীন আৰু স্বাৰ্থসচেতন। "সময় আৰু আকস্মিক সুবিধাই" তাক অহংকাৰী আৰু সুবিধাবাদী কৰি তুলিছে। সময় বিশেষে সি অসাধু কাৰ্যতো লিপ্ত হৈছে। (কটকী, প্ৰফুল্ল। *স্বৰাজোত্তৰ অসমীয়া উপন্যাস সমীক্ষা।* পৃষ্ঠা ঃ ১৬২)

গ্ৰাম্য পৰিবেশৰ চিত্ৰ ঃ

লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ উপন্যাসত গ্ৰাম্য জীৱন আৰু পৰিবেশ, গাঁৱলীয়া মানুহৰ আচাৰ-ব্যৱহাৰ, কথন-ভঙ্গী আদি আকৰ্ষণীয় ৰূপত ফুটি উঠিছে। 'গঙা চিলনীৰ পাখি'ত গ্ৰাম্য জীৱন আৰু পৰিবেশ তাৰ স্বাভাৱিক ৰূপত সুন্দৰকৈ ফুঠি উঠাৰ উপৰি ইয়াৰ অসমীয়া উপন্যাসৰ সাধাৰণ বিষয়বস্তুও সাধাৰণত্বৰ ওপৰলৈ উঠিব পাৰিছে। ইয়াৰ সাধাৰণ আবেগ-অনুভূতিৰ কাহিনীটো উপযুক্ত গ্ৰাম্য সামাজিক পৰিস্থিতিত উপস্থাপিত কৰিব পৰা ক্ষমতা আৰু

তাৰ বৰ্ণনাৰ বাবে এক যথোপযুক্ত ভাষাৰ বাবেই উপন্যাসখনৰ এনে কৃতকার্যতা। (বৰগোহাঞি, হোমেন। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (ষষ্ঠ খণ্ড)। পৃষ্ঠা ঃ ১৪৭)। উপন্যাসখনত সোণাই নৈ আৰু দুয়োপাৰৰ শস্যসম্ভৰা প্ৰকৃতিৰ বৰ্ণনাৰ মাজেৰে সমাজখনৰ ৰেহ-ৰূপ দেখুৱাইছে। উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ বাসন্তী সোণাই পাৰৰ যুৱতী। তাই বিপদৰ সময়ত ককায়েক ভোগৰামৰ প্ৰতি সহায়ৰ হাত আগবঢ়ায়। জীৱনৰ প্ৰথম সুপুৰুষ ধনঞ্জয়ক মনৰ মানুহ হিচাপে আদৰি লয়। কিন্তু ঘৰখনৰ সদনাম-বদনাম চিন্তা কৰি প্ৰেমৰ গতিক বাধা দি মথুৰাকে স্বামীৰূপে আদৰি লয়। গাঁৱলীয়া গাভৰুৱে মাক-বাপেকৰ ইচ্ছাৰ বিৰুদ্ধে মনে মিলা ডেকাৰ লগত পলাই গৈ ঘৰ-সংসাৰ কৰাৰ উদাহৰণ সমাজত বিৰল নহয়। কিন্তু বাসন্তীয়ে ঘৰখনৰ কথা ভাবি নিজৰ জীৱনলৈ দুখ নমাই আনিছিল। শেষত যেনিবা কীৰ্তন-দশমৰ মাজেৰে নিজৰ মনলৈ প্ৰশান্তি আনিবলৈ যত্ন কৰিছিল।

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে গাঁৱৰ অৰ্থনৈতিক দিশটোও ফুটি উঠিছে। অৰ্থনৈতিক দিশটো দেখুৱাবলৈ গৈ দুই এটা চৰিত্ৰক স্পষ্ট ৰূপত তুলি ধৰিছে। উপন্যাসখনত থকা ভোগৰাম চৰিত্ৰটোৰ মাজেৰে নতুন অৰ্থনৈতিক পৰিস্থিতিয়ে ব্যক্তি জীৱনৰ ওপৰত পেলোৱা প্ৰভাৱৰ কথা উনুকিয়াইছে। সময় আৰু পৰিস্থিতিয়ে ভোগৰামক অহংকাৰী কৰি তুলিছে। অসাধু কাৰ্যত লিপ্ত হৈ পৰিছে। অৰ্থনৈতিক ভঙা-গঢ়াৰ মাজতে মানৱীয় প্ৰেমৰ চিৰন্তন আকৃতিবোৰ প্ৰকাশিত হোৱা বাবে 'গঙা চিলনীৰ পাখি' এক বৰেণ্য সৃষ্টিৰূপে পৰিগণিত হৈছে।

উপসংহাৰ ঃ

লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ উপন্যাসখনৰ কাহিনী সংহত। উপৰুৱা চিত্ৰ আৰু চৰিত্ৰৰ অনৌচিত প্ৰয়োগ নাই। তেখেতৰ উপন্যাসবোৰৰ সফলতা ভাষাৰ ওপৰত বহু পৰিমাণে নিৰ্ভৰশীল। কিন্তু 'গঙা চিলনীৰ পাখি'ত লেখকে তেনে কৰিব নোৱাৰিলে। বাসন্তীৰ মাকৰ মুখত দিয়া কথা, ৰূপুক বুঢ়ীৰ মুখত দিয়া কথা বা অন্যান্য চৰিত্ৰৰ কথোপকথন উপন্যাসখনত সহজ আৰু স্বাভাৱিক নহয়। উপন্যাসখনৰ ভাষাত সাৱলীলতাৰ অভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। যিয়েই নহওঁক, উপন্যাসখনৰ পটভূমি বিস্তৃত, কাহিনীও ঘটনাবহুল। এটা বিশেষ অঞ্চলৰ অন্তৰ্গত কৰি এটা পৰিস্থিতি চিত্ৰিত কৰাৰ জোখাৰে থাকিব লগা বিস্তাৰ উপন্যাসখনত আছে। লগতে বৰ্ণনাৰ সকলো দিশৰ পৰা বাসন্তীৰ জীৱনৰ ওপৰত পোহৰ পেলাবলৈ উপন্যাসখনত চেষ্টা কৰা হৈছে। বাসন্তীৰ চৰিত্ৰ আৰু আচৰণত এজনী গাঁৱলীয়া গাভৰুৰ মনস্তত্ত্বৰ সুন্দৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। যি কি নহওঁক, লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ 'গঙা চিলনীৰ পাখি' গাঁৱলীয়া জীৱন আৰু চৰিত্ৰৰ এক সাৰ্থক সৃষ্টি বুলি ক'ব পাৰি। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

১। সম্পা. ঠাকুৰ, নগেন। *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস*। জ্যোতি প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ- নৱেম্বৰ, ২০০০

২। শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা*। সৌমাৰ প্ৰকাশ, পুনৰ মুদ্ৰণ- ২০১৩

৩। কটকী, প্ৰফুল্ল। *স্বৰাজোত্তৰ অসমীয়া উপন্যাস সমীক্ষা*। বীণা লাইব্ৰেৰী, প্ৰথম প্ৰকাশ- ১৯৭৯

৪। সম্পা. দাস, অমল চন্দ্ৰ। *অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা*। বনলতা, প্ৰথম প্ৰকাশ- মে' ২০১২

৫। বৰগোহাঞি, হোমেন। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড)*। সঞ্চালক, আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, ২০১২

গীত

।।১।।

চেনেহী মোৰ মাতৃভাষা
তুমিয়ে মোৰ বুকুৰ বাণী,
তুমিয়ে মোৰ লীলাময়ী,
তুমি মোৰ স্বপ্ন-ৰাণী।
বিলালা মোক ইমান বেথা,
শিকালা মোক ইমান কথা,
উল্লাসে উপচি পৰে
কি আনন্দ আকুলতা!
নধৰে মোৰ হৃদয়ত,
জৰি পৰে চকুৰ পানী।
তুমিয়ে মোৰ দীপ্তি-হীনা
অযত্ন-মলিনা দীনা,
কিহেৰে আই পূজোঁ, মোৰ
সম্বল মাথোঁ জীৰ্ণ বীণা,
তুমিয়ে মোৰ সুৰময়ী
প্ৰেম-পূত মন্দাকিনী।

।।২।।

লুইতৰ পাৰতে পৰ্বতৰ আঁৰতে
ওখকৈ পাতিছিল গৰা,
চিকুণ চিকিমিকি বগী ঢকেঢকী
পৰিছিলে বালিডৰা,
নকৈ চাপৰি পৰি লুইতত
নকৈ গাজিলে ঘাঁহ,
মোৰ মন-পখী
নকৈ সাজিলে বাহ,
বলিলে পছোৱাৰ বা,
ওপৰে ওপঙিল ছাঁ,
বালি তলে হ'ল, গৰা খহি গ'ল,
বৈ গ'ল লুইতৰ ঢল,
বুলি গ'ল বাহখন, উৰি গ'ল পখীকণ
কান্দি ৰ'ল দুখীয়া মন! ❑

-উমেশচন্দ্ৰ চৌধাৰী
(১৮৯৮ - ১৯৫৩)

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होग।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 31th December, 2023 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

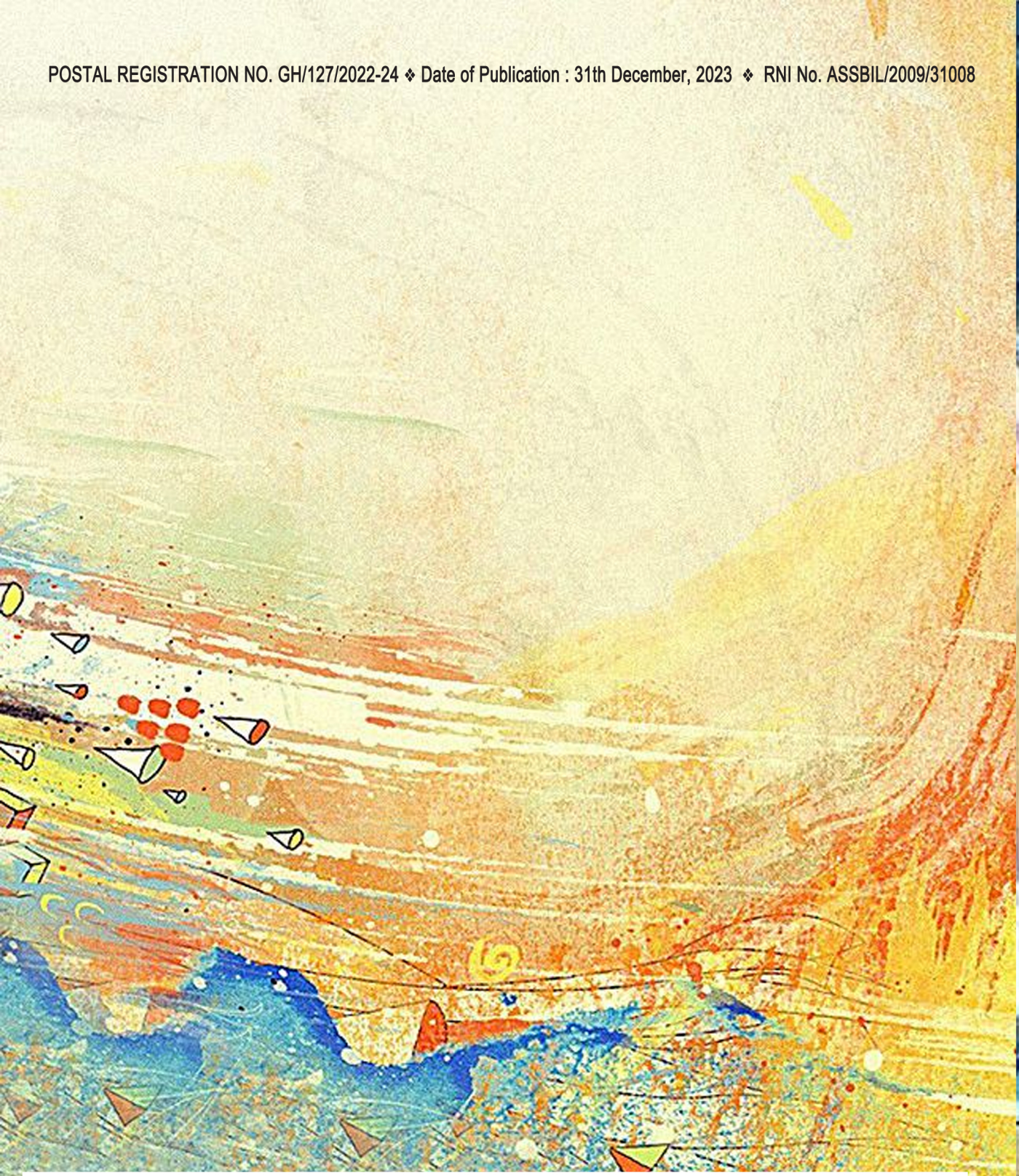

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com